प्राकृत भारती पुष्प—104

प्रधान सम्पादक :
महोपाध्याय विनयसागर

कलिकाल-सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य रचित

त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित

[हिन्दी-अनुवाद]

पर्व : ७, भाग : ५

[जैन रामायण]

अनुवादक
श्री गणेश ललवानी
एवं
श्रीमती राजकुमारी बेगानी

प्रकाशक
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर
श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर

प्रकाशकीय

अप्रतिम-प्रतिभा-धारक, कलिकाल-सर्वज्ञ, परमार्हत् कुमारपाल प्रतिबोधक, स्वनामधन्य श्री हेमचन्द्राचार्य रचित त्रिषष्टि शलाकापुरुष-चरित का सप्तम पर्व—जैन रामायण, भाग ५, प्राकृत भारती की पुष्प संख्या १०४ के रूप में प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

त्रिषष्टि अर्थात् तिरसठ शलाका पुरुष अर्थात् सर्वोत्कृष्ट महापुरुष। सृष्टि में उत्पन्न हुए या होने वाले जो सर्वश्रेष्ठ महापुरुष होते हैं वे शलाका-पुरुष कहलाते हैं। इस कालचक्र के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के आरकों में प्रत्येक काल में सर्वोच्च ६३ पुरुषों की गणना की गई है, की जाती थी और की जाती रहेगी। इसी नियमानुसार इस अवसर्पिणी में ६३ महापुरुष हुए हैं, उनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेवों की गणना की जाती है। इन्हीं ६३ महापुरुषों के जीवन-चरितों का सङ्कलन इस 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' के अन्तर्गत किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने इसे १० पर्वों में विभक्त किया है जिनमें ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त ६३ महापुरुषों के जीवनचरित संगृहीत हैं।

प्रथम पर्व में ६ सर्ग हैं, जिनमें भगवान ऋषभदेव एवं भरत चक्रवर्ती का जीवनचरित गुंफित है। द्वितीय पर्व में भी ६ सर्ग हैं, जिनमें भगवान अजितनाथ एवं द्वितीय चक्रवर्ती सगर का सांगोपांग जीवनचरित है। इन दोनों पर्वों का हिन्दी अनुवाद दो भागों में प्राकृत भारती के पुष्प ६२ एवं ७७ के रूप में प्राकृत भारती द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।

तृतीय भाग में पर्व ३ और ४ संयुक्त रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। तृतीय पर्व में ८ सर्ग हैं जिनमें क्रमशः भगवान् सभवनाथ से लेकर दसवें भगवान् शीतलनाथ के जीवनचरित हैं। चतुर्थ पर्व में ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ से लेकर १५वें तीर्थंकर धर्मनाथ तक, तीसरे-चौथे चक्रवर्ती, ५ वासुदेव, ५ बलदेव और ५ प्रतिवासुदेवों

का विस्तृत जीवनचरित है। यह तीसरा भाग भी प्राकृत भारती की ओर से मार्च, १९९२ में प्रकाशित हो चुका है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

चतुर्थ भाग में पर्व ५ और ६ संयुक्त रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। पाँचवें पर्व में ५ सर्ग हैं जिनमें सोलहवें तीर्थंकर एवं पंचम चक्रवर्ती भगवान् शान्तिनाथ का सविशद जीवन वर्णित है। छठे पर्व में ८ सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में—सतरहवें तीर्थंकर एवं छठे चक्रवर्ती कुन्थुनाथ का, दूसरे सर्ग में—अठारहवें तीर्थंकर और सातवें चक्रवर्ती प्रभु अरनाथ का, तीसरे सर्ग में—छठे बलदेव आनंद, वासुदेव पुरुष पुण्डरीक, प्रतिवासुदेव बलिराजा का, चौथे सर्ग में आठवें चक्रवर्ती सुभूम का, पाँचवें सर्ग में—सातवें बलदेव नन्दन, वासुदेव दत्त, प्रतिवासुदेव प्रह्लाद का, छठे सर्ग में—उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान् मल्लिनाथ का, सातवें सर्ग में—बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी का और आठवें सर्ग में—नौवें चक्रवर्ती महापद्म का सविस्तार जीवन-चरित्र का अङ्कन हुआ है। यह चौथा भाग भी प्राकृत भारती के पुष्प ८४ के रूप में प्राकृत भारती की ओर से सितम्बर, १९९२ में प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत पाँचवें भाग में पर्व सातवाँ प्रकाशित किया जा रहा है जो जैन रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर्व में तेरह सर्ग हैं। प्रथम सर्ग से दसवें सर्ग तक जैन रामायण का कथानक विस्तार से गुंफित है। इन सर्गों में राक्षसवंश और वानरवंश की उत्पत्ति से लेकर आठवें बलदेव मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, वासुदेव लक्ष्मण, प्रतिवासुदेव रावण, महासती सीता, चरम शरीरी महाबली हनुमान, सती अंजना सुन्दरी, आदि के जीवन का विस्तार के साथ सरस चित्रण है। ग्यारहवें सर्ग में—इक्कीसवें तीर्थंकर विभु नमिनाथ, बारहवें सर्ग में—दसवें चक्रवर्ती हरिषेण का और तेरहवें सर्ग में—ग्यारहवें चक्रवर्ती जय का वर्णन है।

इस प्रकार भाग ५, पर्व ७ में एक तीर्थंकर, २ चक्रवर्ती, १ बलदेव, १ वासुदेव और १ प्रतिवासुदेव—कुल ६ महापुरुषों के चरित्र का समावेश हुआ है।

इस प्रकार पर्व १ से ७ और भाग १ से ५ तक में तिरसठ में से ५६ शलाका पुरुषों के जीवन-चरितों का समावेश हो गया है।

पूर्व में आचार्य शीलांक ने 'चउप्पन-महापुरुष-चरियं' नाम से इन ६३ महापुरुषों के जीवन का प्राकृत भाषा में प्रणयन किया था। शीलांक ने ९ प्रतिवासुदेवों की गणना स्वतन्त्र रूप से नहीं की, अतः ६३ के स्थान पर ५४ महापुरुषों की जीवन-गाथा ही उसमें सम्मिलित थी।

आचार्य हेमचन्द्र १२वीं शताब्दी के एक अनुपमेय सरस्वती-पुत्र थे, कहें तो अत्युक्ति न होगी। इनकी लेखिनी से साहित्य की कोई भी विधा अछूती नहीं रही। व्याकरण, काव्य, कोष, अलंकार, छन्द-शास्त्र, न्याय, दर्शन, योग, स्तोत्र आदि प्रत्येक विधा पर अपनी स्वतन्त्र, मौलिक एवं चिन्तनपूर्ण लेखिनी का सफल प्रयोग इन्होंने किया। आचार्य हेमचन्द्र न केवल साहित्यकार ही थे; अपितु जैनधर्म के एक दिग्गज आचार्य भी थे। महावीर की वाणी के प्रचार-प्रसार में अहिंसा का सर्वत्र व्यापक सकारात्मक प्रयोग हो इस दृष्टि से वे चालुक्यवंशीय राजाओं के सम्पर्क में भी सजगता से आए और सिद्धराज जयसिंह तथा परमार्हत् कुमारपाल जैसे राज-ऋषियों को प्रभावित किया और सर्वधर्मसमन्वय के साथ विशाल राज्य में अहिंसा का अमारी पटह के रूप में उद्घोष भी करवाया। जैन परम्परा के होते हुए भी उन्होंने महादेव को जिन के रूप में आलेखित कर उनकी भी स्तवना की। हेमचन्द्र न केवल सार्वदेशीय विद्वान् ही थे; अपितु उन्होंने गुर्जर धरा में अहिंसा, करुणा, प्रेम के साथ गुर्जर भाषा को जो अनुपम अस्मिता प्रदान की यह उनकी उपलब्धियों की पराकाष्ठा थी।

महापुरुषों के जीवनचरित को पौराणिक आख्यान कह सकते हैं। पौराणिक होते हुए भी आचार्य ने इस चरित-काव्य को साहित्यशास्त्र के नियमानुसार महाकाव्य के रूप में सम्पादित करने का अभूतपूर्व प्रयोग किया है और इसमें वे पूर्णतया सफल भी हुए हैं। यह ग्रन्थ छत्तीस हजार श्लोक परिणाम का है। इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए हेमचन्द्र स्वयं ग्रन्थ प्रशस्ति में लिखते हैं—

'चेदि, दशार्ण, मालव, महाराष्ट्र, सिन्ध और अन्य अनेक दुर्गम देशों को अपने भुजबल से पराजित करने वाले परमार्हत् चालुक्यकुलोत्पन्न कुमारपाल राजर्षि ने एक समय आचार्य हेमचन्द्र-

सूरि से विनयपूर्वक कहा—'हे स्वामिन् ! निष्कारण परोपकार की बुद्धि को धारण करने वाले आपकी आज्ञा से मैंने नरक गति के आयुष्य के निमित्त-कारण मृगया, जुआ, मदिरादि दुर्गुणों का मेरे राज्य में पूर्णत: निषेध कर दिया है और पुत्ररहित मृत्यु प्राप्त परिवारों के धन को भी मैंने त्याग दिया है तथा इस पृथ्वी को अरिहन्त के चैत्यों से सुशोभित एवं मण्डित कर दिया है। अत: वर्तमान काल में आपकी कृपा से मैं सम्प्रति राजा जैसा हो गया हूं। मेरे पूर्वज महाराजा सिद्धराज जयसिंह की भक्तियुक्त प्रार्थना से आपने पंचांगीपूर्ण 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' की रचना की। भगवन्! आपने मेरे लिए निर्मल 'योगशास्त्र' की रचना की और जनोपकार के लिए द्वयाश्रय काव्य, छन्दोऽनुशासन, काव्यानुशासन और नाम-संग्रहकोष प्रमुख अन्य ग्रन्थों की रचना की। अत: हे आचार्य ! आप स्वयं ही लोगों पर उपकार करने के लिए कटिबद्ध हैं। मेरी प्रार्थना है कि मेरे जैसे मनुष्य को प्रतिबोध देने के लिए ६३ शलाका-पुरुषों के चरित पर प्रकाश डालें।'

इससे स्पष्ट है कि राजर्षि कुमारपाल के आग्रह से ही आचार्य हेमचन्द्र ने इस ग्रन्थ की रचना उनके अध्ययन हेतु की थी। पूर्वांकित् ग्रन्थों की रचना के अनन्तर इसकी रचना होने से इसका रचनाकाल विक्रम संवत् १२२० के निकट ही स्वीकार्य होता है। यह ग्रन्थ हेमचन्द्राचार्य की प्रौढावस्था की रचना है और इस कारण इसमें उनके लोकजीवन के अनुभवों तथा मानव स्वभाव की गहरी पकड़ की झलक मिलती है। यही कारण है कि काल की इयत्ता में बन्धी पुराण कथाओं में इधर-उधर बिखरे उनके विचारकण कालातीत हैं। यथा—शत्रु भावना रहित ब्राह्मण, बे-ईमानी रहित वणिक्, ईर्ष्या रहित प्रेमी, व्याधि रहित शरीर, धनवान-विद्वान्, अहङ्कार रहित गुणवान्, चपलता रहित नारी तथा चरित्रवान् राजपुत्र बड़ी कठिनाई से देखने में आते हैं।'

श्री गणेश ललवानी इस पुस्तक के अनुवादक हैं। वे बहुविध विधाओं के सफल शिल्पी हैं। उन्होंने इसका बङ्गला भाषा में अनुवाद किया था और उसी का हिन्दी रूपान्तरण श्रीमती राजकुमारी बेगानी ने सफलता के साथ किया है। शब्दावली में कोमलकान्त पदावली और प्राञ्जलता पूर्णरूपेण

समाविष्ट है। इसके सम्पादन में यह विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि अनुवाद कौनसे पद्य से कौनसे पद्य तक का है, यह संकेत प्रत्येक गद्यांश के अन्त में दिया गया है। हम श्री गणेश ललवानी और श्रीमती राजकुमारी बेगानी के अत्यन्त आभारी हैं कि इन्होंने इसके प्रकाशन का श्रेय प्राकृत भारती को प्रदान किया।

सूचित करते हुए हमें हार्दिक खेद है कि इस भाग के प्रकाशन से पूर्व ही श्री गणेश ललवानीजी हमारे बीच नहीं रहे।

पारसमल भंसाली	**देवेन्द्रराज मेहता**
अध्यक्ष	सचिव
श्री जैन श्वे. नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ	प्राकृत भारती अकादमी
मेवानगर	जयपुर

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विषयानुक्रम

सातवां पर्व

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

		पृष्ठांक
पहला सर्ग	— राक्षस वंश, वानर वंश और रावण की उत्पत्ति का वर्णन	1-12
दूसरा सर्ग	— रावण की दिग्विजय यात्रा	12-56
तीसरा सर्ग	— अंजनासुत हनुमान का वर्णन	57-77
चौथा सर्ग	— राम-लक्ष्मण की उत्पत्ति, सीता स्वयंवर और बनवास गमन का वर्णन	77-115
पांचवां सर्ग	— सीता-हरण का वर्णन	115-146
छठा सर्ग	— सुग्रीव से मैत्री, सीता की खोज और हनुमान द्वारा लंका-दहन	147-176
सातवां सर्ग	— रावण के साथ युद्ध और लंका-विजय	176-203
आठवां सर्ग	— विभीषण का राज्याभिषेक, अयोध्या आगमन, राज्याभिषेक, लोकापवाद से सीता-त्याग	203-226
नौवां सर्ग	— सीता के पुत्रों का राम-सेना से युद्ध, सीता की अग्नि-परीक्षा और दीक्षा का वर्णन	226-243
दसवां सर्ग	— पूर्वजन्म वृत्तान्त, राम-हनुमान आदि की दीक्षा और मोक्षगमन का वर्णन	244-261
ग्यारहवां सर्ग	— इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ का जीवनचरित	261-268
बारहवां सर्ग	— दसवें चक्रवर्ती हरिषेण का चरित्र	268-270
तेरहवां सर्ग	— ग्यारहवें चक्रवर्ती जय का चरित्र	271-272

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित

सप्तम पर्व

प्रथम सर्ग

अंजन के समान कान्तियुक्त हरिवंश के चन्द्र तुल्य मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थ में बलदेव पद्म (राम) वासुदेव नारायण (लक्ष्मण) और प्रतिवासुदेव रावण उत्पन्न हुए। अब मैं उनका चरित्र विवृत करूँगा। (श्लोक १-२)

जिस समय अजितनाथ स्वामी पृथ्वी पर विचरण कर रहे थे उसी समय भरत क्षेत्र के राक्षस द्वीप की लंकापुरी में राक्षस वंश के अंकुरभूत धनवाहन नामक एक राजा राज्य करते थे। उन विवेकवान राजा ने अपने पुत्र महाराक्षस को राज्य देकर तपश्चर्या द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। महाराक्षस अपने पुत्र देवराक्षस को राज्य देकर दीक्षा अंगीकार कर मोक्ष गए। इस प्रकार उत्तरोत्तर राक्षस द्वीप में अनेक राजा हुए। तीर्थंकर श्रेयांस के तीर्थ में कीर्तिधवल नामक एक राजा इसी राक्षस द्वीप में राज्य कर रहे थे। (श्लोक ३-६)

उस समय वैताढ्य पर्वत पर मेघपुर नगर में विद्याधरों के प्रसिद्ध राजा अतीन्द्र हुए थे। उनकी पत्नी का नाम श्रीमती था। श्रीमती के गर्भ से उनके दो सन्तान उत्पन्न हुयी। एक श्रीकण्ठ नामक पुत्र था। दूसरा देवी-सी रूपवती देवी नामक कन्या थी। रत्नपुर के राजा पुष्पोत्तर नामक विद्याधरपति ने अपने पुत्र पद्मोत्तर के लिए सुन्दर नेत्रवाली देवी के लिए प्रार्थना की; किन्तु दैवयोग से अतीन्द्र ने गुणवान् और श्रीमान् होने पर भी पद्मोत्तर को कन्या देना अस्वीकार कर देवी को राक्षस द्वीप के राजा कीर्तिधवल को दे दिया। देवी का विवाह कीर्तिधवल से हो गया है यह सुनते ही पुष्पोत्तर क्रोधित हो गए और तभी से अतीन्द्र और श्रीकण्ठ के प्रति शत्रुभावापन्न हो गए। (श्लोक ७-१०)

एक बार मेरु से लौटते हुए श्रीकण्ठ ने पुष्पोत्तर की पद्म-सी कन्या रूपवती पद्मा को देखा। उसी मुहूर्त में कामदेव के विकार

सागर को तरंगित करने के लिए (वायुरूपी) दुर्दिन के समान एक दूसरे पर अनुरक्त हो गए। कुमारी पद्मा स्व स्निग्ध दृष्टिपूर्ण मुख कमल को श्रीकण्ठ के सम्मुख कर खड़ी हो गयी मानो वह स्वयंवरा होने के लिए श्रीकण्ठ के गले में वरमाला डालने को उत्सुक हो। श्रीकण्ठ ने उसका मनोभाव भाँप लिया। वह स्वयं भी उसको चाह रहा था। अतः उसे रथ पर बैठाकर आकाश पथ से स्वनगरी की ओर प्रस्थान किया। पद्मा को कोई हरणकर लिए जा रहा है यह देखकर उसकी सहेलियाँ चिल्ला उठीं। उनका चिल्लाना सुनकर बलवान पुष्पोत्तर स्वसैन्य सहित उनके पीछे दौड़ा। पुष्पोत्तर को अपने पीछे आते देखकर श्रीकण्ठ ने कीर्तिधवल की शरण ली और उन्हें पद्मा को हरण कर लाने का सारा वृत्तान्त समझा दिया। प्रलयकालीन समुद्र का जल जिस भाँति सभी दिशाओं को आवृत्त कर देता है उसी प्रकार अपने सैन्यरूपी जल से समस्त दिशाओं को आवृत कर पुष्पोत्तर वहाँ आकर उपस्थित हो गया। कीर्तिधवल ने दूत के द्वारा पुष्पोत्तर को कहलाया—बिना विचारे जो आप युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए हैं वह ठीक नहीं है। कन्या तो आपको किसी न किसी को ब्याहनी ही पड़ेगी। जब कन्या ने स्वयं ही श्रीकण्ठ को निर्वाचित किया है तब इसमें दोष क्या है? अतः आप युद्ध की इच्छा परित्याग कर कन्या की इच्छा ज्ञात करें और श्रीकण्ठ के साथ उसके विवाह का आयोजन करें। उसी समय पद्मा ने भी दूती के द्वारा कहलाया, पिताजी, मैं स्वेच्छा से इनके साथ आयी हूं। इन्होंने मुझे अपहरण नहीं किया है। यथातथ्य ज्ञात हो जाने पर पुष्पोत्तर का क्रोध शान्त हो गया। जो विचारवान् होते हैं उनका क्रोध सरलता से ही शान्त हो जाता है। पुष्पोत्तर ने खूब धूमधाम से श्रीकण्ठ के साथ पद्मा का विवाह कर दिया और अपने नगर को लौट गए। (श्लोक १२-२४)

तब कीर्तिधवल श्रीकण्ठ से बोले, 'मित्र, तुम यहीं रहो। कारण वैताढ्य पर्वत पर तुम्हारे अनेक शत्रु हैं। राक्षस द्वीप के समीप वायव्य कोण में तीन सौ योजन प्रमाण वानर द्वीप है। इसके अतिरिक्त भी बब्बर कुल, सिंहल आदि मेरे अनेक द्वीप हैं। वे इतने सुन्दर हैं, लगता है मानो स्वर्ग के टुकड़े टूट कर यहाँ पड़े हैं। उसी में से किसी भी द्वीप में राजधानी स्थापित कर मेरे पास ही सुखपूर्वक रहो। यहाँ तुम्हें शत्रुओं से कोई भय नहीं है। छोड़ो शत्रुओं

को, मेरा वियोग न हो इसलिए भी तुम यहीं रहो।' कीर्तिधवल के इस प्रकार आग्रह करने पर एवं मित्र का वियोग न हो, यह सोचकर श्रीकण्ठ ने वानर द्वीप में रहना स्वीकार कर लिया। तब कीर्तिधवल ने वानर द्वीप में किष्किध्या पर्वत पर स्थित किष्किन्धा नगरी को राजधानी रूप में स्थापित कर वहाँ श्रीकण्ठ का राज्याभिषेक कर दिया। श्रीकण्ठ ने एक दिन उस द्वीप पर फलभक्षी बलिष्ठ देहवाले अनेक सुन्दर वानरों को देखा। उसने केवल उनकी हत्या न की जाय यही आदेश नहीं दिया बल्कि नियत स्थान पर नियत समय पर फल जलादिक की भी व्यवस्था कर दी। राजा को उनका सत्कार करते देखकर प्रजा भी उनका सत्कार करने लगी। कारण यथा राजा तथा प्रजा। तदुपरान्त वहाँ के विद्यागर कौतुकवश चित्रों में, लेप्य में, ध्वजा में, छत्रादि में वानर चिह्न अंकित करने लगे। वानर द्वीप में निवास करने के कारण और सर्वत्र वानर चिह्न अंकित करने के कारण वहाँ के विद्याधर वानर नाम से प्रसिद्ध हुए।

(श्लोक २५-३५)

श्रीकण्ठ के एक पुत्र हुआ। उसका नाम बज्रकण्ठ रखा गया। वह युद्धक्रीड़ा में आनन्द पाता। अतः उस क्रीड़ा में वह प्रवीण हो गया। (श्लोक ३६)

एक दिन श्रीकण्ठ जबकि सभामण्डप में बैठे थे तब उन्होंने देवों को शाश्वत अर्हतों के पूजन के लिए नन्दीश्वर द्वीप जाते देखा। राजपथ पर अश्व को जाते देख ग्राम्य पथ के अश्व भी जिस प्रकार उसके पीछे हो जाते हैं उसी प्रकार श्रीकण्ठ ने भी देवों का अनुसरण किया। राह में पर्वत आ जाने से जिस प्रकार वेगवती नदियों की गति अवरुद्ध हो जाती है उसी प्रकार मानुष्योत्तर पर्वत पर उनकी गति रुद्ध हो गयी। श्रीकण्ठ ने सोचा—मैंने पूर्व जन्म में अधिक तप नहीं किया इसीलिए नन्दीश्वर द्वीप के शाश्वत तीर्थंकरों के दर्शन की मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। इस प्रकार विचार करते हुये संसार से विरक्त होकर उन्होंने वहीं दीक्षा ग्रहण कर ली और कठोर तपश्चरण कर मोक्ष को प्राप्त किया। (श्लोक ३७-४१)

श्रीकण्ठ के पश्चात् बज्रकण्ठ आदि कितने राजा आए और गए। अन्त में मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थ में वानर द्वीप में घनोदधि नामक एक राजा हुए। उस समय राक्षस द्वीप पर तड़ित्केश नामक

राजा राज्य करते थे। इन दोनों में परस्पर प्रगाढ़ प्रेम था।

(श्लोक ४२-४३)

एक दिन राक्षस द्वीपाधिपति तड़ित्केश अन्त:पुरिकाओं सहित सुरम्य नन्दनवन में क्रीड़ा करने गए। तड़ित्केश जब क्रीड़ा में निमग्न थे तब एक वानर वृक्ष से नीचे उतरा और उनकी मुख्य रानी श्रीचन्द्रा के स्तनों को नाखूनों से खरोंच डाला। यह देखकर तड़ित्केश अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और सिर के केशों को पीछे की ओर करते हुए उसपर तीर छोड़ा। पत्नी का अपमान कोई सहन नहीं कर सकता। बाण विद्ध होने पर वह वानर वहां से भागकर समीप के उद्यान में, जहाँ एक मुनि कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े थे उनके पैरों पर गिर पड़ा। मुनि ने भी उसे परलोक यात्रा के पाथेय रूप नमस्कार महामन्त्र सुनाया। नवकार मंत्र के प्रभाव से वह वानर भवनवासी देवलोक में उदधिकुमार देव के रूप में उत्पन्न होते ही अवधि ज्ञान से अपना पूर्व भव जान कर वह मुनि के निकट आया और उनकी चरण-वन्दना की। मुनि सज्जनों के लिए सदैव वन्दनीय हैं, उनमें भी जो उपकारी होते हैं वे विशेष रूप से वन्दनीय हैं।

(श्लोक ४४-४९)

उधर तड़ित्केश की आज्ञा से उसके अनुचर बन्दरों की हत्या करने लगे। यह देखकर वह उदधिकुमार देव बहुत क्रुद्ध हो गए। उन्होंने अपनी वैक्रिय लब्धि से बड़े-बड़े वानरों की सृष्टि की जो कि बड़े-बड़े वृक्ष और शिलाओं को उखाड़ कर राक्षसों पर फेंक कर उनकी हत्या करने लगे। इसे देवकृत उपद्रव समझकर तड़ित्केश वहाँ आया और उदधिकुमार देव की पूजा कर पूछा, 'आप कौन हैं? और क्यों उपद्रव कर रहे हैं? पूजा से सन्तुष्ट होकर उदधिकुमार ने पूर्व जन्म में अपने निहत होने और नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से देव होने की बात बतलायी। (श्लोक ५०-५३)

यह सुनकर तड़ित्केश देव के साथ मुनि के पास गए और उन्हें वन्दना कर पूछा, 'हे भगवन्, इस वानर के साथ मेरा वैर क्यों हुआ? प्रत्युत्तर में मुनि बोले, 'तुम श्रावस्ती नगर में मन्त्रीपुत्र थे, तुम्हारा नाम दत्त था और यह वानर काशी का एक व्याध था। एक बार तुम दीक्षा लेकर काशी जा रहे थे और यह व्याध शिकार के लिए काशी से बाहर जा रहा था। तुम्हें सम्मुख आते देखा तो

इसे अपशकुन समझकर तीर मारकर तुम्हें धराशायी कर दिया। वहाँ से मृत्यु होने पर तुम महेन्द्र कल्प में देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ का आयुष्य पूर्ण होने पर तुमने लंकाधिपति के रूप में जन्म ग्रहण किया और वह मृत्यु के पश्चात् नरक गया। वहाँ की आयु पूर्ण होने पर वानर के रूप में जन्मा। यही तुम्हारे बैर का कारण है। (श्लोक ५४-५७)

उन असाधारण उपकारी मुनि को वन्दना कर और लंकाधिपति की आज्ञा लेकर वे देव स्वस्थान को लौट गए। तड़ित्केश ने भी अपना पूर्व भव ज्ञात हो जाने से अपने पुत्र सुकेश को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली और तपश्चर्या द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। राजा घनोदधि भी स्वपुत्र किष्किंधी को किष्किन्धा का राज्य देकर

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दीक्षित हो गए और परमपद को प्राप्त किया : (श्लोक ५८-६०)

उस समय वैताढ्य पर्वत पर रथनुपुर नामक नगर में विद्याधर राज अशनिवेग राज्य करते थे। उनके दोनों भुजदण्ड-से उनके दो पुत्र थे विजयसिंह और विद्युद्वेग। उसी पर्वत पर आदित्यपुर में मन्दिरमाली नामक एक विद्याधर राजा राज्य कर रहे थे। उनकी कन्या का नाम श्रीमाला था। कन्या के स्वयंवर में मन्दिरमाली राजा ने सभी राजाओं को आमन्त्रित किया। ज्योतिष्क देवों की तरह विद्याधरगण आकाश-पथ से आए और स्वयंवर सभा के मण्डप में बैठ गए। श्रीमाला हाथ में वरमाला लेकर आई और जैसे-जैसे प्रतिहारी राजाओं का वर्णन करता, सुनती हुई वह अग्रसर होती गई। जैसे नाले का जल वृक्षों का स्पर्श करता हुआ बढ़ता जाता है उसी प्रकार दृष्टि द्वारा राजाओं का स्पर्श करती हुई वह आगे बढ़ती गई। क्रमशः अनेक विद्याधर राजाओं का अतिक्रमण कर श्रीमाला किष्किन्धी के पास जाकर उसी प्रकार रुक गई जैसे गङ्गा समुद्र के पास जाकर रुक जाती है। भविष्य में अपनी भुजलताओं से जो उसका आलिङ्गन करेगा उसी का अङ्गीकार स्वरूप वरमाला उसके कण्ठ में पहना दी। यह देख कर सिंह-सा साहसी विजयसिंह भृकुटि चढ़ाकर क्रोध से भयंकर बना बोल उठा—'तस्कर को जिस प्रकार राज्य से निकाल दिया जाता है उसी प्रकार दुष्कृत करने वाले इस वंश के विद्याधरों को हमारे पूर्वजों ने वैताढ्य पर्वत की राजधानी से निर्वासित कर दिया

था। मन्दकर्मी हीन जाति के इनको यहां कौन बुला लाया है? ये लोग भविष्य में फिर कभी यहां न आ जाएँ इसलिए आज मैं इनकी पशु की तरह हत्या करूँगा।' ऐसा कहकर महाबली विजयसिंह उठकर खड़ा हो गया और अस्त्र उठाकर किष्किन्धी की हत्या करने के लिए यमराज की भांति उसकी ओर जाने लगा। अन्यान्य साहसिक विद्याधर जो कि साहसिक कार्य करने में पीछे नहीं रहते थे, वे भी उठ खड़े हुए। मुकेश आदि विद्याधरों ने किष्किन्धी का पक्ष लिया, अन्य विद्याधरों ने विजयसिंह का।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
उभय पक्ष में प्रलयात्मक युद्ध प्रारम्भ हो गया। हाथी के दांतों की रगड़ से निकलती चिनगारियाँ आकाश में चमकने लगीं, अश्वारोहियों के परस्पर बर्छाओं के आघात से बिजली गिरने जैसा कड़-कड़ शब्द होने लगा। महारथियों के धनुषों की टंकार से आकाश गूँज उठा। सैनिकों की खड्गों के आघात से उनके मस्तक कटकर गिरने लगे। रक्त और शवों से पृथ्वी आवृत्त हो गई। कुछ क्षण इसी प्रकार युद्ध चलने के पश्चात् किष्किन्धी के छोटे भाई अन्धक ने वृक्ष से फल फेंकने की तरह एक तीर से विजयसिंह का मस्तक काट डाला। यह देखकर विजयसिंह की ओर के विद्याधर भय से विह्वल हो गए। सचमुच ही स्वामी के बिना शौर्य कहां? नायकहीन सैन्यदल मृत-तुल्य होता है। (श्लोक ६१-७५)

युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् किष्किन्धी साक्षात् शरीरधारिणी जयलक्ष्मी-सी श्रीमाला, मित्र और अपनी सेना सहित आकाश-पथ से किष्किधा लौट आए। अशनिवेग ने जब अकस्मात् वज्रपात-सी अपने पुत्र के निधन की खबर सुनी तो अपनी सेना लेकर किष्किन्धा आया और परिखा का जल जैसे नगर को घेरे रहता है उसी प्रकार अपने सैन्यदल से किष्किधा को घेर लिया। सिंह जैसे अपनी गुफा से निकलता है उसी प्रकार अन्धक को साथ लेकर सुकेश और किष्किधी नगर से बाहर आए। अत्यन्त क्रोध भरा अशनिवेग शत्रु को तृणवत समझकर युद्ध में प्रवृत्त हो गया। सिंह के समान बलवान और वीर पुत्रघातक अन्धक को क्रोधान्ध अशनिवेग ने युद्ध में मार डाला। यह देखकर हवा से जैसे मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं वैसे ही वानर और राक्षस सेना छिन्न-भिन्न हो गई। किष्किधी और लंकापति अन्य उपाय न देख अपने-

अपने परिवार को लेकर पाताल लंका में चले गए। ऐसी विकट परिस्थिति में भाग जाना ही एकमात्र उपाय होता है। महावत को मारकर जैसे हाथी शान्त हो जाता है वैसे ही अपने पुत्र घातक की हत्या कर अशनिवेग शान्त हो गया। शत्रु विनाश से हर्षित नवीन राज्य स्थापन में आचार्य-से अशनिवेग ने लंका के सिंहासन पर निर्घात नामक एक खेचर को बैठाकर इन्द्र जैसे अमरावती को लौट जाता है वैसे ही वैताढ्य स्थित अपनी राजधानी रथनुपुर को लौट गया। कालान्तर में वैराग्य उत्पन्न होने से उसने अपने पुत्र सहस्रार को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। (श्लोक ७६-८८)

उधर पाताल लंका में रहते हुए सुकेश की रानी इन्द्राणी के गर्भ से माली, सुमाली और माल्यवान ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। किष्किंधी के भी श्रीमाला के गर्भ से आदित्यरजा और रिक्षरजा नामक दो पराक्रमी पुत्र हुए। (श्लोक ८९-९०)

एक समय किष्किंधी मेरु पर्वत स्थित शाश्वत जिनेश्वरों के दर्शन कर लौट रहा था। तब राह में मधु नामक एक पर्वत देखा। द्वितीय मेरु-से उस पर्वत पर चारों ओर विस्तृत उद्यानों में उसने क्रीड़ा की। यह स्थान अच्छा लगने के कारण उत्साही किष्किंधी ने वहां किष्किन्ध्यपुर नामक एक नगर बसाया और सपरिवार उसी नगर में रहने लगा। (श्लोक ९१-९३)

सुकेश के तीनों पुत्रों को जब यह ज्ञात हुआ कि उनका राज्य शत्रुओं ने छीन लिया है तो वे तीनों तीन अग्नि की तरह प्रज्वलित हो उठे। वे तुरन्त लङ्का गए और निर्घात की हत्या कर स्वराज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। माली लङ्का के राजा हुए और किष्किंधी के कहने पर किष्किन्ध्या पर आदित्यराज राज करने लगे।

(श्लोक ९४-९६)

वैताढ्य पर्वत के रथनुपुर में अशनिवेग के पुत्र सहस्रार की पत्नी चित्रसुन्दरी के गर्भ में कोई देव अवतीर्ण हुआ। कारण उसी समय उन्होंने मंगलकारी एक शुभ स्वप्न देखा। कुछ दिनों पश्चात् चित्रसुन्दरी को इन्द्र के साथ सम्भोग करने का दोहद उत्पन्न हुआ। किन्तु वह दोहद न तो पूर्ण करने योग्य था न बोलने योग्य। फलतः दोहद पूर्ण न होने के कारण उसका शरीर क्रमशः कृश होने लगा। सहस्रार ने जब अत्यन्त आग्रहपूर्वक उसके दुर्बल होने का कारण पूछा

तब लज्जा से सिर नीचा किए उसने अपने पति को दोहद की बात बतायी। तब सहस्रार विद्या-बल से इन्द्र का रूप धारण कर उसके सम्मुख उपस्थित हुए और उसका दोहद पूर्ण किया। चित्रसुन्दरी ने भी उन्हें इन्द्र जानकर ही उनके साथ सम्भोग किया। यथासमय उनके एक पूर्ण पराक्रमी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। माँ की इन्द्र के साथ सम्भोग करने की इच्छा होने के कारण उसका नाम रखा गया इन्द्र। इन्द्र जब बड़ा होकर विद्या और बाहुबल से बलवान हो गया तब सहस्रार उसे राज्य देकर धर्माराधना में समय व्यतीत करने लगा।

(श्लोक ९७-१०३)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इन्द्र ने समस्त विद्याधर राजाओं को जीत लिया। इन्द्र का दोहद उत्पन्न होने के कारण वह स्वयं को इन्द्र ही समझने लगा। उसने इन्द्र की तरह ही चार दिक्पाल, सात सैन्यदल और सेनापति, तीन परिषद्, वज्र आयुध, ऐरावत हस्ती, रम्भादि वारांगनाएँ, बृहस्पति नामक मन्त्री, नैगमेषी नामक पैदल सेना के नायक पद की सृष्टि की। इस प्रकार इन्द्र की समस्त नम्पत्ति का नाम धारण कर वह स्वयं को इन्द्र होने का दावा कर समस्त विद्याधरों पर एकछत्र राज्य करने लगा। ज्योतिःपुर के राजा मयूरध्वज की पत्नी आदित्यकीर्ति से उत्पन्न सोम को उसने पूर्व दिशा का दिक्पाल बनाया। किष्किन्धयापुर के राजा कालाग्नि की स्त्री श्रीप्रभा के पुत्र यम को उसने दक्षिण दिशा का दिक्पाल बनाया। मेघपुर के राजा मेघरथ की पत्नी वरुणा के पुत्र वरुण को उसने पश्चिम दिशा का दिक्पाल बनाया और कांचनपुर के राजा सुर की पत्नी कनकावती के पुत्र कुबेर को उत्तर दिशा दिक्पाल बनाया। इस प्रकार इन्द्र के समस्त वैभव सहित इन्द्र राज्य करने लगा।

(श्लोक १०४-१११)

मदमत्त हाथी जैसे अन्य हाथी को सहन नहीं कर सकता उसी प्रकार माली को इन्द्र का स्वयं को इन्द्र समझकर गर्व करना सहन नहीं हुआ। अतः वह अपने पराक्रमी भाई, मन्त्री और मित्रों को साथ लेकर इन्द्र से युद्ध करने आया। पराक्रमी पुरुषों के हृदय में युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई विचार ही नहीं आता। अन्य राक्षस वीर भी वानर वीरों को लेकर सिंह, हाथी, घोड़ा, महिष, वराह और वृषभादि वाहन पर बैठकर युद्ध में अग्रसर हुए। रवाना

होने के समय गर्दभ, सियार, सारस आदि उनके दाहिनी ओर खड़े होकर चीत्कार करने लगे जबकि वे वाममार्गी थे। इस अपशकुन को देखकर बुद्धिमान सुमाली ने माली को युद्ध यात्रा से निवृत्त करना चाहा; किन्तु भुजबल के गर्व से गर्वित माली उसकी बात पर कान न देकर दलबल सहित वैताढ्य पर्वत पर जाकर इन्द्र का युद्ध के लिए आह्वान किया। इन्द्र हाथ में बज्र लेकर नैगमेषी आदि सेनापति, सोमादि दिक्पाल और विविध शस्त्रधारी सेना से परिवृत होकर ऐरावत पर आरूढ़ युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुआ। विद्युद् रूप अस्त्र लेकर आकाश में जैसे मेघ संघर्ष करता है उसी प्रकार इन्द्र और राक्षसों की सेना में परस्पर संघर्ष प्रारम्भ हुआ। अर्थात् एक ने दूसरे पर आक्रमण किया। कहीं पर्वत शिखर की भाँति रथ टूटकर गिरने लगा, कहीं हवा द्वारा उड़ा कर ले जाए गए मेघ की तरह हस्तीयूथ छिन्न-भिन्न होने लगे। कहीं राहुमुण्ड की तरह सैनिकों के कटे मुण्ड गिरने लगे। कहीं अश्वों के एक पैर कट जाने के कारण वे इस प्रकार चलने लगे मानो रज्जुबद्ध किए हुए हैं। इस भाँति इन्द्र की सेना ने माली की सेना को अस्त-व्यस्त कर डाला। सिंह द्वारा पकड़ा गया हाथी बलवान होने पर भी क्या कर सकता है? (श्लोक १११-१२३)

तब राक्षसपति माली सुमाली आदि ने अन्य वीरों को लेकर यूथ सह यूथपति हस्ती की तरह इन्द्र की सेना पर आक्रमण किया। उसके पराक्रमी वीरगण मेघ जैसे शिलावृष्टि का उपद्रव करता है उसी प्रकार गदा-मुद्गर और तीक्ष्ण तीरों से इन्द्र की सेना को व्याकुल कर डाला। अपनी सेना को त्रस्त होते देखकर इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर स्वलोकपाल और सेनापतियों को लेकर युद्ध क्षेत्र में अग्रसर होने लगा। इन्द्र माली के साथ एवं लोकपालादि सुमाली और अन्य वीरों के साथ युद्ध करने लगे। मृत्यु को हाथ में लिए इस प्रकार उभय पक्ष बहुत देर तक युद्ध करता रहा। जो जय के अभिलाषी होते हैं वे प्रायः मृत्यु को हाथ में लेकर ही युद्ध करते हैं। युद्ध में किसी भी प्रकार छलना का आश्रय लिए बिना युद्ध करते हुए इन्द्र मेघ जैसे विद्युत के द्वारा गोधिका को मार डालता है उसी प्रकार बज्र से गर्वित माली को मार डाला। माली की मृत्यु से राक्षस और वानरों के भयभीत होने के कारण सुमाली

उन्हें लेकर पाताल लङ्का में चला गया। कौशिका के गर्भ से उत्पन्न वैश्रवा के पुत्र वैश्रवण को लङ्का का राज्य देकर इन्द्र अपनी राजधानी को लौट गया। (श्लोक १२४ १३१)

पाताल लङ्का में रहते समय सुमाली की प्रीतिमति नामक पत्नी के गर्भ से रत्नश्रवा नामक एक पुत्र हुआ। बड़ा होने पर वह विद्यासाधना के लिए पुष्पोद्यान में गया। वहाँ चित्र खिचित-सा स्थिर होकर अक्षमाला हाथ में लेकर नाक के अग्रभाग में दृष्टि रखकर वह जप करने लगा। रत्नश्रवा जब इस प्रकार जप कर रहा था तब खूब सुन्दर एक विद्याधर कन्या अपने पिता के आदेश से उसके सम्मुख खड़ी होकर बोलने लगी—'मैं मानव सुन्दरी नामक महाविद्या हूं। तुमने मुझे प्राप्त कर लिया।' यह सुनकर विद्या सिद्ध हो गई समझकर रत्नश्रवा ने जपमाला फेंक दी; किन्तु आँख खोलते ही अपने सम्मुख एक विद्याधर कुमारी को खड़े देखकर बोला, 'तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? यहाँ क्यों आई हो?' प्रत्युत्तर में वह बोली, 'अनेक कौतुकों का गृहरूप कौतुक मङ्गल नामक नगर में व्योमबिन्दु नामक एक राजा है। कौशिका नामक उनकी बड़ी लड़की है, वह मेरी बहन है। यक्षपुर के वैश्रवा के साथ उसका विवाह हुआ है। उसके वैश्रवण नामक एक नीतिवान पुत्र है। वह अभी राजा इन्द्र की आज्ञा से लङ्का में राज्य कर रहा है। मेरा नाम है कैकसी। किसी नैमित्तिक के कहने से मेरे पिता ने मुझे आपको सम्प्रदान कर दिया है। इसीलिए मैं यहां आई हूं। सुमाली के पुत्र रत्नश्रवा ने यह सुनकर अपने आत्मीय स्वजनों को बुलवाया और कैकसी के साथ विवाह कर पुष्पोत्तर नामक नगर बसाकर, उसके साथ यौवन सुख भोग करते हुए वहीं रहने लगा। (श्लोक १३२-१४३)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एक रात्रि कैकसी ने स्वप्न देखा—हस्तीकुम्भ को विदीर्ण करते हुए एक सिंह उसके मुख में प्रविष्ट हो गया। दूसरे दिन सुबह उसने अपने पति को स्वप्न बतलाया। रत्नश्रवा बोला—'यह स्वप्न सूचित करता है कि तुम्हारे महाबलवान और अद्वितीय पुत्र होगा।' उस स्वप्न को देखने के पश्चात् कैकसी प्रतिदिन चैत्यपूजन के लिए जाने लगी और उस महासारभूत गर्भ का पोषण करने लगी। गर्भ के प्रभाव से उसकी वाणी कर्कश हो गई, शरीर श्रम करने में समर्थ

और दृढ़ हो गया। दर्पण हाथ में होते हुए भी वह खड़ग में अपना मुख देखने लगी और निःशङ्क होकर देवों को भी आज्ञा देने लगी। बिना प्रयोजन के ही उसके मुख से परुष वाक्य निकलने लगे। गुरुजनों के सम्मुख भी उसने सिर झुकाना छोड़ दिया। विज्ञजनों के मस्तक पर पैर रखने की उसकी इच्छा होने लगी। इस भांति गर्भ के प्रभाव से वह सबके प्रति कठोर भाव रखने लगी। यथा समय उसने चौदह हजार वर्ष की आयुष्ययुक्त पुत्र को जन्म दिया उसके जन्म के समय समस्त शत्रुओं के सिंहासन कम्पित हो गए। सूतिकागृह में सोए हुए ही हाथ-पांव चलाता हुआ वह पराक्रमी शिशु पास में ही रखी करण्डिका से नौ माणिक्ययुक्त हार को जिसे कि भीमेन्द्र ने उनके पूर्वजों को दिया था खींचकर बाहर निकाल लिया और शिशु की सहज चपलता से ही उसे धारण कर लिया। कैकसी और धात्रियां इस दृश्य को देखकर चकित हो गईं। कैकसी अपने पति को बोली—'हे नाथ, जो हार राक्षसेन्द्र ने आपके पूर्व पुरुष राजा मेघवाहन को दिया था, जिस हार की आपके पूर्वज आज तक पूजा करते आ रहे हैं, जिस नौ माणिक्ययुक्त हार को कोई उठा नहीं सका और निधि की तरह जिसकी एक हजार नागदेव रक्षा करते हैं उसी हार को आपके नवजात शिशु ने आज करण्डिका से खींचकर बाहर निकाला और गले में पहन लिया।' नौ माणिक्यों में उसका मुख प्रतिबिम्बित होने के कारण रत्नश्रवा ने उसी समय उसका नाम दसमुख (दशानन) रखा और बोला—'मेरे पिता सुमाली एक बार जब चैत्यवन्दन करने मेरु पर्वत पर गए थे तब वहां एक मुनि से एक प्रश्न किया था जिसके प्रत्युत्तर में उन चार ज्ञान के धारक मुनि ने कहा था—तुम्हारे पूर्व की परम्परा से आया नौ माणिक्ययुक्त हार जो धारण करेगा वह अर्द्ध-चक्री अर्थात् प्रतिवासुदेव होगा।' (श्लोक १४४-१६०)

कालान्तर में कैकसी ने पुनः गर्भधारण किया। गर्भधारण के समय स्वप्न में सूर्य को देखा। अतः नव जातक के होने पर उसका नाम भानुकर्ण रखा। अन्य नाम कुम्भकर्ण। फिर इसके बाद कैकसी ने एक कन्या को जन्म दिया। उसके नाखून चन्द्रमा-से सुन्दर थे। उसका नाम इसलिए चन्द्रनखा रखा गया; किन्तु लोग उसे सूर्पनखा कहने लगे। कुछ समय बाद चन्द्र स्वप्न से सूचित होकर कैकसी

ने विभीषण नामक एक पुत्र को जन्म दिया। तीनों भाइयों की ऊंचाई सोलह धनुष से अधिक थी। तीनों भाई बाल सुलभ क्रीड़ा करते हुए बाल्यकाल व्यतीत करने लगे। (श्लोक १६१-१६४)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्रथम सर्ग समाप्त

द्वितीय सर्ग

एक दिन दसमुख और उसके भाइयों ने वैश्रवण को महासमृद्धशाली विमान में बैठकर जाते देखा। वह कौन है, यह पूछने पर उसकी मां बोली—'वह मेरी बड़ी बहन कौशिकी का पुत्र है। उसके पिता का नाम विश्रवा है। समस्त विद्याधरों के अधीश्वर इन्द्र का वह मुख्य सैनिक है। इन्द्र ने तुम्हारे पितामह के अग्रज माली की हत्या कर राक्षस द्वीप सहित हमारी लङ्का नगरी भी उसे दे दी। तभी से तुम्हारे पिता लङ्कापुरी के उद्धार की इच्छा लिए यहीं रह रहे हैं। शत्रु के समर्थ होने पर ऐसा ही करना उचित है। (श्लोक १-५)

'राक्षसपति भीमेन्द्र ने शत्रुओं का प्रतिकार करने के लिए हमारे पूर्वजों के पुत्र मेघवाहन को जो कि राक्षसवंश के आदि पुरुष थे लङ्का सहित राक्षस द्वीप पाताल लङ्का और राक्षसी विद्या प्रदान की थी। तुम्हारे पूर्व पुरुषों की राजधानी पर शत्रुओं का दखल हो जाने के कारण तभी से तुम्हारे पितामह, पिता प्राणहीन जड़ पदार्थ की भांति यहां निवास कर रहे हैं। वृष जैसे रक्षणहीन क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करता है उसी भांति शत्रु वहां स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं। यह बात तुम्हारे पिता के हृदय को शल्य की तरह बींध रही है। वत्स, मैं अभागिन न जाने कब तुम्हें और तुम्हारे भाइयों को तुम्हारे पितामह के लङ्का के सिंहासन पर बैठकर राज्य करते देखूंगी। लङ्का को लूटने वालों को कब कारागार में कैदी रूप में देखकर पुत्रवतियों में स्वयं को अग्रगण्य समझूंगी। हे पुत्र, आकाश-कुसुम से अपने इस मनोरथ को हृदय में रखे यहां दिन व्यतीत कर रही हूं और उस मनोरथ की पूर्ति न होते देखकर हंसिनी जिस प्रकार मरुभूमि में मुरझाती है उसी प्रकार दिन पर दिन चिन्ता के भार से सूखती जा रही हूं।' (श्लोक ६-१२)

मां की यह बात सुनकर विभीषण का मुख क्रोध से भयंकर हो उठा। वह बोला – 'मां, दुःखी मत हो वर्ना तुम अपने पुत्रों के पराक्रम को नहीं जानती। हे देवी, महाबलशाली अग्रज दशानन के आगे इन्द्र भी क्या और वैश्रवण भी क्या? अन्य बली विद्याधरों की तो बात ही छोड़िए। सुप्त सिंह जिस प्रकार गजेन्द्र की गर्जन सहन करता है, उसी प्रकार वस्तु स्थिति से अज्ञात होने के कारण उन्होंने लङ्का में शत्रुओं के अवस्थान को इतने दिनों तक सहन किया। आर्य दशानन के अतिरिक्त कुम्भकर्ण ही इन शत्रुओं को निःशेष करने में समर्थ हैं। इतना ही नहीं, क्या मेरे अग्रज यदि मुझे आदेश दें तो मैं ही वज्रपात की तरह शत्रुओं पर पतित होकर उनका नाश कर सकता हूं।' (श्लोक १३-१७)

यह सुनकर रावण निचले होठों का दंशन करता हुआ बोला, 'मां, सचमुच ही तुम्हारा हृदय वज्र की तरह कठोर है। तभी तो इतने दिनों तक इस दुःख को हृदय में वहन करती आ रही हो। इन्द्रादि विद्याधरों को तो मैं केवल हाथों से ही मर्दन कर सकता हूं। शस्त्र के बदले शस्त्र की तो बात ही क्या? कारण, वे मेरे लिए तृणवत् है। यद्यपि मैं बाहुबल से उन्हें पराजित कर सकता हूं फिर भी विद्या जो कुलक्रमागत है उसका व्यवहार ही उपयुक्त है। उन अनन्य विद्याओं को मैं अधिगत करूंगा। अतः मां, आदेश दो अपने अनुजों सहित मैं उन विद्याओं की साधना करूं।'

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(श्लोक १८-२१)

ऐसा कहकर उसने माता-पिता को प्रणाम किया। माता-पिता ने उसका मस्तक चूमा। तदुपरान्त वह अनुज सह भयङ्कर महावन में चला गया। वह महावन समीप के वृक्षों पर स्थित सरिसृप और अजगरों की निःश्वास से कांपता रहता, गर्वित बाघों की पूंछ के आघात से पृथ्वी दीर्ण-विदीर्ण होती रहती। वृक्षों से उत्थित वृहद-वृहद उल्लुओं के चीत्कार से सर्वत्र भय सा छाया रहता। नृत्यरत भूत-प्रेतों के चरणाघात से पर्वतों के शिलाखण्ड टूट-टूट कर गिरते रहते। श्वापद संकुल उस वन में प्रवेश करते देव भी डरते थे। ऐसे महावन में तपस्वियों की भांति जटा मुकुट धारण कर हाथ में अक्षमाला लेकर श्वेत वस्त्र पहनकर नासाग्र पर दृष्टि रखकर तीनों भाइयों ने सर्व अभिष्ट प्रदानकारी

अष्टाक्षरी विद्या को दो प्रहर में ही सिद्ध कर ली। तदुपरान्त वे सोलह अक्षरी विद्या, जो कि दस हजार जाप में सिद्ध होती है, सिद्ध करने के लिए जाप करने लगे। (श्लोक २२-२८)

उसी समय जम्बूद्वीप के अधीश्वर अनाद्दत नामक यक्ष अन्तःपुरिकाओं को लेकर उस वन में क्रीड़ा करने आए एवं वहां उन लोगों को देखकर वे अपना मन्त्र सिद्ध न कर सके इसलिए अनुकूल उपसर्ग की सृष्टि कर अपनी अन्तःपुरिकाओं को वहां भेजा। वे उन्हें लुब्ध करने आई थीं; किन्तु उनका रूप और यौवन देखकर स्वयं ही लुब्ध होकर अपने पति की बात भूल गईं और उन्हें मौन, स्थिर, निर्विकारी देखकर कामातुर बनी बोलने लगी, 'आर्य, आप लोग क्यों ध्यान में जड़ होकर बैठे हैं? एक बार आंख खोलकर हमारी ओर देखने का प्रयत्न करें। हम देव कन्याएँ आपके वशीभूत हो गई हैं। इससे अधिक आप और क्या सिद्ध करना चाहते हैं? अब विद्या-सिद्धि के लिए प्रयत्न क्यों? उसकी क्या आवश्यकता है? जबकि देवियां ही आपके वशीभूत हो गई हैं तो आप विद्या लेकर क्या करेंगे? हे देवोत्तमगण, तीन लोक के सबसे अधिक रमणीय प्रदेश में जाकर अभी तो हमारे साथ यौवन सुख भोग करिए।' (श्लोक २९-३५)

अत्यन्त मधुर भाव से सम्बोधन करने पर भी वे तीनों धैर्यशाली भाई जरा भी विचलित नहीं हुए। इससे वे देवियां ही लज्जित हो गईं। कहा भी है—एक हाथ से ताली नहीं बजती। (श्लोक ३६)

जम्बूद्वीपाधिपति यक्ष तब वहां जाकर कहने लगा, 'मुग्धों, इस प्रकार जड़ बनने की चेष्टा तुम लोग क्यों कर रहे हो? लगता है किसी अप्रामाणिक भ्रान्त मतावलम्बी ने अकाल मृत्यु के लिए तुम लोगों को ऐसे कार्य में प्रवृत्त किया है। अतः यह दुराग्रह छोड़ो और मुझसे कुछ मांगो। मैं तुम लोगों की इच्छा पूर्ण करूँगा।' इतना कहने पर भी जब वे मौन ही रहे तब क्रुद्ध होकर वह यक्ष उनसे बोला, 'मूर्खों, अपने सम्मुख खड़े देव की उपेक्षा कर तुम लोग और किसका ध्यान कर रहे हो?' ऐसा कहकर उस देव ने भृकुटि द्वारा अपने अनुचरों को उन पर आक्रमण करने का संकेत किया। तब वे लोग किल-किल करते हुए विविध रूप धारण

कर पर्वत शिखर और बड़ी-बड़ी शिलाओं को लाकर उनके सम्मुख फेंकने लगे। कोई सर्प बनकर चन्दन वृक्ष वेष्टन करने की भांति उनकी देह से लिपट गया। कोई सिंह बनकर उनके सामने गरजने लगा। कोई भालू, बाघ, बन्दर और बिलाव का रूप धारण कर उन्हें डराने लगा। तब भी तीनों भाई जरा भी क्षुब्ध नहीं हुए। तब वे कैकसी, रत्नश्रवा एवं उनकी बहन चन्द्रनखा का प्रतिरूप सृष्टिकर उन्हें बद्ध अवस्था में उनके सामने लाकर पटक दिया। माया निर्मित कैकसी रत्नश्रवादि तब अश्रुजल प्रवाहित करते हुए इस प्रकार विलाप करने लगे— (श्लोक ३७-४६)

'निषाद जैसे पशुओं को बांधकर ले जाता है उसी प्रकार ये हम लोगों को बांध लाए हैं। ये निर्दयी तुम्हारे सम्मुख हम पर अत्याचार कर रहे हैं और तुम लोग शान्त हो? हे दसस्कन्ध, उठो उठो, हमारी रक्षा करो। एक लक्ष्य होकर तुम लोग क्या हमारी उपेक्षा कर रहे हो? हे दसस्कन्ध जब तुम छोटे थे तब तुमने स्वयं ही महामाला धारण कर ली थी। आज तुम्हारा वह भुजबल और मार्गदर्शक दर्प कहां गया? हे कुम्भकर्ण, हम लोगों की ऐसी दीनावस्था देखकर भी तुम किस प्रकार संसार-विरक्त की भांति हम लोगों के प्रति उदासीन हो गए हो? हे विभीषण, आज तक तुम एक मुहूर्त के लिए भी हमारी भक्ति से विरक्त नहीं हुए तो क्यों आज मेरे दुर्भाग्य ने तुम्हारी बुद्धि को विभ्रान्त कर दिया है।' (श्लोक ४७-५१)

इस प्रकार के करुण विलाप को सुनकर भी जब वे ध्यान से विचलित नहीं हुए तब यक्ष के अनुचरों ने उनके सम्मुख ही उनकी हत्या कर डाली। इससे भी जब वे विचलित नहीं हुए मानो उनके सम्मुख उनकी हत्या हुई ही नहीं, तब वे माया की सहायता से विभीषण और कुम्भकर्ण का मस्तक काटकर रावण के सम्मुख और रावण का मस्तक काटकर विभीषण और कुम्भकर्ण के सम्मुख फेंक दिया। रावण का माथा देखकर दोनों भाई कुछ क्रुद्ध हुए। इसका कारण था उनकी बड़ों के प्रति भक्ति, अल्पसत्त्व नहीं। परमार्थ के ज्ञाता रावण ने इस अनर्थ की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया बल्कि विशेष रूप से दृढ़ होकर पर्वत की भांति स्थिर हो गया। तब आकाश में 'साधु साधु' शब्द गूंज उठा। इस देववाणी को सुनकर यक्ष के अनुचर भयभीत होकर वहां से भाग छूटे। (५२-५७)

उसी समय आकाश से अवतरित होकर दिशा-विदिशाओं को आलोकित करती एक हजार विद्याएँ रावण के सम्मुख स्थित होकर रावण को सम्बोधित कर बोली—'हम तुम्हारे अधीन हैं।

(श्लोक ५८)

प्रज्ञप्ति, रोहिणी, गौरी, गान्धारी, नभःसंचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, अणिमा, लघिमा, अक्षयोभ्या, मनःस्तम्भनकारिणी, सुविधाता, तपोरूपा, दहनी, विपुलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिवारात्रिविधायिनी, वज्रोदरी, समाकृष्टि, अदर्शनी, अजरामरा, अनलस्तम्भनी, तोयस्तम्भनी, गिरिदारिणी, अवलोकिनी, बह्नि, घोरा, वीरा, भुजगिनी, वारिणी, भूवना, अवन्ध्या, दारुणी, मदनाशनी, भास्करी, रूपसम्पन्ना, रोशनी, विजया, जया, वर्द्धनी, मोचनी, वाराही, कुटिलाकृति, चित्तोद्भवकरी, शान्ति, कौवेरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, बलोत्साही, चण्डा, भीति, प्रधर्षिणी, दुर्निवारा, जगत्कम्पकारिणी, भानुमालिनी आदि एक हजार महाविद्याएँ पूर्व जन्म की सुकृति के फलस्वरूप महात्मा रावण को अल्प दिनों में ही सिद्ध हो गयीं। सम्वृद्धि, जृम्भणी, सर्वहारिणी, व्योमभामिनी व इन्द्राणी—ये पांच विद्याएँ कुम्भकर्ण ने सिद्ध कीं। सिद्धार्था, शत्रुदमनी, निर्व्याघाता और आकाशगामिनी ये चार विद्याएँ विभीषण ने सिद्ध कर लीं। जम्बूद्वीप के अधिपति ने रावण के निकट आकर क्षमा मांगी। महान् पुरुषों के प्रति अपराध किया हो तो (अपनी भलाई का) उपाय क्षमा प्रार्थना ही है। पूर्व कृत विघ्न के प्रायश्चितस्वरूप उसने रावण के लिए वहां स्वयंप्रभ नामक नगर बसा दिया। विद्या-सिद्धि का संवाद पाते ही उसके माता-पिता, बहन और आत्मीय स्वजनों ने वहां आकर उनको सम्वर्द्धित किया। माता-पिता की दृष्टि में अमृतवृष्टि और आत्मीय स्वजनों के हृदय में आनन्द-उल्लास उत्पन्न कर वे वहां रहने लगे। तत्पश्चात् रावण ने छह दिनों का उपवास कर दिक्-समूह पर विजयलाभ करने के लिए उपयोगी चन्द्रहास नामक श्रेष्ठ खड्ग प्राप्त की। (श्लोक ५९-७३)

उस समय वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी की अलङ्कार रूप सुर-संगीत नामक नगरी में मय नामक राजा राज्य करता था। समस्त गुणों की निवासरूप उसकी पत्नी का नाम हेमवती था।

हेमवती के गर्भ से उत्पन्न उसकी कन्या का नाम था मन्दोदरी। जब वह पूर्ण यौवना हुई तब मय उसके योग्य पति खोजने लगा। समस्त विद्याधर कुमारों के रूप, गुणों की तुलना कर भी उनमें वह उसके उपयुक्त वर नहीं पा सका। इससे वह बहुत ही चिन्तित था। एक दिन मन्त्री उससे आकर बोला—'महाराज, आप चिन्तित न हों। रत्नश्रवा का पुत्र दशमुख बलवान् और रूपवान् है। वह अपनी कन्या के लिए उपयुक्त वर है। पर्वतों में जैसे मेरु है उसी प्रकार विद्याधर कुमारों के मध्य सहस्र विद्या का साधक, वह कुमार है। देव भी उसे चलित नहीं कर सकते।' (श्लोक ७४-७९)

यह सुनकर मय बोला—'ठीक है।' फिर वह मन्दोदरी को रावण को अर्पित करने के लिए जाति, बन्धु, परिवार, सैन्य सहित स्वयंप्रभ नगरी में पहुंचा। जाने के पहले ही अपने आने की खबर उन लोगों को दे दी थी। वहां सुमाली आदि ज्येष्ठ पुरुषों ने मन्दोदरी के साथ रावण का सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। सुमाली और मय ने एक शुभ दिन देखकर खूब धूमधाम से उनका विवाह-संस्कार पूर्ण कर दिया। विवाहोत्सव के पश्चात् मय परिवार सहित अपने नगर को लौट गया। रावण सुन्दरी मन्दोदरी के साथ आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करने लगा। (श्लोक ८०-८४)

एक बार रावण मेघरथ पर्वत पर क्रीड़ा करने गया। पर्वतों पर मेघों के टिक जाने से लगता था मानो वे पंखयुक्त हों और अभी उड़ जाएँगे। क्षीरोद सागर में जैसे अप्सराएँ स्नान करती हैं उसी प्रकार वहां एक सरोवर में एक हजार खेचर कन्याओं को स्नान करते देखा। उन्होंने भी रावण को देखा। पद्मिनियां जिस प्रकार सूर्य को देखकर विकसित हो जाती हैं उसी प्रकार वे अपने नेत्र रूपी कमलों को विकसित कर पति रूप में रावण को पाने की कामना से सानुराग उसे देखने लगीं। तदुपरान्त काम पीड़िता वे लज्जा का परित्याग कर उसके पास गयीं और बोलीं—'आर्य, आप हम लोगों को पत्नी रूप में ग्रहण करें।' उनमें सर्वश्री और सुरसुन्दर की कन्या पद्मावती, मदनवेगा और बुध की कन्या अशोकलता, सन्ध्या एवं कनक की कन्या विद्युतप्रभा और अन्य सभी लोकप्रसिद्ध वंश की कन्याएँ थीं। इन मुग्धा कन्याओं के

साथ मुग्ध बने रावण ने उसी जगह गान्धर्व विवाह कर लिया।

(श्लोक ८५-९१)

कन्याओं के साथ आगत आरक्षकों ने यह देखकर अपने-अपने प्रभु को निवेदन किया कि कोई व्यक्ति कन्याओं को विवाह कर लिए जा रहा है। यह सुनकर खेचरेन्द्र अमर सुन्दर क्रोध से उद्दीप्त बना कन्याओं के पिताओं के साथ रावण को मारने के लिए उसके पीछे दौड़ा। उन्हे आते देखकर नववधू कन्याएँ भयभीत होकर रावण से बोलीं, 'हे नाथ, हे स्वामिन्! विमान को द्रुतगति से चलाइए, देरी मत करिए। कारण, अमरसुन्दर अकेला ही अजेय है फिर अभी तो उसके साथ कनक, बुध आदि बहुत से योद्धा हैं।' यह सुनकर रावण जरा हँसकर बोला, 'डरो मत तुम लोग, अभी, जैसे सर्प के साथ गरुड़ युद्ध करता है उसी प्रकार उनके साथ मुझे युद्ध करते देखोगी।' रावण जब यह कह रहा था उसी समय पहाड़ को आच्छादित कर पहाड़ से जैसे मेघ उड़कर आते है उसी प्रकार अस्त्र-शस्त्रों से रावण को आच्छादित कर खेचर सेना दौड़ी। शक्तिधर रावण ने अपने शस्त्रों द्वारा उनके शस्त्रों को काटकर न मारने की इच्छा से प्रस्वापन अस्त्र के द्वारा उन सबको मोहित कर नागपाश में पशुओं की तरह आबद्ध कर दिया। खेचर कन्याओं ने अपने-अपने पिता की जीवन भिक्षा मांगी। तब रावण ने सबको मुक्त कर दिया। खेचरगण तदुपरान्त अपने अपने नगर को लौट गए और रावण नव-विवाहिताओं को लेकर स्वयंप्रभ नगर को लौट गया। आनन्दित पुरवासियों ने रावण का स्वागत एवं अभ्यर्थना की।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(श्लोक ९२-१००)

कुम्भकर्ण का विवाह कुम्भपुर के राजा महोदर की पत्नी सुरूपनयना के गर्भ से उत्पन्न तड़िन्माला के साथ हुआ। विद्युत-माला-सी कान्तियुक्त तड़िन्माला के स्तन पूर्ण कुम्भ के-से थे। विभीषण का विवाह वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी के ज्योतिषपुर के राजा वीर की पत्नी नन्दवती के गर्भ से उत्पन्न कन्या पंकजश्री के साथ हुआ। वह देवांगना-सी रूप सम्पन्ना और पंकज शोभा का अपहरण करने वाली पंकज-नयनी थी। (श्लोक १०१-१०४)

मन्दोदरी ने इन्द्र-से वैभव सम्पन्न और अद्भुत पराक्रमशाली इन्द्रजीत नामक पुत्र को जन्म दिया। उसके कुछ ही पश्चात् उसने

मेघ की तरह नेत्रों को आनन्द देने वाले मेघवाहन नामक एक और पुत्र को जन्म दिया। (श्लोक १०५-१०६)

पिता के साथ वैश्रवण की शत्रुता की बात स्मरण कर बिभीषण और कुम्भकर्ण बीच-बीच में वैश्रवण शासित लंका राज्य में उपद्रव करने लगे। इससे कुपित होकर वैश्रवण ने सुमाली के पास यह कहकर दूत भेजा—'रावण के छोटे भाई, तुम्हारे पुत्र कुम्भकर्ण और विभीषण को समझाकर लंका में उपद्रव करने से रोको। ये दोनों दुर्मद युवक पाताल लंका से कूप-मंडुक की भाँति अपनी शक्ति का परिमाप किए बिना ही स्वयं को वीर समझकर जयलाभ की इच्छा से मेरे राज्य में उपद्रव करते हैं। मैं बहुत दिनों से उनकी उपेक्षा करता आ रहा हूं। ओ क्षुद्र, अब भी तूने उन्हें नहीं रोका तो उनके साथ तुझे भी वहाँ भेज दूंगा जहाँ माली गया है। तू तो मेरी शक्ति से भलीभाँति परिचित है।'(श्लोक १०७-१११)

दूत की यह बात सुनकर महा मनस्वी रावण क्रोधित होकर बोल उठा, 'कौन है यह वैश्रवण जो अन्य को कर देता है? जो दूसरे के आदेश से लंका में शासन करता है उसको ऐसी बात कहने में लज्जा भी नहीं आती? ओह कितनी धृष्टता है! तू दूत है अतः तेरी हत्या नहीं करूंगा। जा मेरे सामने से चला जा।'

(श्लोक ११२-११३)

रावण की बात सुनकर दूत तत्काल वैश्रवण के पास लौट गया और सब कुछ ज्यों का त्यों कह सुनाया। क्रुद्ध रावण दूत के पीछे पीछे अनुज और सैन्य सहित लंका पर आक्रमण करने के लिए निकल पड़ा और दूत के द्वारा वैश्रवण को युद्ध का निमंत्रण भेजा। अप्रतिहत तूफान जैसे एक मुहूर्त में ही अरण्य को अस्त-व्यस्त कर डालता है उसी प्रकार रावण ने वैश्रवण की सेना को तहस-नहस कर डाला। वैश्रवण स्व-सेना की पराजय को अपनी पराजय समझकर एवं क्रोध शान्त होने पर सोचने लगा। कमल के विनष्ट होने पर जैसे सरोवर की, दाँत टूट जाने पर हस्ती की, शाखा भंग हो जाने पर वृक्ष की शोभा नहीं रहती या मणिहीन अलंकार की, चाँदनी रहित चन्द्र की, जलहीन मेघ की जो स्थिति होती है शत्रु द्वारा मान मर्दित होने पर उसकी भी वही स्थिति हो जाती है। धिक्कार है ऐसी स्थिति को! जिसका मान मर्दित हुआ है ऐसा व्यक्ति यदि

उसी स्थिति में मुक्ति के लिए प्रयास करे तब वह यथार्थ स्थान पर पहुंच सकता है। अल्प परित्याग कर विशेष इच्छा करने वाला कभी लज्जास्पद नहीं होता। मैं अब वही करूँ। अनेक अनर्थों का मूल इस राज्य की अब मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। मैं मोक्ष-

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मन्दिर के द्वार-सी दीक्षा ग्रहण करूँगा। यहाँ तक कि विभीषण और कुम्भकर्ण जिन्होंने मुझे नष्ट करने की चेष्टा की वे भी मेरे उपकारी हैं क्योंकि उनके कारण ही मुझे इस सन्मार्ग का बोध हुआ है। (मामा के पुत्र होने के कारण) रावण मेरा बान्धव ही तो था। अब अपने कार्य द्वारा भी वह मेरा बान्धव हुआ है। वह यदि युद्ध करने यहाँ नहीं आता तो ऐसी श्रेष्ठ बुद्धि तो मुझे मिलती ही नहीं।

(श्लोक ११४-१२४)

ऐसा सोचकर शस्त्र फेंककर वैश्रवण ने स्वयं ही दीक्षा ग्रहण कर ली और तत्त्वविचार में निमग्न हो गया। यह देखकर रावण ने उन्हें वन्दना की और करबद्ध होकर बोला—'आप मेरे अग्रज हैं। अनुज के अपराध को क्षमा करें। आप निःशंक होकर लंका पर राज्य करें। मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। कारण पृथ्वी विपुला है।'

(श्लोक १२५-१२८)

उसी जीवन में मुक्ति का अधिकारी वैश्रवण ने प्रतिमा धारण कर रखी थी अतः रावण के कथन का प्रत्युत्तर नहीं दिया। उन्हें निःस्पृह देखकर रावण ने उनसे क्षमा प्रार्थना की और लंका एवं पुष्पक विमान पर अपना अधिकार कर लिया। तदुपरान्त विजय लक्ष्मी-रूपा लता के पुष्प की तरह उसी विमान पर बैठकर वह सम्मेत शिखर पर अर्हत वन्दना के लिए गया। अर्हत वन्दना के पश्चात् नीचे उतरते समय रावण ने सैन्यदल के कोलाहल की भाँति वन्य हस्ती की गर्जना सुनी। उसी समय प्रहस्त नामक एक प्रतिहारी आकर रावण से बोला, 'हे देव, यह हस्तीरत्न आपका वाहन बनने के योग्य है।' यह सुनते ही रावण वहाँ गया और सात हाथ ऊँचे, नौ हाथ दीर्घ एक हस्ती को देखा जिसके दाँत ऊँचे और दीर्घ थे। जिसके नेत्र मधु या दीपशिखा की भाँति पिंगल थे, जिसका कुम्भ-स्थल शैल-शिखर की तरह उन्नत और मदरूपी नदी का उद्गम स्थल था। रावण ने खेल ही खेल में उस हाथी को वश में कर लिया और उसकी पीठ पर चढ़कर बैठ गया। उसकी पीठ पर बैठा

रावण ऐसा लग रहा था मानो ऐरावत पर इन्द्र बैठा हो। रावण ने उसका नाम रखा भुवनालंकार। उस हाथी को आलान स्तम्भ से बाँधकर उस रात वह वहीं रहा। दूसरे दिन सुबह जब वह सभासदों सहित सभा में बैठा था उसी समय द्वाररक्षक द्वारा सूचना देकर पवनवेग नामक एक विद्याधर ने उस सभा में प्रवेश किया। उसका समस्त शरीर अस्त्राघात से क्षत-विक्षत था। वह रावण को प्रणाम कर बोला— (श्लोक १२८-१३७)

'हे देव, किष्किंधी राजा का पुत्र सूर्य राजा और ऋक्षराज पाताल लंका से किष्किंधा गए थे। वहाँ यम की भाँति भयंकर प्राणों को संशय में डालने वाला यमराज के साथ उनका तुमुल युद्ध हुआ। बहुत देर तक युद्ध करने के पश्चात् यम ने दोनों भाइयों को बाँधकर चोर की तरह कारागार में डाल दिया और उस कारागार को उसने वैतरणी पार के नरकावास में परिणत कर दिया है। वह वहाँ छेदन-भेदन कर दोनों भाइयों को अनुचरों सहित नाना प्रकार की नारकीय यन्त्रणा दे रहा है। हे राजन्, वे आपके बहुत दिनों से सेवक हैं। उनका पराभव आपका पराभव है। अतः आप उन्हें मुक्त करें। आपकी आज्ञा अलंघ्य है।' (श्लोक १३८-१४२)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

रावण बोला, 'तुम जो कुछ कह रहे हो वह ठीक है। आश्रय-दाताओं की दुर्बलता के कारण ही आश्रित का पराभव होता है। मेरे नहीं रहने पर दुर्बुद्धि यम ने मेरे सेवकों को नीचतापूर्वक जो कारागार में डाल दिया है उसका प्रतिफल मैं उसे शीघ्र दूंगा।'

श्लोक (१४३-१४४)

यह कहकर उग्र भुजबलों को धारण करने वाला रावण युद्ध करने की इच्छा से सेना लेकर दिक्‌पाल यम द्वारा रक्षित किष्किंधा नगरी गया। वहाँ उसने त्रपुपान, शिला-स्फालन, पशुच्छेद आदि महा दुःखदायी सात नरक देखे। उन्हीं नरकों में स्वयं के सेवकों को दुःख पाते देखकर उसने आरक्षक परमाधर्मियों को गरुड़ जैसे सर्प को त्रासित कर देता है उसी प्रकार त्रासित किया और नरकावास भग्न कर सेवकों सहित अन्य बन्दियों को भी मुक्त कर दिया। महापुरुषों का आगमन किसका कष्ट दूर नहीं करता?

(श्लोक १४५-१४८)

नरक के रक्षकों ने त्रासित होकर दोनों हाथ ऊँचे किए रोते-

रोते यमराज को जाकर समस्त कथा निवेदन की। उनकी बात सुनकर यम साक्षात् यम की तरह प्रतिभासित होने लगा और मानो युद्धरूपी नाटक का सूत्रधार हो इस प्रकार अपनी सेना लेकर क्रोध से आंखें लाल किए युद्ध करने नगर से निकला। सैनिक सैनिक के साथ, सेनापति सेनापति के साथ, क्रुद्ध यम क्रुद्ध रावण के साथ युद्ध करने लगा। बहुत देर तक यम और रावण के मध्य बाणयुद्ध चलता रहा। तदुपरान्त उन्मत्त हाथी जैसे सूंड रूपी दण्ड उठाकर दौड़ता है वैसे ही स्वदण्ड लिए यम रावण की ओर दौड़ा। शत्रुओं को नपुंसक रूप गिनने वाले रावण ने क्षुरप्र बाण से कमल नाल की तरह यमदण्ड के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब यम ने बाण वर्षा कर रावण को आच्छादित कर दिया। रावण ने भी उन बाणों को इस प्रकार नष्ट कर डाला जैसे लोभ समस्त गुणों को नष्ट कर देता है। तदुपरान्त एक साथ बाण-वर्षा कर रावण ने जैसे जरा (बुढ़ापा) मनुष्य को जर्जरित कर देती है उसी प्रकार यम को जर्जर कर डाला। तब यम युद्ध-क्षेत्र से भागकर रथनुपुर गया और वहां विद्याधरराज इन्द्र की शरण ली और उसे नमस्कार कर करबद्ध होकर बोला—'हे प्रभो, अब मैं यमत्व को जलाञ्जलि दे आया हूं। आप तुष्ट हों या रुष्ट, अब मैं यमत्व नहीं करूंगा। कारण, अब तो यम का भी यमरूप रावण उत्पन्न हो गया है। उसने नरक के रक्षकों को मारकर दूर भगा दिया और समस्त नारकियों का मुक्त कर दिया है। क्षात्र व्रत के लिए ही उसने मुझे जीवित छोड़ दिया है। उसने वैश्रवण को पराजित कर लंका व पुष्पक विमान अधिकार में कर लिया है। सुरसुन्दर-से वीर को भी उसने पराजित कर दिया है।' (श्लोक १४९-१६०)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी

यम की यह बात सुनकर विद्याधर राज इन्द्र युद्ध के लिए तुरन्त प्रस्तुत हुए; किन्तु कुल-मन्त्रियों ने समझा-बुझाकर उसे वीर रावण के साथ युद्ध करने से रोक दिया। इन्द्र तब यम को सुरसंगीत नामक नगर का राज्य देकर भोग सुख में पूर्ववत् निमज्जित होकर रथनुपुर में रहने लगे। (श्लोक १६१-१६२)

इधर बलवान् रावण आदित्यरजा को किष्किन्ध्या का और ऋक्षराज को ऋक्षपुर का राज्य देकर स्वयं लंका को लौट गया। लोग जैसे देवों की स्तुति करते हैं वैसे ही नगरजन और आत्मीय-

स्वजन रावण की स्तुति करने लगे। इन्द्र जैसे अमरावती पर राज्य करता है वैसे ही रावण भी लंका का राज्य करने लगा।

(श्लोक १६३-१६५)

कपिराज आदित्यरजा की पत्नी इन्दुमालिनी के गर्भ से एक महा बलवान् पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। उसका नाम बाली रखा गया। उग्र भुजबलधारी बाली समुद्र पर्यन्त जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा देता और समस्त अर्हत् चैत्यों की वन्दना करता। आदित्यरजा के और दो सन्तानें हुईं। एक पुत्र सुग्रीव एवं एक पुत्री सुप्रभा। सुप्रभा सबसे छोटी थी। (श्लोक १६६-१६८)

ऋक्षराज की पत्नी हरिकान्ता के गर्भ से जगत् प्रसिद्ध दो पुत्र हुए नल और नील। (श्लोक १६९)

आदित्यरजा ने अपने बलवान् पुत्र बाली को राज्य देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली और तपस्या कर मोक्ष प्राप्त किया। बाली ने अपने समान सम्यक्दृष्टि-सम्पन्न, न्याय-परायण, दयालु और महापराक्रमी अनुज सुग्रीव को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। (श्लोक १७०-१७१)

एक बार रावण अन्तःपुरिकाओं को लेकर हाथी पर चढ़कर मेरु पर्वत के अर्हत् चैत्यों की वन्दना करने लगा। उसी समय मेघप्रभ नामक खेचर का पुत्र खर लंका में आया। उसने वहां चन्द्रनखा को देखा और उस पर अनुरक्त हो गया। चन्द्रनखा भी उसकी अनुरागिनी हुई। तब खर चन्द्रप्रभा को हरण कर पाताल लंका में चला गया और आदित्यरजा के पुत्र चन्द्रोदय को परास्त कर उसका राज्य छीन लिया। मेरु पर्वत से लौटकर रावण ने जब चन्द्रनखा के अपहरण की बात सुनी तो अत्यन्त क्रोधित हो उठा। हाथी के शिकार के समय केशरी सिंह जैसे भयानक रूप धारण करता है उसी प्रकार विकटमूर्ति रावण खर के विनाश हेतु युद्ध के लिए उद्यत हुआ। तब मन्दोदरी ने रावण से कहा—'हे मानद, अकारण आप युद्धोन्मत्त क्यों हो गए हैं? शान्त चित्त से एक बार सोचिए। कन्या तो किसी न किसी को देनी ही होती है। फिर यदि कन्या ने स्वेच्छा से कुलीन वर चुन लिया है तो इसमें बुरा क्या है? दूषण का अग्रज खर चन्द्रनखा के उपयुक्त वर है। वह आपका पराक्रमी और निर्दोष सेवक होगा। अतः उस पर प्रसन्न हों और

प्रधान पुरुष को भेजकर चन्द्रनखा के साथ उसका विवाह करवा दें। पाताल लंका का राज्य भी उसको दे दें। (श्लोक १७२-१८०)

रावण के अनुज कुम्भकर्ण और विभीषण ने भी रावण को यही परामर्श दिया। तब रावण ने शान्त होकर उनकी बात मान ली एवं मय व मरीचि को भेजकर उसका विवाह करवाया और पाताल लंका का राज्य भी छोड़ दिया। खर रावण की आज्ञा का पालन करते हुए चन्द्रनखा के साथ आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा। (श्लोक १८१-१८२)

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

राजा चन्द्रोदय कालवश मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस समय उसकी पत्नी अनुराधा गर्भिणी थी। वह जंगल में भाग गई। और वहां सिंही जैसे सिंह को जन्म देती है उसी प्रकार एक (पुरुष सिंह) पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया विराध। वह जैसा नीतिवान् था वैसा ही बलवान् भी था। युवावस्था प्राप्त होते न होते उसने समस्त कलाओं के सागर को अतिक्रम कर लिया अर्थात् समस्त कलाओं में पारंगत हो गया। (श्लोक १८३-१८५)

एक दिन रावण राज्यसभा में बैठा था। बातचीत के प्रसङ्ग वश कोई कह उठा—'कपीश्वर बाली बहुत प्रतापी एवं बलवान् पुरुष हैं। सूर्य जैसे अन्य का प्रकाश नहीं सह सकता उसी प्रकार रावण भी अन्य का प्रताप सहन नहीं कर सकता था। अतः उसने बाली के पास दूत भेजा। दूत वहां जाकर बाली को नमस्कार कर बोला— (श्लोक १८६-१८८)

'मैं रावण का दूत हूं। उन्होंने आपको कहलवाया है, 'तुम्हारे पूर्वज श्रीकण्ठ ने शत्रुओं के हाथ से बचने के लिए हमारे पूर्वज कीर्तिधवल की शरण ग्रहण की थी। उन्होंने अपनी पत्नी का भाई समझ कर उनकी रक्षा की थी। तदुपरान्त उनमें स्नेह हो गया और श्रीकण्ठ का विच्छेद असह्य होगा समझ कर अपना वानर द्वीप उन्हें देकर यहां आकर रहने को कहा। तभी से हम लोगों का स्वामी और सेवक का सम्बन्ध है। उसके बाद हमारे तुम्हारे वंश में कितने ही राजा हो गए हैं। वे सभी इस सम्बन्ध का निर्वाह करते आ रहे हैं। श्रीकण्ठ से सातवीं पीढ़ी में तुम्हारे पितामह किष्किन्धी हुए। उस समय मेरे प्रपितामह सुकेश लंका में राज्य कर रहे थे। उनसे भी स्वामी-सेवक का सम्बन्ध था। तदुपरान्त आठवीं पीढ़ी

में तुम्हारे पिता आदित्यरजा राजा हुए। वे यम के कारागार में बन्दी थे। मैंने ही उन्हें वहां से मुक्त कर पुनः किष्किन्ध्या का राज्य दिया था यह सभी जानते हैं। अभी तुम उनके सिंहासन पर बैठे हो। अतः तुम्हारे लिए भी उचित है तुम वंश परम्परागत भाव से हमारी सेवा करो।' आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज (श्लोक १८९-१९५)

दूत के मुँह से यह सुनकर गर्व रूपी अग्नि के लिए शमी वृक्ष तुल्य महामनस्वी बाली ने अविकृत आकृति रखे हुए गम्भीर स्वर कहा— (श्लोक १९६)

'हम दोनों के वंश में अखण्ड प्रीति का सम्बन्ध चला आ रहा है यह मैं जानता हूं। राक्षस और वानर वंश में वह आज तक तो अक्षुण्ण था। हमारे पूर्वज सुख-दुःख में एक दूसरे की रक्षा करते थे। इसके मूल में केवल स्नेह था, स्वामी-सेवक भाव नहीं था। दूत, सर्वज्ञ देव, साधु और सुगुरु इनके अतिरिक्त मैं और किसी को पूजनीय नहीं समझता। मेरे लिए तो केवल वे ही पूज्य हैं। आपके स्वामी के मन में ऐसा भाव क्यों उत्पन्न हुआ? वे स्वयं को स्वामी और हमें सेवक कहकर आज तक चले आ रहे कुल क्रमागत स्नेह सम्बन्ध का खण्डन कर रहे हैं। फिर भी मैं मित्र कुल में उत्पन्न होकर और अपनी शक्ति को जानते हुए भी तुम्हारे स्वामी को क्षति नहीं पहुंचाऊँगा। कारण, मैं लोक निन्दा से डरता हूं। किन्तु, यदि वे मेरी कोई क्षति करने की चेष्टा करेंगे तो उसका प्रतिकार मैं अवश्य करूँगा। दूत, अब तुम जाओ। उनको उनकी शक्ति के अनुसार जो करना है करने को कहो।' (श्लोक १९७-२०३)

दूत ने लौटकर रावण से सारी बात कही। दूत की बात सुनकर रावण की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने तत्काल वृहद् सेना लेकर किष्किन्ध्या पर आक्रमण कर दिया। भुजबल शोभित बाली भी अपनी सेना लेकर रावण के सम्मुख आया। पराक्रमी वीर के लिए युद्ध का अतिथि सर्वदा ही प्रिय रहा है। उभय पक्ष में युद्ध आरम्भ हो गया। पाषाण के प्रतिरोध में पाषाण, वृक्ष के प्रतिरोध में वृक्ष, गदा के प्रतिरोध में गदा प्रयुक्त होने लगी। रथ गिरकर पापड़ की तरह चूर-चूर होने लगे। बड़े-बड़े हाथी मिट्टी के पिण्ड की तरह बिखरने लगे। घोड़े कद्दू की तरह स्थान-स्थान पर कटकर गिरने लगे और पैदल सेना चंचा घास के पुलिन्दों की तरह कटने

लगी। इस प्रकार जीव हत्या होते देखकर बाली का मन दयार्द्र हो उठा। वह रावण के पास जाकर बोला— (श्लोक २०४-२०९)

'विवेकी पुरुषों के लिए सामान्य जीव हत्या करना भी जब अनुचित है, तब हस्ती आदि पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या का तो कहना ही क्या है ? यद्यपि शत्रु को समस्त प्रकार से जय करना उपयुक्त है फिर भी पराक्रमी पुरुष स्व भुजबल से ही शत्रु को जीतने की इच्छा रखते हैं। हे रावण, तुम पराक्रमी भी हो, श्रावक भी हो। अतः सैन्य युद्ध बन्द कर दो। इस प्रकार के युद्ध में अनेक निर्दोष जीवों की हत्या होती है जो चिर नरक वास का कारण है।'

(श्लोक २१०-२१२)

बाली की इस युक्ति को सुनकर धर्म का ज्ञाता सब प्रकार की युद्ध विद्याओं में विशारद रावण अकेला ही बाली के साथ युद्ध करने को तत्पर हो गया। रावण बाली पर जो भी अस्त्र निक्षेप करता बाली उसको अपने शस्त्र से सूर्य किरण जैसे अग्नि को हतप्रभ कर देती है उसी प्रकार निरर्थक कर देता। रावण ने सर्प वरुण आदि मन्त्रास्त्र चलाए, बाली ने गरुड़ादि अस्त्र चलाकर उन्हें नष्ट कर दिया। जब समस्त मन्त्रास्त्र निष्फल हो गए तब क्रुद्ध रावण ने दीर्घकाय भुजङ्ग-सा चन्द्रहास खड्ग निष्कासित कर बाली की हत्या करनी चाही। उस समय रावण को देखकर लग रहा था मानो एक दंत विशिष्ट हाथी या एकशृङ्ग युक्त पर्वत दौड़ा आ रहा है। जैसे कोई हाथी क्रीड़ा ही क्रीड़ा में शाखा सहित वृक्ष को उखाड़ फेंकता है उसी प्रकार बाली ने खड्ग सहित रावण को बाएँ हाथ से उठाकर बगल में दबा लिया और बिना व्यग्र हुए क्षण भर में चारों समुद्र की परिक्रमा देकर लौट आया। लज्जा के मारे रावण का सिर झुक गया। तब रावण को छोड़कर वह बोला—'रावण ! वीतराग सर्वज्ञ, आप्त और त्रैलोक्य पूजित अर्हत के अतिरिक्त मेरे लिए और कोई पूज्य नहीं है। तुम्हारे शरीर से उत्पन्न गर्व रूपी उस शत्रु को धिक्कार है जिसके कारण तुम मुझे सेवक बनाने की इच्छा से इस स्थिति को प्राप्त हुए हो; किन्तु मैं हमारे गुरुजनों के प्रति किए गए उपकार को स्मरण कर तुम्हें छोड़ देता हूं और इस पृथ्वी का राज्य भी तुम्हें देता हूं जिस पर तुम्हारी अखण्ड आज्ञा कार्यकर हो। यदि मैं विजय की इच्छा करूँ तो तुम

इस पृथ्वी को कैसे प्राप्त करोगे ? जहाँ सिंह रहता है वहाँ हाथी कैसे रह सकता है ? किन्तु अब मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं मोक्ष साम्राज्य की कारणभूत दीक्षा ग्रहण करूँगा। किष्किन्ध्या का राज्य मैं सुग्रीव को दूँगा। वह तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हुआ यहाँ राज्य करेगा।' (श्लोक २१३-२२५)

ऐसा कहकर सुग्रीव को राज्य देकर बाली ने गगनचन्द्र मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। विविध प्रकार के अभिग्रहों का पालन कर तपस्या में निरत होकर प्रतिमाधारी मुनि बाली ममता रहित भाव से शुभ ध्यानपूर्वक इस पृथ्वी पर विचरण करने लगे। जिस प्रकार वृक्ष पत्र पुष्प फल आदि सम्पत्ति को प्राप्त करता है उसी प्रकार बाली मुनि ने अनेक लब्धियों को प्राप्त किया। एक बार विहार करते हुए वे अष्टापद पर्वत पर आए और दोनों बाहुएँ फैला कर कायोत्सर्ग ध्यान में निमग्न हो गए। उन्होंने ध्यान की जो प्रतिमा धारण कर रखी थी उसे देखकर लगता था मानो वृक्ष पर झूला डाला हुआ है। इसी प्रकार एक मास पर्यन्त वे ध्यान में रहे। तत्पश्चात् दूसरे दिन पारणा किया और पुनः एक मास का व्रत ले लिया। इसी प्रकार उनका मासक्षमण का व्रत चलता रहा।

(श्लोक २२६-२३०)

उधर सुग्रीव ने अपनी बहिन श्रीप्रभा का रावण के साथ विवाह कर दिया। इस विवाह ने पूर्व स्नेह रूपी सूखते वृक्ष को पुनः सजीव बनाने में जलधारा का काम किया। तदुपरान्त चन्द्र से उज्ज्वल कीर्ति सम्पन्न सुग्रीव ने बालीपुत्र पराक्रमी चन्द्ररश्मि को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। सुग्रीव को अपना आज्ञाकारी बना कर एवं श्रीप्रभा को साथ लेकर रावण लङ्का लौट आया। और भी अनेक विद्याधर कन्याओं के साथ रावण ने बलपूर्वक विवाह कर लिया। (श्लोक २३१-२३४)

एक बार रावण नित्यालोक नगरी के राजा नित्यालोक की कन्या रत्नावली से विवाह करने जा रहा था। राह में अष्टापद पर्वत पड़ा। जिस प्रकार दुर्ग प्राचीर के समीप आने पर शत्रु सैन्य की गति अवरुद्ध हो जाती है, उसी प्रकार अष्टापद पर्वत के ऊपर से जाते समय रावण के पुष्पक विमान की गति अवरुद्ध हो गई। सागर में लङ्गर डालने पर जिस प्रकार जहाज की गति रुद्ध हो

जाती है, आलान-स्तम्भ से बंधे हाथी की गति रुद्ध हो जाती है, उसी भाँति अपने विमान की गति रुद्ध होते देखकर रावण क्रुद्ध हो उठा। (श्लोक २३५-२३८)

'कौन मेरे विमान की गति रुद्ध कर मृत्यु का आह्वान कर रहा है, कहकर वह जैसे ही विमान से उतरा तो पर्वत शिखर पर उसने नवीन उद्‌गत शृङ्ग-से कायोत्सर्ग स्थित बाली को देखा। अपने विमान के नीचे बाली को देखकर रावण बोल उठा—'मुनिवर

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

बाली, क्या अभी भी तुम्हारा क्रोध मेरे ऊपर से नहीं हटा? क्या तुमने जगत को ठगने के लिए यह व्रत धारण कर रखा है? उस समय किसी माया बल से तुमने मुझे उठा लिया था। मैं उसका बदला लूँगा, सोचकर तुमने मुनि दीक्षा ग्रहण ली; किन्तु मैं तो अभी भी वही रावण हूं। और मेरी भुजाएँ भी वही हैं। आज समय आ गया है, तुमने जो कुछ किया था उसका बदला लेने का। तुम मुझे चन्द्रहास खड्ग सहित उठाकर चार समुद्रों तक घूम आए थे, मैं आज तुम्हें इसी अष्टापद पर्वत सहित उठाकर लवण समुद्र में फेंक दूँगा।' (श्लोक २३९-२४३)

ऐसा कहकर आकाश से गिरी बिजली जिस प्रकार धरती को विदीर्ण कर देती है उसी भाँति पृथ्वी को विदीर्ण करता रावण अष्टापद पर्वत के तल में प्रविष्ट हुआ। तदुपरान्त भुजबल उद्धत उसने एक हजार विद्याओं को स्मरण कर उस दुर्धर पर्वत को उठाया। उसी समय तड़-तड़ करते व्यन्तर देव त्रासित होकर जमीन पर गिरने लगे। झल-झल शब्दों से चंचल हुआ समुद्र जल पृथ्वी को आच्छादित करने लगा। खड-खड शब्द के साथ गिरती हुई शिलाओं से हस्तीदल क्षुब्ध हो गया एवं कड़-कड़ करते गिरि नितम्ब के उपवन में वृक्ष समूह टूट-टूट कर गिरने लगे। इन सभी दृश्यों को अनेक लब्धि रूपी नदी को धारण करने वाले समुद्र रूप शुद्धबुद्धि महामुनि बाली ने देखा। वे सोचने लगे, हाय, यह दुर्मति रावण आज तक मेरे प्रति द्वेषपरायण रहा है एवं इसी द्वेष के कारण असमय में ही अनेकों की हत्या करने में प्रवृत्त हुआ है। इतना ही नहीं भरतेश्वर द्वारा निर्मित इस चैत्य को भी नष्ट कर भरतक्षेत्र के अलङ्कार रूप इस तीर्थ को उच्छेद करने का प्रयत्न कर रहा है। यद्यपि मैं इस समय निःसंग हूं, अपने शरीर से भी

ममताहीन हूं, राग और द्वेष रहित हूं, समता जल में निमग्न हूं फिर भी प्राणी और चैत्य की रक्षा के लिए राग और द्वेष न रखकर उसे सामान्य प्रतिबोध देना आवश्यक है। (श्लोक २४४-२५२)

ऐसा विचार कर भगवान् बाली ने पांव के अंगुष्ठ से अष्टापद पर्वत को दबाया। उसी दबाव से मध्याह्न काल में देह की छाया जिस प्रकार संकुचित हो जाती है या जल से बाहर करने में कच्छप का माथा जिस प्रकार संकुचित हो जाता है उसी प्रकार रावण का शरीर संकुचित हो गया। उसके हाथ टूटने लगे, मुंह से खून निकलने लगा, पृथ्वी को रुलाकर रावण उच्च स्वर में रोने लगा। उसी दिन से इसीलिए उसका एक और नाम हुआ रावण। उसका हृदय को द्रवित कर देने वाला क्रन्दन सुनकर दयालु बाली ने उसे छोड़ दिया। कारण, यह कार्य उन्होंने केवल रावण को शिक्षा देने के लिए ही किया था क्रोध के वशीभूत होकर नहीं।

(श्लोक २५३-२५६)

मार्गदर्शक

प्रतापहीन रावण पर्वत तल से निकल कर पश्चाताप करता हुआ बाली के पास गया और करबद्ध होकर बोला — (श्लोक २५७)

'निर्लज्ज मैं बार-बार अपराध कर आपको सता रहा हूं; किन्तु महामना और दयालु आप शक्तिशाली होते हुए भी सब कुछ सहन करते रहे हैं। आपने कृपा के वशीभूत होकर मेरे लिए पृथ्वी का परित्याग किया, इसलिए नहीं कि आप दुर्बल थे; किन्तु मैं तब भी नहीं समझा। अज्ञानवश हाथी जिस प्रकार पर्वत को उखाड़ना चाहता है मैं भी उसी प्रकार आपको उखाड़ना चाहता था। अब मैंने मेरी और आपकी शक्ति का परिमाप कर लिया है। कहां पर्वत कहां बल्मिक, कहां गरुड़, कहां गिद्ध ? मैं तो मरने ही वाला था आपने ही मुझे जीवनदान दिया है। मुझ अपराधी पर भी आपने जो उपकार किए हैं उसके लिए आपको बार-बार नमस्कार।'

(श्लोक २५८-२६२)

इस प्रकार दृढ़ भक्ति के साथ बाली मुनि से प्रार्थना कर, क्षमा मांग तीन प्रदक्षिणा दे रावण ने नमस्कार किया। बाली मुनि की इस उदारता पर देवों ने आकाश से 'साधु-साधु' कहकर उन पर पुष्प वृष्टि की। (श्लोक २६३-२६४)

दूसरी बार फिर बाली मुनि को नमस्कार कर रावण पर्वतों

के मुकुट रूप महाराज भरत द्वारा निर्मित चैत्य के पास गया। खड्ग और अस्त्र-शस्त्रादि चैत्य के बाहर रखकर रावण ने चैत्य में प्रवेश किया और ऋषभादि तीर्थंकरों की अष्टप्रकारी पूजा की। तदुपरान्त महा साहसी रावण भक्ति वश अपनी शिरा और उप-शिराओं को बाहर निकालकर बाहु रूपी वीणा पर उन्हें तन्त्री कर बजाने लगा। रावण जब ग्राम राग में रम्य वीणा बजा रहा था तब उसकी पत्नियां सप्तम स्वर से मनोहर गीत गाने लगीं। उसी समय पन्नगपति धरणेन्द्र चैत्य वन्दना के लिए वहां आए। उन्होंने प्रभु की पूजा कर वन्दना की। तदुपरान्त रावण को ध्रुपदादि पद में मनोहर वीणा के साथ अर्हत् का गुणगान करते देखकर वे रावण से बोले—'रावण, तुम अर्हतों का अतीव सुन्दर गुणगान कर रहे हो। यह तुम अपनी आन्तरिक भक्ति वश कर रहे हो। इससे मैं सन्तुष्ट हुआ हूं। यद्यपि अर्हत् भक्ति का मुख्य फल है भक्ति फिर भी तुम्हारी सांसारिक वासना अभी जीर्ण नहीं हुई है। अतः अपनी इच्छानुसार कुछ मांगो—जो मांगोगे मैं दूंगा।' (श्लोक २६५-२७२)

रावण बोला—'हे नागेन्द्र, देवाधिदेव अर्हत् के गुणानुवाद गुण से जो आप प्रसन्न हुए हैं यह आपके हृदय में रही अर्हत् भक्ति का चिह्न है; किन्तु मुझे तो किसी भी वरदान की आवश्यकता नहीं है। कारण, वरदान से जिस प्रकार आपकी स्वामी-भक्ति उत्कृष्ट होती है उसी भांति वर मांगने से मेरी स्वामीभक्ति हीन होगी।'

(श्लोक २७३-२७४)

तब धरणेन्द्र बोले—'हे रावण, तुम्हारी इस निःस्पृहता ने तो मुझे और प्रसन्न कर दिया है।' ऐसा कहकर वे रावण को अमोघ विजया शक्ति और रूपविकारी अर्थात् रूप परिवर्तन की विद्या देकर स्वस्थान को लौट गए। (श्लोक २७५-२७६)

रावण भी अष्टापद पर्वत पर स्थित समस्त जिन बिम्बों की वन्दना कर नित्यालोक नगर को गया और वहां रत्नावली से विवाह कर पुनः लंका लौट गया। (श्लोक २७७)

उसी समय मुनि बाली को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सुरासुर सभी ने आकर उनका केवलज्ञान महोत्सव मनाया। अनुक्रम से बाली ने भवोपग्राही कर्मों को क्षय कर अनन्त चतुष्टय प्राप्त कर मोक्ष गमन किया। (श्लोक २७८-२७९)

वैताढ्य पर्वत के ज्योतिषपुर नामक नगर में ज्वलनशिख नामक एक विद्याधर राजा राज्य करते थे। उनके रूप सम्पत्ति में लक्ष्मी तुल्य श्रीमती नामक रानी थी। उसके गर्भ से विशाल लोचना तारा नामक एक कन्या हुई। चक्रांक नामक एक विद्याधर राजा के पुत्र साहसगति ने एक बार तारा को देखा तो काम के वशीभूत हो गया। उसने तारा के पाणिग्रहण के लिए ज्वलनशिख के पास दूत भेजा। उधर किष्किन्ध्या के राजा सुग्रीव ने भी तारा की प्रार्थना कर ज्वलनशिख को दूत भेजा। कारण, रत्न प्राप्त करने की इच्छा सभी करते हैं। साहसगति और सुग्रीव दोनों ही उच्च कुल जात के थे, रूपवान और पराक्रमी भी थे। अत: किसे कन्या दूँ स्थिर न कर सकने के कारण ज्वलनशिख ने एक नैमित्तिक से पूछा। उसने कहा, 'साहसगति स्वल्पायु है और सुग्रीव दीर्घायु है।' ज्वलनशिख ने सुग्रीव के साथ तारा का विवाह कर दिया। साहसगति तारा को भूल न सकने के कारण अग्नि की भांति विरह ज्वाला में दग्ध रहने लगा। (श्लोक २८०-२८६)

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तारा के साथ सुख भोगते हुए सुग्रीव के अंगद और जयानन्द नामक दिग्गज से दो पराक्रमी पुत्र हुए। उधर तारा का अनुरागी मन्मथ-पीड़ित साहसगति सोचने लगा मैं कब इस मृगनयनी सुन्दरी के पके हुए बिम्बफल से अधरों को चूमूंगा? कब मैं उसके स्तन-कुम्भ का अपने हाथों से स्पर्श करूँगा? कब मैं उसे आलिंगन में लेकर उन स्तनों का मर्दन करूँगा? छल से या बल से जैसे भी हो मैं उसका हरण करूँगा। ऐसा सोचकर शेमुषी नामक रूप परिवर्तन की विद्या अर्जित करने के लिए चक्रांकपुत्र साहसगति हिमवत् पर्वत पर गया और एक गुहा में विद्या साधना में प्रवृत्त हो गया।

(श्लोक २८७-२९२)

उधर पूर्व दिशा से जैसे सूर्य निकलता है उसी प्रकार लङ्का से दिग्विजय के लिए रावण निकला। अन्यान्य द्वीपवासी विद्याधर और राजाओं को वश में कर रावण पाताल लङ्का में गया। वहाँ चन्द्रनखा के पति खर ने विनीत और मधुर वाक्य से उपहार द्वारा सेवक की भाँति रावण की विशेष पूजा की। (श्लोक २९३-२९५)

वहाँ से रावण विद्याधर इन्द्र को जीतने चला। खर ने भी अपनी चौदह हजार सेना को लिए उसका अनुसरण किया। सुग्रीव

ने भी स्व-सेना के साथ वायु के पीछे जैसे अग्नि जाती है उसी प्रकार राक्षसपति रावण का अनुगमन किया। (श्लोक २१६-२१७)

असंख्य सैन्य से आकाश और धरती को आच्छादित कर उद्वेलित समुद्र की तरह रावण अस्खलित गति से अग्रसर होने लगा। आगे जाने पर विंध्य पर्वत से अवतरित चतुरा भामिनी-सी रेवा नदी को देखा। उस कल-कल नादिनी के तट पर हंस पंक्तियाँ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो ये उस तन्वंगी की कटिमेखला हो, विशाल तट भूमि उसके नितम्ब हों। उसकी उत्ताल उर्मि-मालाओं को देखकर लगता जैसे उसकी केशराशि हवा में आन्दोलित हो रही हो। उसमें रह-रह कर मछलियाँ उछल-उछल कर ऊपर आ रही थी जिसे देख कर लग रहा था कि वह कामिनी कटाक्ष कर रही है। ऐसी शोभा धारिणी रेवा नदी के तट पर रावण ने स्नान कर दो उज्ज्वल वस्त्र पहने और मन को स्थिर कर आसन पर बैठ गया। सम्मुख रखी मणिमय चौकी पर अर्हत् बिम्ब स्थापित कर उसने रेवा-जल से उसको स्नान कराया और रेवा में ही विकसित कमल से पूजा कर ध्यान में लीन हो गया। उसी समय अकस्मात् समुद्र में ज्वार आने की तरह रेवा नदी में बाढ़ आ गया। एक मुट्ठी घास की तरह बड़े-बड़े वृक्ष समूह को उखाड़ कर रेवा का जल तटों को प्लावित करने लगा। ऊर्द्धोत्क्षिप्त तरंगे तट पर बंधी नौकाओं को इस प्रकार पछाड़ने लगीं जिस प्रकार मुक्ता के लिए सीपों को पछाड़ा जाता है। पेटू के पेट को जैसे आहार भर देता है उसी प्रकार तट पर बने गहन गह्वरों को रेवा के जल ने भर दिया। पूर्णिमा की ज्योत्स्ना जिस प्रकार ज्योतिष्कों के विमान को आवृत कर देती है उसी भांति रेवा के जल ने अपने मध्य स्थित उन्नत भूमि को आवृत कर दिया। चक्रवात वायु चक्रवेग से जिस प्रकार वृक्ष के पत्रों को आकाश में उछालती है उसी प्रकार तरंगों के उच्छास छोटी-छोटी मछलियों को आकाश में उछालने लगे। वही फेन और कर्दममय जल महावेग से आकर रावण की समस्त पूजा द्रव्य को बहाकर ले गया। शिरश्च्छेद से अधिक दुःखदायी पूजा द्रव्य के प्रवाहित हो जाने से रावण क्रोधान्वित होकर बोल उठा—'अकारण ही मेरा कौन शत्रु बना है जो मेरी अर्हत् पूजा में विघ्न डालने के लिए ही इस दुर्निवार जलराशि को फैला दिया है। क्या

वह सुरासुर या विद्याधर या कोई प्रमुख मिथ्या दृष्टि वाला है ?'

(श्लोक २९८-३१४)

तब एक विद्याधर रावण के निकट आया और बोला—'देव, यहाँ से कुछ दूरी पर माहिष्मती नामक एक नगरी है। वहाँ सूर्य-से तेजस्वी एक हजार राजाओं द्वारा सेवित सहस्रांशु नामक एक महा-पराक्रमी राजा राज्य करते हैं। उन्होंने जल-क्रीड़ा का आनन्द लेने के लिए रेवा के जल को हाथ से रोक लिया था। शक्तिशाली के लिए असाध्य क्या है ? हस्ती जैसे हस्तिनी यूथ लेकर जल-क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार वे अपनी एक हजार रानियों के साथ जल-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रीड़ा कर रहे थे। उनके एक लाख अङ्ग-रक्षक अस्त्र और कवच धारण कर नदी के दोनों तटों की रक्षा कर रहे हैं। अपरिमित पराक्रमी उन राजा का शौर्य ऐसा अपूर्व और अदृष्टपूर्व है कि उन्हें किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं होती। वे सैनिक तो केवल शोभावृद्धि के लिए या दर्शक रूप में अवस्थित हैं।'

(श्लोक ३१५-३२०)

'जल-क्रीड़ा के समय जब वे पराक्रमी राजा बाहु सञ्चालन कर रहे थे, उसके आघात से जल देवता क्रुद्ध हो उठे थे और जल-जन्तु गण भय से भाग छूटे थे। हजार रानियों के साथ जलक्रीड़ा करते उन्होंने अब जल को छोड़ दिया है। इसी लिए उस अवरुद्ध जल ने धरती और आकाश को प्लावित कर बाढ़ की तरह आकर आपके पूजा-द्रव्य को प्लावित कर दिया है। वह देखिए, राजा की पत्नियों के माल्यादि रेवा के जल में प्रवाहित हो रहे हैं। यह मेरे कथन की सत्यता का प्रथम निदर्शन है। रानियों के अङ्गराग मिल जाने से जल कर्दम युक्त हो गया है। हे वीराग्रगण्य, देखिए, देखिए।'

(श्लोक ३२१-३२५)

अग्नि में घृतादि पड़ने से अग्नि जैसे दुगुनी प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार विद्याधर का कथन सुनकर रावण की क्रोधाग्नि दुगुनी प्रज्वलित हो गई। वह बोल उठा—'सैनिकगण ! मरणाकांक्षी उस राजा ने काजल से जैसे देवदूष्य वस्त्र दूषित हो जाता है उसी प्रकार स्व अङ्गों से रेवा जल को दूषित कर मेरी देवपूजा को दूषित कर दिया। अतः तुम लोग जाओ और धीवर जैसे मछली पकड़ लाता है उसी प्रकार उस वीर और दम्भी राजा को पकड़कर मेरे

सम्मुख उपस्थित करो।' (श्लोक ३२६-३२८)

रावण की यह आज्ञा सुनते ही राक्षस वीर नदी तट के किनारे-किनारे दौड़ने लगे। लगा जैसे रेवा का प्रवाह विपरीत प्रवाहित हो रहा है। वहां पहुंचते ही नवागत हाथी के साथ जैसे हाथी युद्ध करते हैं वैसे ही सहस्रांशु के सैनिक राक्षस सेना के साथ युद्ध करने लगे। मेघ जैसे शिखा बरसा कर शरभ को कष्ट देता है उसी प्रकार राक्षस वीर आकाश में स्थित होकर विद्या द्वारा उन्हें विमोहित कर कष्ट देने लगे। अपने सैनिकों को पीड़ित होते देख क्रुद्ध सहस्रांशु के ओष्ठ कांपने लगे। उसने हाथों के इशारे से अपनी अन्त:पुरिकाओं को आश्वस्त किया। आकाशगङ्गा से जैसे ऐरावत निकलता है उसी प्रकार रेवा नदी से निकल कर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर बाण-वर्षा करने लगा। उस महाबाहु की बाण वर्षा से राक्षसगण तीव्र हवा से जैसे घास-फूस उड़ जाता है उसी प्रकार इधर-उधर पछाड़ खा-खाकर गिरने लगे। युद्ध से स्व-सैन्य को पदान्मुख होते देखकर रावण क्रुद्ध होकर बाण वर्षा करता हुआ सहस्रांशु के सम्मुख आया। दोनों ही क्रुद्ध थे, दोनों ही शक्तिशाली थे, दोनों ही उग्र बने बहुत देर तक युद्ध करते रहे। अन्तत: भुजबल से सहस्रांशु को पराजित करना असम्भव देख रावण ने विद्या द्वारा उसे विमोहित कर हाथी की भांति पकड़ लिया। उस महावीर को पराजित कर देने पर भी स्वयं ही जैसे पराजित हुआ हो इस प्रकार रावण उसकी प्रशंसा करते हुए उसे अपने स्कन्धावार में ले गया।

(श्लोक ३२९-३३८)

रावण हर्षित होकर जैसे ही सभा में बैठा वैसे ही शतबाहु नामक एक चारण मुनि वहां उपस्थित हुए। मेघ के उदित होने से मयूर जैसे उसका स्वागत करता है उसी प्रकार रावण ने तत्क्षण सिंहासन से नीचे उतर कर मणिमय पादुका परित्याग कर उनका स्वागत किया और वे अरिहन्त के गणधर हों इस प्रकार उनके चरणों में गिरकर पंचांगों से भूमिस्पर्शपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। तदुपरान्त मुनि को आसन देकर उसी आसन पर बैठाया और पुन: उन्हें प्रणाम कर स्वयं जमीन पर बैठ गया। मूर्तिमान विश्वास की तरह और जगत् को आश्वासित करने के लिए जो बन्धु तुल्य हैं ऐसे उन मुनि ने रावण को समस्त कल्याण की जननी रूप धर्म लाभ

रूपी आशीर्वाद दिया तब रावण ने करबद्ध होकर उनसे वहां आने का कारण पूछा। प्रत्युत्तर में मुनि बोले— (श्लोक ३३९-३४४)

'मैं माहिष्मती का राजा था। मेरा नाम शतबाहु था। सिंह जैसे अग्नि से डर जाता है उसी प्रकार संसार भय से भीत होकर पुत्र सहस्रांशु को राज्य देकर मोक्षमार्ग पर जाने के लिए रथतुल्य यह चारित्र ग्रहण किया।' (श्लोक ३४५-३४६)

मुनि के इतना कहते ही रावण ने माथा नीचे कर सहस्रांशु की ओर देखते हुए पूछा—'क्या ये महाबाहु ही आपके पुत्र हैं?' (श्लोक ३४७)

मुनि बोले, 'हां।'

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तब रावण कहने लगा—'मैं दिग्विजय के लिए निकलकर रेवा तट पर आया और वहां छावनी डाली। जब मैं खिला हुआ कमल लेकर प्रभु की पूजा कर एकाग्र चित्त से ध्यान करने लगा तभी आपके पुत्र ने स्व-शरीर का दूषित जल छोड़कर मेरी पूजा भंग कर दी। इसीलिए क्रुद्ध होकर मैं उन्हें पकड़कर लाया हूं; किन्तु अब मैं समझ गया कि यह कार्य उन्होंने अनजान में किया है। कारण, आपके पुत्र जानबूझ कर (जिससे अर्हत् का असम्मान हो) ऐसा कार्य नहीं कर सकते।' (श्लोक ३४८-३५१)

ऐसा कहकर रावण ने मुनि को प्रणाम किया और सहस्रांशु को समीप बुलवाया। उसने लज्जा से माथा नीचे कर मुनि-पिता को प्रणाम किया। तब रावण उससे बोला—'हे महाबाहु, आज से आप मेरे भाई हैं। मुनि शतबाहु जिस प्रकार आपके पिता हैं उसी प्रकार मेरे भी पिता हैं। अतः आइए, स्व राज्य का पालन करिए। मैं आपको और भी भूमि दे रहा हूं। हम लोग तीन भाई थे। आज से हम चार भाई होकर समान रूप से राजलक्ष्मी का भोग करेंगे।' ऐसा कहकर रावण ने उन्हें मुक्त कर दिया। (श्लोक ३५२-३५४)

मुक्त होकर सहस्रांशु बोला—'इस देह और राज्य पर मेरी जरा भी अभिरुचि नहीं है। मेरे पिता ने संसार नाशकारी जो व्रत ग्रहण किया है उसी व्रत को मैं भी ग्रहण करूंगा। साधुओं के लिए यही मार्ग निर्वाण प्रदानकारी है।' (श्लोक ३५५-३५६)

ऐसा कहकर अपने पुत्र को रावण के हाथों सौंपकर चरम शरीरी सहस्रांशु ने पिता से दीक्षा ग्रहण कर ली और यह समाचार

अपने मित्र अयोध्या के राजा अनरण्य को भी भेज दी। अनरण्य को तब स्मरण हो आया कि हमने यह प्रतिज्ञा की थी कि हम साथ दीक्षा लेंगे। अतः वह भी अपने पुत्र दशरथ को सिंहासन पर बैठाकर दीक्षित हो गया। (श्लोक २५७-२६०)

रावण ने शतबाहु और सहस्रांशु मुनि को वन्दन कर सहस्रांशु के पुत्र को माहिष्मती के सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं दिग्विजय के लिए आकाशपथ से रवाना हो गया। उसी समय लगुड़ प्रहार से जर्जरित नारद 'यह अन्याय है, यह अन्याय है' कहते हुए उसके निकट आकर बोले— (श्लोक २६१-२६२)

'राजन्, राजपुर नगर में मरुत् नामक एक राजा है। वह दुष्ट ब्राह्मणों के सम्पर्क में आकर मिथ्यादृष्टि बना यज्ञ करता रहा है। उस यज्ञ में होम करने के लिए ब्राह्मणगण व्याध की तरह निरीह पशुओं को बांधकर ला रहे हैं। उनकी करुणा भरी चीत्कार से दयार्द्र होकर मैं आकाश से नीचे उतरा और ब्राह्मणों से घिरे मरुत् राजा के पास गया एवं उनसे कहा—'यह आप क्या कर रहे हैं?' राजा ने उत्तर दिया—'मैं ब्राह्मणों के आदेशानुसार यज्ञ कर रहा हूं। देवों की तृप्ति के लिए अन्तर्वेदी पर पशु होम करना स्वर्ग और धर्म का कारण है। इसलिए आज मैं इन पशुओं को होम कर यज्ञ पूर्ण करूंगा।' तब मैं उनसे बोला, यह शरीर ही वेदी है, आत्मा यजमान है, तप अग्नि है, ज्ञान घृत है, कर्म समिध, क्रोधादि कषाय पशु, सत्य यज्ञ स्तम्भ, समस्त प्राणियों की रक्षा दक्षिणा है एवं ज्ञान दर्शन चारित्र ये तीन रत्न तीन देव हैं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर)—यही वेद कथित यज्ञ यदि योग विशेष से किया जाए तो वह मुक्ति का साधन है। जो राक्षस की तरह बकरा आदि जीवों की हिंसा करते हैं वे मृत्यु के पश्चात् घोर नरक में जाते हैं और चिरकाल तक दुःख भोगते हैं। हे राजन्, आपने उत्तम कुल में जन्म ग्रहण किया है। बुद्धिमान और ऋद्धिशाली हैं। इसलिए तुरन्त इस पाप कर्म से विरत होइए। प्राणी वध से ही यदि स्वर्ग मिल सकता तब तो अल्प दिनों में ही संसार शून्य हो जाएगा।'

(श्लोक २६३-२७३)

'मेरी बात सुनकर समस्त ब्राह्मण क्रोधाग्नि से उद्दीप्त हो उठे और काष्ठ उठाकर मुझे मारने लगे। मैं भी वहां से भागकर

नदी के प्रवाह में पड़ा मनुष्य द्वीप को प्राप्त कर जैसे शान्त हो जाता है उसी प्रकार आपके पास आकर शान्त हो गया हूं। हे राजन्, आपका सान्निध्य पाकर मैं तो रक्षित हो गया हूं; किन्तु उन निरीह पशुओं की यज्ञ कामी उन नर-पशुओं के हाथों से रक्षा कीजिए।' (श्लोक ३७४-३७६)

नारद द्वारा यह सुनकर स्वनेत्रों से सब कुछ देखने के लिए रावण विमान से उतरा और यज्ञ-मण्डप की ओर अग्रसर हुआ। मरुत राजा ने रावण को पैर धोकर सिंहासन पर बैठाया और उसकी पूजा की। तब रावण क्रुद्ध स्वर में बोला, 'तुम नरक के अभिमुखी होकर ऐसा यज्ञ क्यों कर रहे हो? त्रिलोक के हितकारी सर्वज्ञ पुरुषों ने अहिंसा को धर्म कहा है तब पशु हिंसात्मक यज्ञ में धर्म कैसे हो सकता है? यज्ञ से तो लोक और परलोक दोनों ही विनष्ट होते हैं। उभयलोकविनष्टकारो ऐसा यज्ञ मत करो। यदि करोगे तो इहलोक में मेरे कारागार में निवास करना पड़ेगा और परलोक में नरक में जाना पड़ेगा।' मरुत् राजा ने तत्क्षण यज्ञ बन्द कर दिया कारण समस्त जगत् जिससे भयभीत हो उसकी आज्ञा का उल्लंघन भला कौन कर सकता है? तब रावण ने नारद से पूछा, 'इस पशु वधात्मक यज्ञ का आरम्भ किस प्रकार हुआ?' इस पर नारद ने जवाब दिया— (श्लोक ३७७-३८२)

'चेदि देश में शुक्तिमती नामक एक प्रसिद्ध नगरी है। प्रिय सखी की भांति शुक्तिमती नदी ने उसे वेष्टित कर रखा है। उस नगरी में बहुत से उत्तम आचरणशील राजा हुए हैं। वहां मुनिसुव्रत स्वामी के तीर्थ में अभिचन्द्र नामक सर्व विषयों में श्रेष्ठ एक राजा था। उसके वसु नामक एक पुत्र हुआ। वह बहुत बुद्धिमान एवं सत्यवक्ता था। बाल्यकाल में मैं, वसु और गुरुपुत्र पर्वत एक साथ क्षीरकदम्ब नामक गुरु से अध्ययन करते थे। एक रात्रि विद्याभ्यास के पश्चात् जब हम तीनों क्लान्त होकर घर की छत पर सोए हुए थे तब दो चारण मुनियों को आकाश पथ से इस प्रकार कहते हुए जाते देखा कि 'इन तीनों में एक स्वर्ग जाएगा और दो नरक जाएँगे।' यह सुनकर गुरुजी दुःखी हुए और मन ही मन सोचने लगे मेरे जैसे गुरु के रहते हुए भी मेरे दोनों शिष्य नरक जाएँगे? गुरुजी के मन में यह भी जानने की इच्छा हुई कि इनमें कौन स्वर्ग

जाएगा और कौन नरक। अतः दूसरे दिन उन्होंने हम लोगों को बुलवाया और प्रत्येक को एक-एक आटे का मुर्गा देकर कहा—जहाँ कोई न देखे वहाँ ले जाकर इन्हें मार डालना। वसु और पर्वत ने आत्मगति के अनुरूप निर्जन में जाकर दिए हुए मुर्गों की हत्या कर दी। मैं नगर के बाहर जनमानवहीन स्थान पर जाकर दिशा-विदिशाओं को देखकर सोचने लगा गुरु ने हमें आदेश दिया था कि जहाँ कोई न देखे वहाँ जाकर मुर्गे को मारना; किन्तु यहाँ तो मुर्गा स्वयं देख रहा है, मैं देख रहा हूं। खेचर देख रहे हैं और ज्ञानी भी देख रहे हैं। ऐसी जगह तो कहीं नहीं है जहाँ कोई नहीं देखे। इससे गुरु आज्ञा का यह तात्पर्य हुआ कि मुर्गे को मारना मत। हमारे पूजनीय गुरु तो दयालु एवं सर्वदा हिंसा का परिहार करने वाले हैं। उन्होंने लगता है हमारी बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए ही ऐसा आदेश दिया है। ऐसा सोचकर मैं गुरु के पास लौट आया और मुर्गे को नहीं मारने का कारण भी उन्हें बता दिया। इससे गुरुजी समझ गए कि मैं स्वर्ग जाऊंगा। अतः हर्षित होकर मारे प्रसन्नता के उन्होंने मुझे बाहों में जकड़ लिया और 'वाह-वाह' करने लगे। (श्लोक ३८३-३९९)

'थोड़ी देर बाद ही वसु और पर्वत आए। वे बोले—जहाँ किसी ने भी नहीं देखा ऐसे स्थान पर जाकर उन्होंने मुर्गों को मार डाला है। यह सुनकर दुःखी हुए गुरुजी उन्हें धिक्कारते हुए बोले, 'पापी, तुम लोग स्वयं तो देख रहे थे, ऊपर खेचर देख रहे थे, तब तुम लोगों ने कैसे मुर्गों की हत्या कर दी?' उनके कृत्य से गुरुजी को इतना दुःख हुआ कि उन्होंने हमें आगे पढ़ाना बन्द कर दिया। वे सोचने लगे वसु और पर्वत को पढ़ाने का प्रयत्न तो व्यर्थ हो गया। आधार भेद से जल जैसे मुक्ता या लवण हो जाता है उसी प्रकार गुरु उपदेश भी पात्र के अनुसार ही परिणमित होता है। पर्वत मेरा प्रिय पुत्र है, और वसु मुझे पुत्र से भी ज्यादा प्रिय है। ये दोनों ही जब नरक जाएँगे तब गृहस्थावास से क्या लाभ?

(श्लोक ४००-४०४)

'इस प्रकार वैराग्य प्राप्त कर गुरुजी ने दीक्षा ग्रहण कर ली और उनका स्थान पर्वत ने ग्रहण किया। व्याख्या करना और पढ़ाने में तो वह निपुण ही था। गुरुजी की कृपा से मैं भी शास्त्रों

में निपुण होकर घर लौट आया। (श्लोक ४०५-४०६)

'राजाओं में चन्द्रतुल्य अभिचन्द्र ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। वैभव में वासुदेव तुल्य वसु सिंहासन पर बैठा। उसने पृथ्वी पर सत्यवक्ता के रूप में ख्याति प्राप्त की और इस ख्याति को अक्षुण्ण रखने के लिए वह सदैव सच बोलता था। (श्लोक ४०७-४०८)

'एक बार विन्ध्यगिरि की स्थली पर एक शिकारी शिकार करने गया। दूर से हिरण देखकर उसे मारने के लिए उसने तीर निक्षेप किया; किन्तु वह तीर मृग को स्पर्श कर गिर पड़ा। उसका तीर क्यों गिर गया यह जानने के लिए वह उस स्थान पर गया। देखा वहाँ कोई मृग नहीं था। हस्त-स्पर्श से समझा वहाँ आकाश सी निर्मल एक स्फटिक शिला है। तब वह सोचने लगा पृथ्वी की छाया जिस प्रकार चाँद पर पड़ती है उसी प्रकार अन्यत्र चल रहे मृग की छाया उस स्फटिक शिला पर पड़ रही थी और उसे देखकर ही उसने तीर छोड़ा था। इस शिला को बिना छूए इसका अस्तित्व समझा ही नहीं जा सकता। ऐसी अद्भुत शिला तो वसु राजा के ही योग्य है। (श्लोक ४०९-४१२)

उस शिकारी ने सारी बात राजा वसु को एकान्त में जाकर कही। वसु राजा ने प्रसन्न होकर उसे खूब धन दिया और वह शिला रख ली। तदुपरान्त गुप्त रूप से उसी शिला द्वारा उन्होंने एक वेदी बनवाई। यह बात गुप्त ही रहे इसलिए उस वेदी निर्माता की हत्या करवा दी क्योंकि राजा किसी का अपना नहीं होता। बाद में उसी वेदी पर अपना सिंहासन स्थापित करवाया। वेदी किसी को दिखाई नहीं पड़ती थी अतः सभी समझते सत्यवक्ता होने के कारण राजा का सिंहासन शून्य में रहता है। और सत्य बोलने के कारण ही देव तृप्त होकर उनके निकट रहते हैं और उसकी सेवा करते हैं। इस प्रकार चारों ओर उसकी प्रशंसा होने लगी। इसी प्रशंसा से भयभीत बने कई राजा उसके वशीभूत हो गए क्योंकि सत्य हो या झूठ प्रसिद्धि ही मनुष्य को जययुक्त करती है। (श्लोक ४१३-४१७)

एक बार घूमता हुआ मैं उसी नगरी में गया। वहां मैंने पर्वत को बुद्धिमन्त शिष्यों को ऋग्वेद पढ़ाते देखा। उस समय 'अजैर्यष्टव्यं' यह पाठ पढ़ाया जा रहा था। उसका अर्थ उसने बताया 'बकरे द्वारा यज्ञ करो' यह सुनकर मैं उससे बोला—'भाई, तुम प्रमादवश ऐसा

गलत अर्थ क्यों कर रहे हो ? गुरुदेव ने हमें अज शब्द का अर्थ बताया था तीन बरस पुराना धान जो बोने पर–अंकुरित नहीं होता। गुरुदेव ने जो अर्थ बताया था तुम उसे क्यों भूल गए।' (श्लोक ४१८-४२०)

पर्वत बोला—'मेरे पिताजी ने अज शब्द का यह अर्थ कभी नहीं बताया। उन्होंने तो अज शब्द का अर्थ बकरा ही बताया था और निघण्टु कोष में भी अज का अर्थ बकरा ही है।' (श्लोक ४२१)

मैंने कहा—'शब्द अर्थ के मुख्य और गौण दो प्रकार के होते हैं। यहां गुरुदेव ने गौण अर्थ ही बतलाया था। गुरुदेव सदैव धर्म का ही उपदेश देते थे और जो वाक्य धर्मात्मक होते हैं उन्हें ही वेद कहा जाता है। इसलिए हे बन्धु, तुम दोनों को अन्यथा कर क्यों पाप उपार्जन कर रहे हो?' (श्लोक ४२२-४२३)

तब पर्वत आक्षेप करता हुआ बोला—'अरे ओ नारद, गुरुदेव ने अज का अर्थ बकरा ही बताया था। गुरुदेव के उपदेश और शब्द के अर्थ का उल्लंघन कर तुम कौन-सा धर्म उपार्जन कर रहे हो? लोग दण्ड के भय से मिथ्या अभिमानयुक्त वाक्य नहीं बोलते; किन्तु तुम बोल रहे हो। इसलिए हमारे अपने-अपने पक्ष के समर्थन में यह शर्त रखना उचित है कि जो मिथ्यावादी प्रमाणित होगा उसकी जिह्वा काटकर फेंक दी जाएगी। इस निर्णय के लिए हमारे साथ पढ़ने वाले वसु को नियुक्त करना ही उचित होगा।' मैंने उसकी बात मान ली। कारण, जो सत्यवादी होते हैं उनके हृदय में कभी क्षोभ नहीं होता। (श्लोक ४२४-४२६)

पर्वत की मां ने गृहकार्य में व्यस्त होते हुए भी हमारी इस शर्त की बात सुन ली थी। उसने अपने पुत्र को एकान्त में बुलाकर कहा—'पुत्र, तुम्हारे पिता ने 'अज' शब्द का अर्थ तीन वर्ष का पुराना धान ही कहा था। इसलिए गर्वित होकर तुमने जो जिह्वा-छेद की शर्त रखी वह ठीक नहीं है। जो बिना विचारे बोलते हैं उन्हें कष्ट ही उठाना पड़ता है।' (श्लोक ४२७-४२८)

पर्वत बोला – 'मां, अब मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूं। अतः अब यह नहीं सकता।' (श्लोक ४२९)

पुत्र की भावी आशंका से पर्वत की मां वसु राजा के निकट गई। कारण, पुत्र के लिए मनुष्य क्या नहीं करता? (श्लोक ४३०)

'पर्वत की माँ को देखकर वसु राजा बोला, आज आपको देखकर लग रहा है जैसे मैं गुरुदेव क्षीरकदम्ब को ही देख रहा हूं। कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूं? या आपको क्या दूं?'

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज (श्लोक ४३१)

'वह बोली, 'राजन्, मैं तुमसे पुत्र की भिक्षा माँगने आई हूं। बिना पुत्र के धनधान्य किस काम का?' (श्लोक ४३२)

'वसु बोला, 'माँ, आपका पुत्र मेरे लिए पालनीय और पूजनीय है। कहा भी गया है कि गुरु-पुत्र के साथ गुरु जैसा ही व्यवहार करो। माँ, इस असमय में रोषकारी काल आज किसके लिए खाता खोले बैठा है? मेरे भाई पर्वत को कौन मारना चाहता है? और आप इतनी व्याकुल क्यों हो रही हैं?'

(श्लोक ४३३-४३४)

'पर्वत की माँ ने नारद और पर्वत के मध्य हुए वार्तालाप, पर्वत की प्रतिज्ञा सब कुछ स्पष्टतया बता दिया। बोली, 'वत्स, अतः तुम 'अज' शब्द का अर्थ 'बकरा' ही करना। क्योंकि महान् व्यक्ति जब अपने प्राण देकर भी दूसरों की रक्षा करते हैं तो तुम वाक्य द्वारा उपकार क्यों नहीं करोगे?' (श्लोक ४३५-४३६)

'वसु बोला, 'माँ, मैं मिथ्या क्यों बोलूंगा? सत्यवादी प्राण जाने पर भी मिथ्या नहीं बोलते। पाप-भय से जो भीत है उसके लिए जब किसी भी प्रकार का झूठ बोलना अनुचित है तब गुरु-वाक्य को अन्यथाकारी मिथ्या साक्षी मैं कैसे दूंगा?'

(श्लोक ४३७-४३८)

'तब पर्वत की माँ क्रुद्ध होकर बोली, 'वत्स, चाहे गुरु पुत्र के प्राणों की रक्षा करो या सत्य का आग्रह। दोनों कार्य एक साथ नहीं हो सकते। (श्लोक ४३९)

'तब वसु राजा ने गुरु पुत्र के प्राणों की रक्षा करना स्वीकार कर लिया। पर्वत की माँ इससे प्रसन्न होकर अपने घर लौट गई। मैं और पर्वत तब वसु राजा के निकट गए। (श्लोक ४४०)

'सभा के मध्य में गुणों से सुशोभित और सत् एवं असत्वाद-रूपी क्षीर और नीर का भेद करने में हंस रूप विज्ञ पुरुष एकत्रित हो रहे थे। आकाश-सी निर्मल स्फटिक शिला की वेदी पर रखे सिंहासन पर वसु सभापति बनकर बैठा था। वह इस प्रकार

शोभित हो रहा था जैसे आकाश में चन्द्रमा। (श्लोक ४४१-४४२)

'मैंने और पर्वत ने 'अज' शब्द का अर्थ अपने-अपने पक्ष के अनुसार विवृत किया। फिर मैं बोला, 'हे सत्यवादी, इसमें कौन-सा सत्य है आप बताएँ। (श्लोक ४४३)

'उसी समय अन्यान्य वृद्ध विप्र राजा से बोले, 'राजन्, इस विवाद की मीमांसा तो आप पर निर्भर है कारण पृथ्वी और आकाश के मध्य आप ही साक्षी हैं। घट आदि जो दस दिव्य हैं वे सत्य के आधार हैं। सत्य से ही मेघ वृष्टि करते हैं, सत्य में ही देवों की शक्ति निहित है। हे राजन्, आपके द्वारा ही यह लोक सत्य पर अवस्थित है। अतः इस विषय में हम आपको अधिक क्या कहें? जो बात आपके सत्यव्रत के अनुकूल हो वही कहें।' (श्लोक ४४४-४४६)

'यह सुनकर अपनी सत्यवादिता की जो प्रसिद्धि थी उसकी उपेक्षा कर राजा वसु बोले, 'गुरुदेव ने 'अज' शब्द का अर्थ 'बकरा' कहा था।' (श्लोक ४४७)

'वसु राजा के इस असत्य कथन को सुनकर वहाँ उपस्थित देवों ने क्रुद्ध होकर वसु का स्फटिक शिला निर्मित आसन वेदी को तोड़ डाला। उसी मुहूर्त में मानो वे नरक गमन कर रहे हों इस प्रकार जमीन पर गिर पड़े। देवों द्वारा विनष्ट वसु मृत्यु प्राप्त कर नरक गए। (श्लोक ४४८-४५०)

'वसु के आठ पुत्र पृथावसु, चित्रवसु, वासव, शक्र, विभावसु, विश्वावसु, सुर व महासुर क्रमशः राज सिंहासन पर बैठे; किन्तु कुपित देवों ने उन सभी की हत्या कर डाली। अतः वसु का नवम पुत्र सुवसु वहाँ से भागकर नागपुर और दसवाँ पुत्र बृहद्ध्वज मथुरा चला गया। नगरवासियों ने पर्वत को लज्जित एवं तिरस्कृत कर नगर से बाहर निकाल दिया। महाकाल नामक राक्षस ने उसे वन में आश्रय दिया।' (श्लोक ४५१-४५४)

रावण ने पूछा, महाकाल राक्षस कौन था?' प्रत्युत्तर में नारद कहने लगे—

'चारण युगल नामक एक नगर था। वहाँ अयोधन नामक एक राजा थे। उनकी रानी का नाम था दिति। उसके गर्भ से सुलसा नामक एक रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। अयोधन ने उसके

लिए स्वयंवर रचकर समस्त राजाओं को आमन्त्रित किया। राजागण स्वयंवर में उपस्थित हुए। उनमें सगर नामक राजा विशेष पराक्रमी था। उसकी आज्ञा से मन्दोदरी नामक एक दूती प्रतिदिन अयोधन राजा के प्रासाद में जाने लगी। एक दिन जब दिति कन्या सुलसा सहित अन्त:पुर के उद्यान स्थित कदली गृह में बैठी थी, मन्दोदरी वहां पहुंची। मां और पुत्री में क्या बात हो रही है, जानने के लिए वह कदली गृह के भीतर न जाकर आड़ में छुपकर सुनने लगी। (श्लोक ४५५-४६०)

'दिति बोली, 'वत्स, इस समय तेरा स्वयंवर हो रहा है; किन्तु मुझे दुःख हो रहा है और उसका निवारण तू ही कर सकती है। अत: प्रारम्भ से बोल रही हूं, मन लगाकर सुन— (श्लोक ४६१)

'श्री ऋषभदेव के भरत और बाहुबली नामक दो पुत्र थे। उनके भी सोम और सूर्य नामक दो पुत्र हुए। ये दोनों मुख्य वंशधर थे और उनके नाम से ही वंश परम्परा प्रवर्तित हुई। सोम के वंश में मेरा भाई तृणबिन्दु हुआ। तेरे पिता अयोधन सूर्यवंश में हुए। तेरे पिता की बहिन सत्ययशा का विवाह तृणबिन्दु के साथ हुआ। उसके गर्भ से मधुपिंग नामक एक पुत्र हुआ। मैं तेरा विवाह मधुपिंग के साथ करना चाहती हूं। तेरे पिता तेरा विवाह स्वयंवर में आए उसी राजा के साथ ही करेंगे जिसे तू पसन्द करेगी। तू स्वयंवर में किसे पसन्द करेगी यह मैं नहीं जानती। इसलिए मेरा मन बहुत दुःखी है। इस दुःख को दूर करने के लिए तू मुझे वचन दे कि तू मधुपिंग को ही वरण करेगी।' (श्लोक ४६२-४६६)

सुलसा ने मां की बात स्वीकार कर ली। मन्दोदरी ने सारी बात जाकर राजा सगर को सुना दी। (श्लोक ४६७)

सगर राजा ने स्वपुरोहित विश्वभूति को बुलाकर सारी बात बताई। विश्वभूति जो कि आशुकवि थे तत्क्षण 'राजलक्षण संहिता' नामक एक ग्रन्थ की रचना की। उसमें उन्होंने ऐसा ही लिखा जिससे सगर राजा राजलक्षण-युक्त और मधुपिंग राजलक्षण-हीन सिद्ध होगा। उसी ग्रन्थ को पुराणादि की तरह प्राचीनत्व और प्रतिष्ठा देने के लिए एक सन्दूक में बन्द कर रख दिया।

(श्लोक ४६८-४६९)

अवसर देखकर पुरोहित ने राजसभा में उस ग्रन्थ की

आलोचना की और राज्यादेश प्राप्त कर वे उस ग्रन्थ का पाठ राज्य सभा में करने लगे। (श्लोक ४७०)

ग्रन्थ पाठ के पूर्व सगर राजा बोले—'इस ग्रन्थ के अनुसार जो राजलक्षण से हीन होगा उसे या तो सभा से निकाल दिया जाएगा या मृत्युदण्ड दिया जाएगा।' (श्लोक ४७१)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पुरोहित जैसे-जैसे पढ़ते गए, उसमें वर्णित गुण स्वयं में न पाकर मधुपिंग लज्जित होने लगा। अन्ततः वह वहां से उठकर चला गया। सुलसा ने सगर राजा को वरमाला पहनाई। शेष सभी अपने-अपने राज्य को लौट गए। (श्लोक ४७२-४७३)

मधुपिंग अपमानित होकर बाल तप करता हुआ परलोक गमन किया और साठ हजार असुरों के स्वामी महाकाल के रूप में जन्म ग्रहण किया। अवधि ज्ञान से उसे पूर्वजन्म ज्ञात हुआ। उसे स्मरण हो आया कि सुलसा के स्वयंवर में सगर राजा के कारण उसे अपमानित होना पड़ा था। उन्होंने ही कृत्रिम ग्रन्थ की रचना कर मुझे सर्वगुण हीन प्रमाणित किया था। अतः मेरे लिए यही उचित है कि मैं सगर राजा को अन्य राजाओं सहित प्राणदण्ड दूं। तब से वह उनका छिद्र खोजने लगा। तभी शुक्तिमती नदी के तट पर पर्वत से मिलना हुआ। वह ब्राह्मण वेष धारण कर पर्वत के पास गया और बोला—'हे महामति ? मैं आपके पिता का मित्र था। मेरा नाम शाण्डिल्य है। पूर्व में मैं और क्षीर कदम्ब गौतम नामक विज्ञ उपाध्याय के निकट वेद पाठ करते थे। सुना कि नारद एवं अन्य कुछ लोगों ने तुम्हारा अपमान किया। इसीलिए मैं यहां आया हूं। मैं लोगों को विमुग्ध कर तुम्हारा पक्ष प्रबल कर दूंगा।

(श्लोक ४७४-४७९)

पर्वत और असुर एक साथ रहने लगे। असुर ने उन लोगों की दुर्गति करने के लिए बहुत से मनुष्यों को कुधर्म में मुग्ध कर दिया। वह लोगों में व्याधि, महामारी और भूतभय फैलाने लगा और जो पर्वत का मत ग्रहण कर लेता उसे वह उन व्याधियों से मुक्त कर देता है। शाण्डिल्य के आदेश से उनके बार-बार व्याधि महामारी और भूतभय निवारण कर देने से लोग उसका मत ग्रहण करने लगे। (श्लोक ४८०-४८२)

सगर राजा के राज्य में, अन्तःपुर में और परिवार में भी उस

असुर ने अत्यन्त भयंकर रोग प्रसारित किया। लोगों के विश्वास के अनुसार सगर राजा ने भी पर्वत से अपना रोग दूर करवाया। पर्वत भी शाण्डिल्य की सहायता से सर्वत्र शान्ति स्थापित करने लगा। (श्लोक ४८३-४८४)

तदुपरान्त शाण्डिल्य के कथनानुसार पर्वत उपदेश देने लगा कि सौत्रामिनी यज्ञ में मदिरा-पान करना उचित है। कारण, विधिवत् सुरापान करने में कोई दोष नहीं है। गोसव यज्ञ में अगम्यागमन भी किया जा सकता है। मातृमेध यज्ञ की वेदी पर माता का और पितृमेध यज्ञ की वेदी पर पिता का वध करना उचित है। इसमें कोई दोष नहीं है। कछुवे की पीठ पर अग्नि प्रज्वलित कर 'जुह्वकांक्षाय स्वाहा' बोलकर (अग्नि के) प्रीत्यर्थ में हवनीय द्रव्य होम करो। यदि कछुवा न मिले तब गंजे सिर वाले, पीतवर्ण, आलस्य-परायण, गले तक निर्मल जल में डूबे हुए, शुद्ध ब्राह्मण के मस्तक पर कछुवे की तरह अग्नि प्रज्वलित कर उसमें आहुति दो। जो हुए हैं और होंगे, जो मोक्ष के ईश्वर हैं और जो अन्न द्वारा निर्वाह करते हैं वे सब ईश्वरमय हैं। तब कौन किसका वध करता है? इसलिए यज्ञ में जितना चाहो उतना पशु-वध करो। यज्ञ में मांस-भक्षण उचित है। यज्ञ के द्वारा जो मांस पवित्र हुआ है, वह देवता के उद्देश्य से हुआ है। (श्लोक ४८५-४९२)

ऐसे उपदेश से सगर राजा ने जब उसका मत स्वीकार कर लिया तब उसने कुरुक्षेत्र आदि में बहुत से यज्ञ करवाए। इस प्रकार स्वमत प्रसारित होने पर उसने राजसूय यज्ञ आदि करवाए और मृत पशुओं को देव-विमान में बैठे हुए दिखाया। अतः पर्वत के मत की सत्यता पर विश्वास कर लोग निःशंक होकर यज्ञ में जीव-वध करने लगे। यह देखकर मैंने दिवाकर नामक विद्याधर से कहा—'यज्ञ में वध के लिए आए पशुओं का तुम्हें हरण कर लेना चाहिए।' मेरी बात स्वीकार कर वह यज्ञ-स्थली से पशुओं का हरण करने लगा। यह बात वह परमाधामी असुर जान गया। अतः उसकी विद्या व्यर्थ करने के लिए महाकाल यज्ञ में ऋषभ देव की प्रतिमा रखने लगा। यह देखकर उस विद्याधर ने पशु-हरण बन्द कर दिया। मैं भी निरुपाय होकर वहां से अन्यत्र चला गया। तदुपरान्त उसी असुर ने माया द्वारा यज्ञवेदी पर यह वाक्य ध्वनित किया—'सगर

राजा की बलि दो।' तब सुलसा सहित सगर राजा को यज्ञाग्नि में निक्षेप किया गया। इस प्रकार अपना उद्देश्य पूरा हो जाने पर वह असुर उस स्थान का परित्याग कर अन्यत्र चला गया। इस भाँति पाप के पर्वतरूप पर्वत ने हिंसात्मक यज्ञ का प्रचलन करवाया। आप इसे बन्द करें।' (श्लोक ४९३-५०१)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

रावण ने नारद की बात स्वीकार कर ली और उन्हें वन्दना कर विदा दी। मरुत राजा को भी उसके कृत्य के लिए उसने उसे क्षमा कर दिया। (श्लोक ५०२)

तब मरुत राजा रावण को नमस्कार कर बोला—'हे स्वामी! दया के सागर ये कौन थे? जिन्होंने आपके माध्यम से हम लोगों की भयंकर पाप से रक्षा की।' प्रत्युत्तर में रावण बोला—

(श्लोक ५०३)

'ब्रह्मरुचि नामक एक ब्राह्मण था। वह तापस धर्मावलम्बी था। उसी अवस्था में उसकी स्त्री कुर्मी ने गर्भ धारण किया। एक समय वहाँ कुछ साधु आए। उनमें से एक ने उससे कहा—'संसार भय से भीत होकर तुम गृह परित्याग कर वन में रहते हो, यह तो ठीक है; किन्तु वनवास में भी जब स्त्री को साथ रखकर विषय भोग करते हो तब गृहवास से यह वनवास किस प्रकार अच्छा हुआ?' (श्लोक ५०४-५०६)

यह बात ब्रह्मरुचि को लग गई। तब ब्रह्मरुचि ने तापस धर्म परित्याग कर जैन साधु का धर्म ग्रहण कर लिया। कुर्मी ने भी श्रावक धर्म ग्रहण कर मिथ्यात्व का परित्याग किया और वहीं रहने लगी। यथासमय उसने एक पुत्र को जन्म दिया। जन्म के समय नहीं रोने के कारण कुर्मी ने उसका नाम नारद रखा। एक दिन कुर्मी जब कार्यवश अन्यत्र गई थी तब जृम्भक देवों ने आकर उसे चुरा लिया। कुर्मी पुत्र-शोक से कातर होकर इन्दुमाला नामक एक आर्यिका से दीक्षित हो गई। (श्लोक ५०७-५०९)

जृम्भक देवों ने उस बालक का पालन-पोषण किया, लिखना-पढ़ना सिखाया, शास्त्रों में प्रवीण किया और अन्त में आकाशगामिनी विद्या दी। (श्लोक ५१०)

श्रावक व्रतों का पालन करता हुआ नारद क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुआ। सिर पर शिखा रखने के कारण न उसे यति कहा

जाता है न श्रावक। नारद कलह-विवाद में रुचि लेता है और नृत्य-गीत में प्रेम रखता है; किन्तु काम से सदा दूर रहता है। वह एक साथ वाचाल व वत्सल है। वीर और कामी पुरुषों के बीच सन्धि और विग्रह कराता है। हाथ में दर्भासन, अक्षमाला और कमण्डल लेकर और पैर में खड़ाऊ पहनकर वह सर्वत्र घूमता रहता रहता है। उसका लालन-पालन देवों ने किया था इसलिए लोग उसे देवर्षि कहते हैं। वे ब्रह्मचारी और स्वेच्छा-विहारी हैं।'

(श्लोक ५११-५१४)

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

नारद का वृत्तान्त सुनकर मरुत् राजा ने अज्ञानपूर्वक जो यज्ञ करवाने का अपराध किया था उसके लिए रावण से क्षमा मांगी एवं अपनी पुत्री कनकप्रभा उसे दी। रावण ने भी वहीं उस कन्या से विवाह किया। मरुत् राजा के यज्ञ को भङ्ग करने वाला, पवन-सा महाबली रावण वहां से मथुरा चला गया।

(श्लोक ५१५-५१७)

मथुरा का राजा हरिवाहन अपने त्रिशूलधारी पुत्र मधु के साथ रावण से मिलने आया। कुछ देर बात-चीत करने के पश्चात् रावण ने हरिवाहन से पूछा, 'तुम्हारे पुत्र को यह त्रिशूल कैसे प्राप्त हुआ?' हरिवाहन ने भृकुटि से संकेत कर मधु को आज्ञा दी। मधु मृदुस्वर में कहने लगा : (श्लोक ५१८-५१९)

'यह त्रिशूल मेरे पूर्व भव के मित्र चमरेन्द्र ने मुझे दिया है। त्रिशूल देने के समय उसने मुझसे कहा था धातकीखण्ड के ऐरावत क्षेत्र में शतद्वार नामक एक नगर है। वहां सुमित्र नामक एक राजपुत्र और प्रभव नामक एक कुलपुत्र निवास करते थे। उनमें वसन्त और वसन्त-सखा मदन की भांति प्रेम था। बाल्यकाल में वे एक गुरु के पास रहकर कला का अभ्यास करते और अश्विनी कुमारों की तरह अविभक्त रूप से क्रीड़ा करते। सुमित्र जब बड़ा हुआ तो सिंहासन पर बैठा और प्रभव को भी अपनी तरह समृद्धशाली बना दिया। (श्लोक ५२०-५२४)

'एक बार सुमित्र का अश्व उसे लेकर एक गहन वन में चला गया। वहां उसने पल्लीपति की कन्या वनमाला से विवाह किया और उसे प्रासाद में ले आया। एक दिन प्रभव ने उस रूप-यौवन सम्पन्ना वनमाला को देखा। देखते ही वह काम के वशीभूत हो

गया और कृष्ण पक्ष के चन्द्र की भाँति प्रतिदिन क्षीण होने लगा। उसका काम रोग इतना असाध्य हो गया कि कोई भी औषध, मन्त्र-तन्त्र उसे ठीक नहीं कर सके। यह देखकर राजा सुमित्र ने एक दिन उससे पूछा, 'मित्र, तुम्हें क्या हुआ है, मुझे स्पष्टतया बताओ।' प्रभव ने कहा, 'वह मैं तुम्हें नहीं बता सकता यद्यपि वह मेरे मन में है; किन्तु वह नीच और कुलनाशक है।' राजा ने उससे सत्य बात कहने के लिए जब बार-बार आग्रह किया तो उच्च-कुल-जात प्रभव बोला, 'तुम्हारी पत्नी वनमाला पर मेरा अनुराग ही इसका कारण है।' राजा बोला, 'मित्र, तुम्हारे लिए मैं समस्त राज्य का परित्याग कर सकता हूं, वनमाला को त्यागना तो तुच्छ है। आज ही तुम उसे पाओगे' कहकर प्रभव को घर भेज दिया एवं सन्ध्या के पश्चात् स्वयं ही दूती की तरह वनमाला को उसके पास भेजा। (श्लोक ५२५-५३२)

'वनमाला प्रभव के पास जाकर बोली, 'आपको दुःखी देखकर राजा ने जीवन प्रदायिनी औषधि की भाँति मुझे यहाँ भेजा है। आदेश दें मैं आपकी क्या सेवा करूँ? पति की आज्ञा का पालन करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है। आपके लिए मेरे पति तो जीवन पर्यन्त दे सकते हैं तो फिर मुझ-सी दासी की तो बात ही क्या है? प्रसन्न हों, आप क्यों उदास हो गए हैं?' (श्लोक ५३३-५३४)

'प्रभव पश्चाताप करता हुआ बोला, 'मुझसे निर्लज्ज को धिक्कार है! सुमित्र ही वास्तव में महान् है। मेरे प्रति उसके प्रेम की सीमा नहीं है। अन्य के लिए अपना जीवन दिया जा सकता है; किन्तु पत्नी नहीं। आप मेरी माता तुल्य हैं। अतः यहाँ से चली जाइए और आज से पति के आदेश देने पर भी पाप पुंज रूपी मेरी ओर भूलकर भी न देखें, न बोलें।' (श्लोक ५३५-५३८)

'राजा सुमित्र भी वनमाला के पीछे-पीछे आए थे और आड़ से समस्त बातें सुन रहे थे। मित्र का ऐसा सत्व देखकर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। (श्लोक ५३९)

'प्रभव ने वनमाला को नमस्कार कर विदा दी। तदुपरान्त खड्ग लेकर अपना शिरोच्छेद करने को तत्पर हो गया। सुमित्र ने उसी समय सम्मुख आकर खड्ग छीन लिया। बोले, 'तुम यह दुःसाहस क्यों कर रहे हो?' (श्लोक ५४०-५४१)

'लज्जा से प्रभव का मस्तक झुक गया। मानो वह धरती में प्रवेश करना चाहता हो। बड़ी कठिनता के बाद सुमित्र उसे स्वस्थ कर पाए। तदुपरान्त उन्होंने बहुत दिनों तक राज्यकार्य किया। उनका बन्धुत्व पूर्व की तरह ही अक्षुण्ण रहा। शेष जीवन में सुमित्र ने दीक्षा ले ली और मृत्यु के पश्चात् ईशानकल्प में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर हरिवाहन की पत्नी माधवी के पराक्रमी पुत्र मधु के रूप में तुमने यहाँ जन्म ग्रहण किया है। प्रभव दीर्घकाल भवभ्रमण कर विश्वावसु की पत्नी ज्योतिमयी की कुक्षि से श्रीकुमार नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उस जन्म में निदान करने के कारण उसने चमरेन्द्र रूप में जन्म ग्रहण किया। वह चमरेन्द्र मैं हूं तुम्हारे पूर्व जन्म का मित्र।' ऐसा कहकर उसने मुझे यह त्रिशूल दिया। यह त्रिशूल दो हजार योजन पर्यन्त जाकर कार्य सिद्ध कर पुनः लौट आता है।' (श्लोक ५४२-५४७)

यह सुनकर दशानन ने भक्ति और शक्ति के धारक मधु के साथ अपनी कन्या मनोरमा का विवाह कर दिया। (श्लोक ५४८)

लङ्का से दिग्विजय के लिए निकलने के पश्चात् १६ वर्ष व्यतीत होने पर रावण मेरु पर्वत स्थित पाण्डुक वन में जो अर्हत् चैत्य है वहाँ पूजा करने गया। वहाँ रावण ने भक्तिभाव से समस्त चैत्यों की वन्दना की और अत्यन्त धूमधाम से पूजा उत्सवादि अनुष्ठान किए। (श्लोक ५४९ ५५०)

दुर्लङ्घपुर में इन्द्र का पूर्व दिक्पाल नलकूवर निवास करता था। रावण के आदेश से कुम्भकर्णादि उसे पकड़ने गए। नल कूवर ने आशाली नामक विद्या के प्रभाव से अपने नगर के चारों ओर एक सौ योजन ऊँचे एक प्राकार का निर्माण कर रखा था। उस पर उसने एक ऐसा अग्निमय यन्त्र स्थापित कर रखा था जिससे निकलते स्फुलिंग ऐसे लगते मानो अग्नि वर्षा हो रही है। उसी सुदृढ़ प्राकार के भीतर सैन्य परिवृत्त क्रोध से प्रज्वलित अग्निकुमार सा नलकूवर रहता था। (श्लोक ५५१-५५४)

सोकर उठा मनुष्य जैसे ग्रीष्मकालीन दोपहर के सूर्य को नहीं देख सकता उसी भांति कुम्भकर्णादि वहां जाकर उस नगर को नहीं देख पाए। उनका उत्साह भंग हो गया। उन्होंने रावण से जाकर निवेदन किया कि दुर्लङ्घपुर वास्तव में दुर्लंघ्य है। (श्लोक ५५५-५५६)

यह सुनकर रावण स्वयं वहां गया और अग्निवेष्टित वैसा ही दुर्ग देखा। रावण चिन्तामग्न हो गया कि उसे किस प्रकार जय किया जाए। इसी विषय में वह अपने बन्धु-बांधवों से विचार-विमर्श करने लगा। (श्लोक ५५७-५५८)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

नलकूबर की पत्नी उपरम्भा रावण पर आसक्त हो गई। अतः उसने रावण के पास दूती भेजी। वह दूती रावण से जाकर बोली—'मूर्तिमती जयलक्ष्मी-सी उपरम्भा आपके साथ क्रीड़ा करना चाहती है। आपके गुणों पर मुग्ध बनी उसका मन तो आपके पास आ ही गया है वहाँ तो मात्र शरीर है। हे मानद, इस नगर की रक्षिका आशाली नामक विद्या को वह अपने शरीर की तरह आपके अधीन कर देगी। फलतः आप नलकूबर सहित नगर को अपने अधीन कर सकेंगे। हे देव, सुदर्शन नामक एक चक्र भी आपको प्राप्त होगा। (श्लोक ५५९-५६१)

यह सुनकर रावण ने हँसते हुए विभीषण की ओर देखा। विभीषण ने तुरन्त 'ऐसा ही होगा' कहकर दूती को विदा कर दिया। तब रावण क्रुद्ध होकर विभीषण से बोला, 'विभीषण, तुमने इस कुल विरुद्ध कार्य की स्वीकृति क्यों दी ? अरे मूढ़, हमारे कुल में आज तक किसी भी पुरुष ने रणभूमि में आकर शत्रु को पीठ नहीं दिखाई और न ही पर-स्त्री को अपना हृदय दिया। वैसा करना तो दूर की बात है, तुमने ऐसा कहकर भी निज कुल को कलङ्कित कर लिया है। तुम इतने विज्ञ होकर भी कैसे मतिच्छिन्न हो गए और ऐसा कह डाला ?' विभीषण बोला, 'हे अग्रज, हे महाबाहु, प्रसन्न हों, प्रसन्न हों, इतने कुपित मत होइए। शुद्ध हृदयी पुरुष को केवल वचन से ही न दोष लगता है न कलङ्क। पहले उसे आने तो दें, वह आपको विद्या देगी। आप उस विद्या से नलकूबर को वशीभूत कर लें। फिर उसे अस्वीकार कर दीजिएगा। युक्तियुक्त वचनों से उसे समझा-बुझाकर निवृत्त कर दीजिएगा।'

(श्लोक ५६२-५६७)

विभीषण की बात को स्वीकृति देने के पूर्व ही रावण के आलिंगन की आशा लिए उपरम्भा वहाँ आकर उपस्थित हो गई। उसने आशाली नामक वह विद्या रावण को दी। रावण उस विद्या के प्रभाव से अग्निमय वेष्टिनी नष्ट कर दुर्लंघपुर में स्वसेना

सहित प्रविष्ट हुआ। नलकूबर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध करने आया। विभीषण ने उसे उसी प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार हाथी चमड़े की थैली को पकड़ लेता है। सुर और असुर के लिए अजेय इन्द्र सम्पर्कित दुर्द्धर वह सुदर्शन चक्र भी रावण को प्राप्त हुआ। तब नलकूबर ने रावण की वश्यता स्वीकार कर ली और रावण ने भी उसका राज्य लौटा दिया। कारण पराक्रमी पुरुष विजय की जैसी इच्छा रखते हैं वैसी ऐश्वर्य की नहीं। तब रावण उपरम्भा से बोला, 'हे भद्रे, मुझसे विनयपूर्वक व्यवहार करने वाली आप अपने कुल के योग्य स्वपति को ही स्वीकार करें। कारण आपने मुझे विद्या दी है, अतः आप मेरी गुरु तुल्या हैं। फिर मैं पर-स्त्री को अपनी माँ और बहन की तरह देखता हूं। आप कामध्वज और सुन्दरी की कन्या हैं। इसलिए आपको ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जो उनके दोनों कुलों को कलङ्कित करे। ऐसा कहकर रावण ने उसे नलकूबर को सौंप दिया। क्रुद्ध होकर पितृगृह आई कन्या की भांति निर्दोष उपरम्भा पुनः पतिगृह लौट गई। (श्लोक ५६८-५७७)

मार्गदर्शक

नलकूबर द्वारा सम्मानित रावण सैन्य सहित रथनुपुर जाकर उपस्थित हुआ। रावण आया है सुनकर बुद्धिमान सहस्रार पुत्र-स्नेहवश स्नेह सिक्त कण्ठ से अपने पुत्र इन्द्र को बोला—

'हे वत्स, तुम्हारे जैसे पराक्रमी पुत्र के जन्म लेने से हमारे कुल ने उन्नति के उच्चतम शिखर पर आरोहण किया है और अन्य कुल की उन्नति का ह्रास किया है। यह तुमने अपने पराक्रम से ही सम्भव किया है; किन्तु अब नीति को मानना भी उचित है। कभी-कभी केवल पराक्रम ध्वंस का कारण भी बनता है। शरभादि एकान्त पराक्रम के कारण नष्ट होते हैं। इस पृथ्वी पर एक से बढ़कर एक पराक्रमी हैं। इसलिए यह गर्व करना उचित नहीं है कि मुझसे बढ़कर पराक्रमी कोई नहीं है। इस समय सभी के प्रताप को अपहरण करने वाले सूर्य-से प्रतापी एक पराक्रमी ने जन्म लिया है जिसने सहस्रांशु जैसे योद्धाओं को भी अपने वशीभूत कर लिया है, जिसने खेल ही खेल में अष्टापद उठा लिया, जिसने मरुत् राजा का यज्ञ भङ्ग किया, जिसके मन को जम्बूद्वीप के अधिपति यक्ष भी क्षुब्ध नहीं कर सके। अपनी भुजा की वीणा पर अर्हत्

भगवान का गुणगान करते देख सन्तुष्ट होकर धरणेन्द्र ने जिसे अमोघ शक्ति दी और जो प्रभु, मन्त्र और उत्साह से आज सबके लिए अजेय है। उसकी दोनों भुजाओं की तरह विभीषण और कुम्भकर्ण नामक दो पराक्रमी भाई हैं। सुकेश राक्षस के वंश में उत्पन्न उस वीर का नाम है रावण। उसने तुम्हारे यम और वैश्रवण नामक सेवक को क्रीड़ा ही क्रीड़ा में हरा दिया। बाली के भाई सुग्रीव को उसने अपना सामन्त बना लिया है। अग्निमय प्राकार वेष्टित दुर्लंघपुर में भी अनायास प्रविष्ट हो गया और उसके छोटे भाई ने वहाँ के राजा नलकूवर को क्रीड़ामात्र में बन्दी बना लिया। ऐसा रावण आज तुम्हारे यहाँ आया है। प्रलयकालीन अग्नि के समान उद्धत रावण को प्रणिपात अर्थात नम्रतारूपी अमृत वृष्टि से शान्त करो। तुम अपनी रूपवती कन्या रावण को दान करो ताकि दोनों सम्बन्ध स्नेहमय बने।' (श्लोक ५७८-५९१)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पिता के ये वचन सुनकर इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और बोला—'पिताजी, रावण मेरा शत्रु है। शत्रु को मैं अपनी कन्या कैसे दूँगा? हमारा वैर आज का नहीं वंश परम्परा से चला आ रहा है। हमारे पूर्वज विजयसिंह की उनके पक्ष के राजा ने हत्या की, मैंने उसके पितामह माली की जो दुर्दशा की थी वही दुर्दशा मैं आज रावण की भी करूँगा। रावण आया है तो आए, मेरे लिए वह तुच्छ है। स्नेहवश आप चिन्तित न हों, धैर्य रखें। अपने पुत्र के भुजबल को तो आपने कितनी ही बार देखा है। क्या आप मेरा पराक्रम नहीं जानते?' (श्लोक ५९२-५९५)

इन्द्र जिस समय पिता को यह सब कह रहा था तभी उसे खबर मिली कि रावण ने नगर को घेर लिया है। थोडी देर पश्चात् ही रावण का दूत उसके निकट आया और विश्वस्तता पूर्वक बोला—'राजन, जो राजा अपने भुजबल और विद्याबल पर गर्व करते थे उन सबका गर्व आज खण्डित हो गया है। वे उपहार देकर रावण की पूजा करते हैं। रावण की विस्मृति और आपकी सरलता के कारण इतने दिनों तक आप निश्चिन्ततापूर्वक राज्य करते रहे; किन्तु अब आपका भी समय आ गया उनकी सेवा का। अतः अब रावण की सेवा करें। और यदि सेवा की इच्छा नहीं है तो स्वशक्ति का प्रदर्शन करें। यदि भक्ति और शक्ति किसी का भी

प्रदर्शन नहीं करेंगे तो यूं ही बर्बाद हो जाएँगे।' (श्लोक ५९६-६००)

इन्द्र ने प्रत्युत्तर दिया, 'दीन राजाओं ने रावण की भक्ति की इसीलिए रावण इतना मदोन्मत्त हो गया है और मुझसे भी भक्ति का दावा किया है। इतने दिनों तक तो जैसे-तैसे सब सुखपूर्वक हो गया; किन्तु अब उसका सम्पर्क काल तुल्य इन्द्र से हुआ है। एतदर्थ तुम जाकर अपने प्रभु से बोलो कि अब वे अपनी भक्ति या शक्ति दिखाएँ। यदि भक्ति और शक्ति नहीं दिखाएँगे तो वे ऐसे ही नष्ट हो जाएंगे।' (श्लोक ६०१-६०३)

तब दूत ने जाकर ये सब बातें रावण से निवेदित कीं। क्रुद्ध बना रावण तुरन्त युद्ध के लिए तैयार हुआ और सैनिकों को भी प्रस्तुत होने को कहा। इन्द्र भी उसी समय युद्ध के लिए तैयार होकर सैन्य सह नगर के बाहर आया। कारण वीर अन्य वीर का अहंकार सहन नहीं कर सकते। (श्लोक ६०४-६०५)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

युद्ध प्रारम्भ हुआ। सामन्तों के साथ सामन्त, सैनिकों के साथ सैनिक, सेनापतियों के साथ सेनापति युद्ध करने लगे। प्रलयकाल में संवर्त्त और पुष्करावर्त मेघ में जिस प्रकार संघर्षण होता है उसी प्रकार अस्त्र वर्षण करने वाली दोनों सेनाओं में संघर्ष होने लगा। (श्लोक ६०६-६०७)

पतङ्गों की भाँति इन सैनिकों के मरने से क्या लाभ होगा यह समझकर रावण अपने भुवनालङ्कार हाथी पर चढ़कर आया। इन्द्र और रावण दोनों के हाथियों ने परस्पर आक्रमण किया। एक हाथी ने दूसरे हाथी की सूँड को इस प्रकार जकड़ लिया कि लगा दो सर्प एक दूसरे को जकड़ कर पड़े हुए हैं या दोनों हाथियों ने जैसे नागपाश की रचना की है। दोनों हाथियों के दाँतों द्वारा परस्पर प्रहार करने के कारण अरणि काष्ठ से जैसे स्फुलिङ्ग निकलते हैं उसी प्रकार अग्नि-स्फुलिङ्ग वहाँ से निकलने लगे। दाँतों के आघात से दोनों के दाँतों से उसी प्रकार स्वर्णवलय खिसक कर गिरने लगे जैसे विरहिणी के हाथों से स्वर्णवलय खिसक के गिर जाते हैं। दाँतों के आघात से जिस प्रकार गण्डस्थल से मदधारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार दोनों की देह से रक्तधारा प्रवाहित होने लगी। उधर रावण और इन्द्र दोनों हाथियों की तरह युद्ध करने लगे। तोमर मुद्‌गर और बाणों द्वारा दोनों परस्पर प्रहार करने लगे।

दोनों ही बलवान थे अतः एक-दूसरे के अस्त्रों को अपने अस्त्रों द्वारा काटने लगे। पूर्व और पश्चिम समुद्र की भांति कोई किसी से न्यून नहीं था। तब रण रूपी यज्ञ में दीक्षित वे परस्पर बाध्य-बाधकताकारी उत्सर्ग और अपवाद मार्ग की तरह् मन्त्रास्त्रों से एक दूसरे के अस्त्रों को काटते हुए युद्ध करने लगे। एक वृक्ष पर लगे दो फलों की तरह भुवनालङ्कार और ऐरावत हाथी दोनों के एक दूसरे के निकट आते ही रावण कूद कर ऐरावत पर चढ़ गया। और इन्द्र के महावत की हत्या कर एक वृहद हस्ती की तरह इन्द्र को बांध लिया। यह देखकर राक्षस वीरों ने हर्ष से उच्च कोलाहल कर मधुमक्खियां जिस प्रकार मधु छत्ते को घेर लेती है उसी प्रकार ऐरावत को घेर लिया। इन्द्र को घिरते देख इन्द्र की सेना भीत होकर युद्ध से विरत हो गई। कारण स्वामी पराजय से समस्त सैन्य भी पराजित हो जाती है। ऐरावत हस्ती सहित रावण इन्द्र को लेकर अपने स्कन्धावार में लौट आया। उसने स्वयं को वैताढ्य पर्वत की उभय श्रेणियों का अधिपति घोषित कर दिया।

(श्लोक ६०८-६२१)

वहां से रावण लंका लौट गया। तोते को जिस प्रकार पींजरे में रखा जाता है उसी प्रकार उसने इन्द्र को कारागार में रख दिया। (श्लोक ६२२)

यह खबर मिलने पर इन्द्र के पिता सहस्रार दिक्पालों को लेकर लंका गए और सेवक की तरह् हाथ जोड़कर रावण से कहने लगे: (श्लोक ६२३)

'कैलाश पर्वत को पत्थर के टुकड़े की तरह उठा लेने वाले आप जैसे वीर से पराजित होकर भी हम लज्जित नहीं हैं, उसी प्रकार आप जैसे वीर से प्रार्थना करने में भी हमें लज्जा नहीं है। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, आप इन्द्र को छोड़कर मुझे पुत्र-भिक्षा दें।' (श्लोक ६२४-६२५)

रावण बोला—'यदि इन्द्र स्वपरिवार और दिकपालों सहित कुछ समय रहकर निम्नलिखित कार्य करे तो मैं उसे छोड़ सकता हूं। अपने घर को जिस प्रकार धूल और कचरे से परिष्कृत रखा जाता है उसी प्रकार उसे लंका को परिष्कृत रखना होगा। मेघ जैसे जलवृष्टि करते हैं उसी भांति प्रतिदिन सुबह लंका में दिव्य

सुगन्धित जल की वृष्टि करेगा और उद्यान से फूल तोड़कर माली की तरह मालाएँ गूँथ कर नगर में जितने भी देवालय हैं वहां उन मालाओं को पहुंचाएगा। यदि वह यह स्वीकार करे तभी वह मुक्त होगा और अपना राज्य पुनः प्राप्त कर मेरा कृपापात्र बनकर दिन व्यतीत करेगा।' (श्लोक ६२६-६३०)

सहस्रार के यह सब स्वीकार कर लेने पर रावण ने अपने भाई की तरह इन्द्र का सत्कार कर उसे मुक्त कर दिया।

(श्लोक ६३१)

तब इन्द्र रथनुपुर आकर महादुःख से दिन व्यतीत करने लगा। कहा भी गया है तेजस्वी पुरुष के लिए निस्तेज होने का दुःख मृत्यु-दुःख से भी दुस्सह है। (श्लोक ६३२)

एक दिन निर्वाणसंगम नामक मुनि वहां आए। इन्द्र उन्हें वन्दना करने गया। वन्दना कर इन्द्र ने उनसे पूछा—'किस कर्मफल के कारण रावण द्वारा मैं इस प्रकार अपमानित हुआ?' मुनि ने जवाब दिया—

'बहुत दिनों पूर्व अरिञ्जय नामक नगर में ज्वलनसिंह नामक एक विद्याधर राजा रहता था। उसकी वेगवती नामक रानी थी। उनके अहिल्या नामक एक रूपवती कन्या थी। समस्त विद्याधर राज उनके स्वयंवर में एकत्र हुए। उस स्वयंवर में चन्द्रावर्त नगर के राजा आनन्दमाली और सूर्यावर्त के राजा तड़ित्प्रभ भी आए थे। तड़ित्प्रभ तुम थे। तुम दोनों एक साथ आए थे। फिर भी अहल्या ने तुम्हारा परित्याग कर स्वेच्छा से आनन्दमाली के गले में वरमाला डाली। तुम्हें यह अपमान लगा। उस दिन से तुम आनन्दमाली के प्रति द्वेष भाव रखने लगे। कारण, तुमने सोचा तुम्हारे रहते अहल्या ने उसको वरमाला कैसे पहनाई?' (श्लोक ६३३-६३९)

'कुछ दिनों पश्चात् आनन्दमाली के मन में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने संसार परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की और महर्षियों के साथ तीव्र तपस्या करने लगा। विहार करते हुए वह एक बार रथावत नामक पर्वत पर आया और वहां पर ध्यान करने लगा। तुमने उसे वहां देखा। देखते ही तुम्हें अहल्या के स्वयंवर की घटना याद हो आई। अतः तुमने उसे उसी अवस्था में बांधकर खूब मारा; किन्तु वह ध्यान से जरा भी विचलित नहीं

हुआ, पर्वत की तरह अटल रहा। (श्लोक ६४०-६४२)

'कल्याणगुणधर नामक एक साधु जो कि उसके गुरु भाई थे आए थे, उन्होंने यह कृत्य देखा था। तुम्हें निवृत्त करने के लिए जिस प्रकार वृक्ष पर बिजली गिरती है उसी प्रकार तुम पर तेजो-लेश्या फेंकी। यह देखकर तुम्हारी पत्नी सत्यश्री ने अनुनय-विनय द्वारा मुनि को शान्त किया। तब उन्होंने उस तेजोलेश्या का संहरण किया। अतः तुम्हें जलकर मरने से छुटकारा मिला; किन्तु मुनि का तिरस्कार करने के कारण उन्हें कष्ट देने के कारण तुमने दीर्घ-काल तक संसार-भ्रमण किया। तदुपरान्त कुछ शुभ कर्म उपार्जन करने के कारण सहस्रार के पुत्र इन्द्र रूप में जन्म ग्रहण किया। रावण द्वारा जो तुम तिरस्कृत हुए वह मुनि को दुःख देने और उनका तिरस्कार करने के कारण। क्योंकि कर्म सामान्य कीट से पुरन्दर तक को उसका फल अवश्य देता है। चाहे वह शीघ्र दे या दीर्घ दिनों तक दे। संसार का यही नियम है।' (श्लोक ६४३-६४७)

इस प्रकार अपने पूर्व भव का वृत्तान्त अवगत कर इन्द्र ने अपने पुत्र दत्तवीर्य को राज्य देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली और उग्र तपश्चर्या कर मोक्ष गमन किया। (श्लोक ६४८)

एक बार रावण अनन्तवीर्य नामक मुनि को केवलज्ञान होने पर वन्दन करने स्वर्णतुङ्ग नामक पर्वत पर गया। उन्हें वन्दना कर उसने योग्य स्थान पर बैठकर कानों के लिए अमृत तुल्य उनकी धर्म-देशना सुनी। देशना शेष होने पर रावण ने उनसे पूछा— भगवन्! मेरी मृत्यु किस कारण से और किसके हाथ होगी?' महर्षि ने प्रत्युत्तर दिया—'पर स्त्री दोष से भविष्य में जन्म लेने वाले वासुदेव के हाथों प्रति वासुदेव तुम्हारी मृत्यु होगी।' (श्लोक ६४९-६५२)

यह सुनकर रावण ने उनके सम्मुख ही यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि किसी अनिच्छुक पर स्त्री से वह संभोग नहीं करेगा। (श्लोक ६५३)

तदुपरान्त ज्ञान रत्न के सागर मुनि को वन्दना कर रावण पुष्पक विमान में बैठकर अपने नगर को लौट आया और वहां के नर-नारियों के नेत्र रूपी नील कमलों के हर्ष वैभव देने में वह चन्द्र रूप बना। (श्लोक ६५४)

द्वितीय सर्ग समाप्त

तृतीय सर्ग

वैताढ्य पर्वत के आदित्यपुर नामक नगर में एक राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी का नाम था केतुमती। उनके पवनञ्जय नामक एक पुत्र था जो बल और आकाशगमन में पवन की ही भांति विजयी था। (श्लोक १-२)

मार्गदर्शक :- आचार्य

इस समय भरत क्षेत्र के समुद्रतीरवर्ती दन्ती पर्वत पर महेन्द्र नामक एक नगर था। वहाँ महेन्द्र नामक एक विद्याधर राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी का नाम था हृदय सुन्दरी। उसने अरिदमन आदि एक सौ पुत्रों को जन्म देने के पश्चात् अञ्जना सुन्दरी नामक एक कन्या को जन्म दिया। जब वह यौवन को प्राप्त हुई तो उसके पिता को उसके योग्य वर के लिए चिन्ता हुई। मंत्रियों ने उसके योग्य हजार विद्याधरों के नाम बताए। महेन्द्र के आदेश पर मन्त्रीगण उन विद्याधर कुमारों के चित्र कपड़े पर अङ्कित करने लगे और उन्हें दिखाने लगे। उनमें एक मन्त्री ने एक दिन विद्याधर राजा हिरण्याभ और सुमनसा के पुत्र विद्युत्प्रभ और प्रह्लाद और केतुमती के पुत्र पवनंजय का मनोहर चित्र अङ्कित कर उन्हें दिखाया। उन दोनों चित्रों को देखकर महेन्द्र बोले, 'ये दोनों विद्याधर कुमार रूपवान और कुलीन हैं। अञ्जना के लिए इनमें किसे चुनें?' (श्लोक ३-९)

मन्त्री बोला, 'राजन्, नैमित्तिकों ने मुझे बताया था कि विद्युत की भाँति प्रभायुक्त विद्युत्प्रभ अट्ठारह वर्ष पूर्ण होने पर मोक्ष प्राप्त कर लेगा और प्रह्लादपुत्र पवनंजय दीर्घजीवी होगा। इसलिए अंजना सुन्दरी के योग्य वर पवनंजय ही है।' (श्लोक १०-११)

उस समय समस्त विद्याधर राजा अपने-अपने परिवार सहित खूब धूमधाम से नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा करते थे। इसी प्रकार की एक यात्रा में प्रह्लाद ने महेन्द्र को देखा और उनके पास जाकर अंजना सुन्दरी की अपने पुत्र पवनंजय के लिए याचना की। महेन्द्र ने स्वीकार कर लिया क्योंकि वे तो यही चाहते थे। प्रह्लाद की याचना तो निमित्त मात्र थी। आज से तीसरे दिन मानस सरोवर के तट पर उनका विवाह करेंगे यह तय कर वे अपने-अपने राज्य को लौट गए। महेन्द्र और प्रह्लाद अपने परिवार सहित

मानस सरोवर के तट पर अवस्थित हुए। (श्लोक १२-१६)

पवनंजय ने अपने मित्र प्रहसित से पूछा—'मित्र क्या तुमने कभी अंजना सुन्दरी को देखा है ?' (श्लोक १७)

प्रहसित ने हँसते हुए जवाब दिया—'हाँ देखा है। वह रम्भादि अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर है। यह तो तुम उसका रूप देखकर ही समझ जाओगे। मनुष्य तो दूर स्वयं वृहस्पति भी उसके रूप का वर्णन नहीं कर सकते।' (श्लोक १८-१९)

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पवनंजय बोले, 'मित्र, विवाह का दिन तो बहुत दूर है और मेरा हृदय उसे देखने को उतावला हो रहा है। प्रियतमा को देखने के लिए उत्सुक पुरुष के लिए एक घण्टा भी एक दिन के समान होता है और एक दिन एक महीने के समान। अभी तो विवाह के तीन दिन बाकी हैं।' (श्लोक २०-२१)

प्रहसित बोला, 'मित्र, धैर्य धरो। आज रात को ही हम उसके प्रासाद में उपस्थित होंगे। हम उसे गुप्त रूप से देखेंगे।
(श्लोक २२)

तदनुसार वे लोग रात के समय आकाश पथ से अंजना सुन्दरी के प्रासाद में उपस्थित हुए और गुप्तचरों की भाँति आड़ में खड़े होकर अंजना सुन्दरी को देखने लगे। उस समय बसन्ततिलका नामक एक सखी अंजना से कह रही थी 'तूने अपने योग्य पवनंजय-सा पति प्राप्त किया है।' यह सुनकर दूसरी सखी मिश्रका बोली, 'सखी, विद्युत्प्रभ-से वर की बात न कर तू क्या दूसरे की प्रशंसा कर रही है। वह इसी जीवन में मुक्त होगा।' बसन्ततिलका बोली, 'हे मुग्धा, तू कुछ नहीं जानती—विद्युत्प्रभ-सा कम आयु वाला व्यक्ति क्या हमारी स्वामिनी के योग्य वर होता ?' मिश्रका बोली, 'तू बड़ी मन्दबुद्धि है। अमृत अल्प होने पर भी श्रेष्ठ है, विष अधिक होने पर भी किस काम का ?' (श्लोक २३-२८)

दोनों सखियों का यह वार्तालाप सुनकर पवनंजय सोचने लगे, विद्युत्प्रभ अंजना को अवश्य ही प्रिय है तभी वह द्वितीय सखी को उसकी प्रशंसा करने से रोक नहीं रही है। यह बात मन में आते ही अन्धकार में जैसे निशाचरों का उदय होता है उसी प्रकार उसके हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया। वह तत्क्षण तलवार निकाल कर यह कहते हुए आगे बढ़ा, 'जो विद्युत्प्रभ की प्रशंसा कर रही है

और जो सुन रही है दोनों को ही मैं इसी समय यमपुर भेज दूंगा ?' प्रहसित ने मित्र को हाथ पकड़ कर रोक लिया। बोला, 'क्या तुम नहीं जानते स्त्री अपराधिनी होने पर भी गाय की भाँति अवध्य है। फिर अंजना सुन्दरी तो एकदम निरपराध है। वह सहज लज्जावश ही अपनी सखी को रोक नहीं सकी।' (श्लोक २९-३३)

प्रहसित द्वारा रोक दिए जाने पर वे दोनों पुनः आकाश पथ से अपने स्थान को लौट आए। पवनंजय को रात में नींद नहीं आई। समस्त रात्रि जागते हुए दुःखित हृदय से नाना प्रकार की चिन्ता करने लगा। (श्लोक ३४)

दूसरे दिन सुबह उसने प्रहसित से कहा, 'मित्र, ऐसी स्त्री से विवाह करना व्यर्थ है। कारण सामान्य सेवक भी यदि विरक्त हो तो वह आपत्ति का कारण होता है। फिर विरक्त पत्नी का तो कहना ही क्या ? अतः चलो हम इस कन्या का परित्याग कर स्वनगर को लौट जाएँ। कारण जो खाद्य स्वयं को अच्छा नहीं लगे वह कितना ही स्वादिष्ट क्यों न हो मुझे उससे क्या ?'

(श्लोक ३५-३६)

ऐसा कहकर पवनंजय जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। प्रहसित ने उसको पकड़कर रखा और समझाने लगा। 'जिस कार्य को करेंगे यह कहकर स्वीकार कर लिया जाता है उस कार्य को पूर्ण किए बिना परित्याग करना महापुरुषों को शोभा नहीं देता। फिर अनुलंघ्य गुरुजनों ने जिसे स्वीकार कर लिया उसका उल्लंघन कर सकोगे ? गुरुजन यदि अर्थ के विनिमय में या ऐसे ही किसी को दे दें तो भी सत्पुरुषों के लिए वही प्रमाण अथवा मान्य है। इसके लिए कोई दूसरी राह नहीं होती। फिर इस विषय में अंजना सुन्दरी का तो किंचित्-मात्र भी दोष नहीं है। मेरे मित्र का हृदय तो उस पर इस प्रकार दोष का आरोप करके ही दूषित हो गया है। तुम्हारे और उसके माता-पिता प्रख्यात हैं अतः स्वेच्छाचारी होकर यदि तुम चले जाओगे तो उन्हें लज्जित होना होगा। यह क्यों नहीं सोचते ?'

(श्लोक ३७-४१)

प्रहसित की बात सुनकर हृदय में शल्य रहते हुए भी पवनंजय वहाँ रह गए। (श्लोक ४२)

निश्चित दिन अंजना सुन्दरी और पवनञ्जय का विवाह हो

गया। खूब धूमधाम हुआ। यह विवाहोत्सव दोनों ओर के माता-पिता के लिए कमल के लिए चन्द्र की भांति आह्लादकारी हुआ। महेन्द्र द्वारा पूजित प्रह्लाद स्वजनों सहित वर-वधू को लेकर सानन्द स्वनगरी को लौट गया। वहां उसने अंजना सुन्दरी के लिए सात मंजिलों वाला एक प्रासाद दिया। देखकर लगा कि मानो स्वर्ग का विमान ही पृथ्वी पर अवतरित हुआ है; किन्तु पवनञ्जय ने अंजना सुन्दरी की ओर देखा तक नहीं, न ही उसने बात की। कारण, मानी पुरुष अपना अपमान ऐसे ही नहीं भूल जाता। चन्द्र-हीन रात्रि की भांति पवनञ्जयहीन अंजना अश्रुजल में डूबकर

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अस्वस्थ-सी दिन व्यतीत करने लगी। पर्यंक पर सोयी अंजना को बार-बार पार्श्व बदलते हुए एक रात्रि एक वर्ष-सी प्रतीत होने लगी। अनन्यहृदया वह कमलमुखी अपने स्वामी का चित्र हृदय में धारण कर किसी प्रकार दिन व्यतीत करने लगी। उसकी सखियों के बार-बार मीठी बातें बोलने पर भी हेमन्त ऋतु में जिस प्रकार कोयल नहीं बोलती उसी प्रकार वह अपना मौन भंग नहीं करती।
(श्लोक ४३-५०)

इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत होने पर एक दिन रावण का दूत आकर प्रह्लाद से बोला—'दुर्मति वरुण राक्षसपति रावण के प्रति वैर रखता है और उनका आधिपत्य स्वीकार नहीं करता। उसे आधिपत्य स्वीकार करने को कहने पर अपने भुजदण्ड दिखाकर कहता है—'कौन है यह रावण? वह मेरा क्या कर सकता है? मैं इन्द्र या वैश्रवण नहीं हूं, न ही नलकूवर, सहस्रांशु, मरुत्, यम या कैलासगिरि। मैं वरुण हूं। देवाधिष्ठित चक्ररत्न पर यदि वह गर्वित है तो यहां आकर अपनी शक्ति प्रदर्शित करे। उसके चिरकाल संचित गर्व को मैं क्षण भर में नष्ट कर दूंगा।' (श्लोक ५१-५६)

'यह सुनकर कुपित रावण ने युद्ध छेड़ दिया और समुद्र जिस प्रकार तट पर स्थित पर्वत को घेर लेता है उस प्रकार उसके नगर को घेर लिया है। इस पर वरुण भी क्रुद्ध होकर राजीव और पुण्डरीक नामक पुत्रों सहित नगर से बाहर निकला और युद्ध करने लगा। वरुण के वीर पुत्र महायुद्ध कर खर और दूषण को बांधकर अपने नगर में ले गए। इससे राक्षस सेना छत्रभंग हो गई। इस जय से कृतार्थ होकर वरुण भी अपने नगर को लौट गया है।

इसलिए रावण ने प्रत्येक विद्याधर राजा के पास दूत भेजा है। मैं भी आपके पास आया हूं।' (श्लोक ५७-६१)

दूत की बात सुनकर प्रह्लाद जब रावण की सहायता के लिए जाने की तैयारी करने लगे तब पवनञ्जय उनके पास आए और बोले—'पिताजी, आप यहीं रहें। मैं जाकर रावण की इच्छा पूरी करूंगा। मैं भी तो आपका ही पुत्र हूं।' इस भांति आग्रहपूर्वक पिता की सम्मति लेकर सबसे विदा होकर पवनञ्जय यात्रा के लिए प्रस्तुत हुए। अंजना पति की युद्ध-यात्रा की खबर सुनकर उत्कण्ठित हुई और जिस प्रकार आकाश से देवी उतरती है उसी प्रकार प्रासाद शिखर से नीचे उतरी। वह द्वार के निकट स्तम्भ का सहारा लिए पुतली की तरह खड़ी होकर व्याकुल हृदय और निर्निमेष नेत्रों से राह देखती रही। (श्लोक ६२-६६)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पवनञ्जय ने जाते समय अंजना को निकट से देखा। वह प्रतिपदा के चन्द्र की तरह क्षीण, द्वार के निकट स्तम्भ का आश्रय लिए निर्निमेष राह देखती हुई खड़ी थी। इधर-उधर बिखरे रूखे केशों से उसका ललाट ढंका हुआ था। शिथिल भुजलताएँ उसके नितम्बों की ओर लटकी हुई थीं। ताम्बूलरागहीन उसके अधर फीके पड़ गए थे, अश्रुजल से उसका गण्डस्थल सिक्त था। नेत्रों में काजल भी नहीं था। (श्लोक ६७-६९)

पवनञ्जय उसे देखकर मन ही मन सोचने लगे, यह दुष्टा कितनी निर्लज्जा और निर्भीक है। मैंने तो इसे पहले ही पहचान लिया था। माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन न हो मात्र इसलिए इससे विवाह कर लिया था। (श्लोक ७०-७१)

पवनञ्जय जब इस प्रकार सोच रहे थे तभी हाथ जोड़े अंजना आगे आकर उनके पैरों में गिर पड़ी और बोली—'स्वामी! आप सबसे मिले, सबसे बोले; किन्तु मेरी तो खबर भी नहीं ली। फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि आप मुझे भूल मत जाइएगा। आपकी यात्रा सुखकर हो, कार्य सिद्ध कर आप शीघ्र लौट आएँ।' (श्लोक ७२-७३)

सच्चरित्रा दीन सती अबला की इस प्रार्थना का कोई उत्तर दिए बिना ही वहां से विजय के लिए निकल पड़े। (श्लोक ७४)

पतिकृत अवज्ञा से और दुःखी होकर पति-वियोग में विधुरा

अंजना किसी प्रकार अपने कक्ष में लौटी और जलभेदित नदी तट की तरह जमीन पर गिर पड़ी। (श्लोक ७५)

पवनञ्जय वहां से आकाश-पथ द्वारा मानस सरोवर के तट पर आए। सन्ध्या हो जाने के कारण रात्रि वहीं व्यतीत करने का निश्चय कर एक प्रासाद का निर्माण किया। विद्याधरों की विद्या सभी मनोरथ पूर्ण करने में सक्षम होती है। (श्लोक ७६-७७)

मानस सरोवर के तट पर स्व-पर्यंक पर लेटे पवनञ्जय ने एक प्रिय वियोग से पीड़ित चक्रवाकी को देखा। वह पूर्व संगृहीत मृणाल लता को मुँह नहीं लगा रही थी। जल शीतल था फिर भी वह उसका स्पर्श नहीं कर रही थी। मानो उसके लिए वह ऊष्ण हो गया था। चन्द्रकिरण भी मानो अब उसके लिए अग्नि वर्षण कर रही हो ऐसी दुःखदायी हो गई। अतः वह करुण स्वर में केवल क्रन्दन कर रही थी। (श्लोक ७८-८०)

चक्रवाकी की यह दशा देखकर पवनञ्जय सोचने लगे—ये चक्रवाकियां समस्त दिन ही पति के साथ रहती हैं। उसका विच्छेद केवल रात्रि में ही होता है। फिर भी इस अल्प वियोग को सह नहीं पा रही है, फिर विवाह कर मैंने जिसे त्याग दिया—पर-स्त्री की तरह मैंने जिससे बात तक नहीं की, जिसकी खोज खबर भी नहीं ली, नहीं जानता वह पर्वत-से इस दुःख को सहन कर कैसे बची हुई है ? धिक्कार है मुझसे अविवेकी को ! मैंने उसे अपमानित किया—वह निश्चय ही मर जाएगी। तब उसकी हत्या के पाप के कारण मैं किसी को मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहूंगा।

(श्लोक ८१-८४)

तब पवनञ्जय ने स्वमित्र प्रहसित को बुलाकर सारी बातें कहीं। कारण, मित्र के अतिरिक्त हृदय की बात और किससे कही जा सकती है ? (श्लोक ८५)

प्रहसित बोला—'बहुत दिनों के पश्चात् ही सही; किन्तु तुम्हें अपनी भूल मालूम हुई यह बहुत अच्छा है; किन्तु वह वियोगिनी सारस पक्षिणी की भांति जीवित भी है या नहीं कौन जाने ? बन्धु, यदि वह जीवित है तो तुम अभी जाकर उसको आश्वस्त करो। तुम तुरन्त उसके पास जाओ, उसे सान्त्वना दो और उसकी आज्ञा लेकर विजय के लिए पुनः यहां लौट आओ।' (श्लोक ८६-८७)

उनके इच्छानुरूप समान-विचारशील मित्र की प्रेरणा से पवनञ्जय मित्र सहित आकाश-पथ से अंजना सुन्दरी के प्रासाद में गए और दरवाजे की आड़ में रहे। पहले प्रहसित ने अंजना के कक्ष में प्रवेश किया। उसने देखा—अल्प जल में रही मछली की तरह अंजना बिछौने पर पर पड़ी छटपटा रही थी। कमलिनी जैसे हिम से पीड़ित होती है उसी भांति वह चन्द्र-ज्योत्स्ना से पीड़ित हो रही थी। हृदय के उत्ताप से हार के मोती गल-गल कर गिर रहे थे। दीर्घ निःश्वास के कारण उसकी अलकावली बिखरी हुई थी। असहाय पड़ी वह हाथों को इधर-उधर फेंक रही थी। फलतः कंकण की मणियां टूटने लग गई थी। उसकी सखी बसन्ततिलका उसे धैर्य रखने को कह रही थी; किन्तु उसके नेत्रों की दृष्टि और हृदय शून्य होने के कारण वह काष्ठ-पुत्तलिका-सी लग रही थी।

(श्लोक ८८-९३)

व्यंतर की भांति प्रहसित को सहसा कक्ष में प्रवेश करते देख अंजना भयभीत हो गई। फिर भी साहस संचय कर बोल उठी—'तुम कौन हो? पर-पुरुष होकर तुम यहां क्यों आए हो? तुम यहां से तुरन्त बाहर निकल जाओ।' फिर बसन्ततिलका की ओर देख कर बोली—'तू इसका हाथ पकड़कर बाहर निकाल दे। मेरे कक्ष में मेरे पति पवनञ्जय के अतिरिक्त कोई भी आने का अधिकारी नहीं है। तू खड़ी-खड़ी क्या देख रही है? इसे शीघ्र यहां से बाहर निकाल दे।'

(श्लोक ९४-९७)

अंजना की बात सुनकर प्रहसित उसे प्रणाम कर बोला—'दीर्घ दिनों के पश्चात् उत्कण्ठित होकर पवनञ्जय के समागम की अपनी शुभेच्छा प्रकट कर रहा हूं। कामदेव के मित्र जिस प्रकार बसन्त है उसी प्रकार मैं पवनञ्जय का मित्र प्रहसित हूं। निश्चय जानिए जब मैं आया हूं तो पवनञ्जय भी आया है।'

(श्लोक ९८-९९)

प्रहसित की बात सुनकर अंजना बोली – 'प्रहसित, भाग्य ने पहले से ही मुझे हास्यास्पद बना रखा है अब तुम और बना रहे हो। यह उपहास का समय नहीं है; किन्तु इसमें किसी का क्या दोष? सब कुछ मेरे कर्म-दोष से ही घटित हुआ है। यदि भाग्य ही मुझ पर प्रसन्न होता तो ऐसे कुलीन पति मेरा परित्याग क्यों

करते ? आज बाईस वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी न जाने क्यों मेरे प्राण नहीं निकलते ?' (श्लोक १००-१०२)

उसकी ऐसी बात सुनकर उसके दुःख के कारणरूप पवनञ्जय ने कक्ष में प्रवेश किया और वाष्पसिक्त कण्ठ से बोले—'प्रिये ! मैं मूर्ख होकर भी स्वयं को महाज्ञानी समझ रहा था। निर्दोष पत्नी को सदोष समझकर विवाह के पश्चात् ही उसका परित्याग कर दिया। मेरे ही कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। सम्भवतः विरह में तुम्हारी मृत्यु ही हो जाती; किन्तु मेरे भाग्यवश ही तुम जीवित हो।' (श्लोक १०३-१०५)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इस प्रकार कहते हुए अपने पति को देखकर अंजना खड़ी हुई और पर्यंक पर भार देकर खड़ी रही। हस्ती जिस प्रकार सूंड से लता को वेष्टित करता है उसी प्रकार पवनञ्जय ने अंजना को वेष्टित कर पर्यंक पर बैठाया और बोले—'प्रिये! मुझसे क्षुद्र व्यक्ति को, जिसने तुम-सी निरपराध पत्नी को सताया, क्षमा करो।' (श्लोक १०६-१०८)

पवनञ्जय का कथन सुनकर अंजना बोली—'नाथ ! आप ऐसी बात मुंह पर न लाएँ। मैं तो चिरकाल से आपकी दासी हूं। एतदर्थ मुझसे क्षमा-याचना करना आपके लिए अनुचित है।' (श्लोक १०९)

तत्पश्चात् बसन्ततिलका और प्रहसित कक्ष से बाहर निकल गए। कारण, पति-पत्नी के एकान्त-मिलन के समय विवेकशील व्यक्ति उस स्थान का परित्याग कर देते हैं। (श्लोक ११०)

तदुपरान्त पवनञ्जय और अंजना स्वच्छन्द यौवन-सुख का भोग करने लगे। रति-रभस में वह रात्रि उनके लिए एक मुहूर्त में व्यतीत हो गई। सुबह का प्रकाश देखते ही पवनञ्जय बोले—'प्रिये, मैं विजय के लिए प्रस्थान करता हूं। यदि गुरुजन जान जाएँगे कि मैं लौटकर आया हूं तो अच्छा नहीं होगा। तुम मन में कोई खेद नहीं रखो। मैं रावण का कार्य सिद्ध कर शीघ्र ही लौट रहा हूं। तब तक अपनी सखी के साथ सुखपूर्वक समय व्यतीत करो।' (श्लोक १११-११३)

अंजना बोली—'आप जैसे वीर के लिए यह कार्य सिद्ध ही है, समझ लीजिए। यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो कार्य-

सिद्धि के पश्चात् तुरन्त लौट आएँ। तदुपरान्त मैंने आज ही ऋतु स्नान किया है। अतः यदि मैंने गर्भधारण कर लिया तो आपकी अनुपस्थिति के कारण दुर्जन मेरी निन्दा करेंगे।' (श्लोक ११४-११५)

पवनञ्जय बोले 'मानिनि, मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। मेरे लौट आने पर कोई नीच भी तुम्हारी निन्दा नहीं कर सकेगा। फिर भी मैं आया था इसके प्रमाण रूप मेरी नामाङ्कित मुद्रिका तुम्हें दे रहा हूं। यदि ऐसी परिस्थिति आ ही जाय तो तुम उनको यह मुद्रिका दिखा देना।' (श्लोक ११६-११७)

ऐसा कहकर पवनञ्जय प्रहसित सहित आकाश-पथ से स्व-सैन्य में लौट गए। वहां से देवों की तरह आकाश-पथ से ही लङ्का पहुंचे। लङ्का में जाकर उन्होंने रावण को प्रणाम किया। तरुण सूर्य-से कान्तिमान रावण और पवनञ्जय अपनी-अपनी सेना लेकर वरुण के साथ युद्ध करने के लिए पाताल में प्रविष्ट हुए। (श्लोक ११८-१२०)

अंजना सुन्दरी के उसी दिन गर्भ रह गया। फलतः उनके सारे अवयव सुन्दर हो गए। कपोल पाण्डुवर्ण हो गए, स्तनाग्र श्याम वर्ण। गति मन्द हो गई, नेत्र विशेष रूप से विशाल और उज्ज्वल। इसके अतिरिक्त गर्भ के अन्य लक्षण भी उसकी देह पर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे। यह देखकर उसकी सासू तिरस्कारपूर्वक बोली, 'ओ पापिनि! उभय कुल को कलङ्कित कर तूने यह क्या किया? पति जब विदेश में है तब तू गर्भिणी कैसे हो गई? मेरा पुत्र तुझसे घृणा करता था। मैं सोचती थी वह अज्ञानी है जो तुझे दूषित समझता है। मैं तो आज तक नहीं जान पायी कि तू व्यभिचारिणी है।' (श्लोक १२१-१२५)

इस प्रकार तिरस्कार होने पर अंजना ने अश्रु प्रवाहित कर पति समागम की साक्षी रूप वह मुद्रिका दिखाई। उसे देखकर केतुमती और जल उठी और लज्जावनत अंजना को घृणा भाव से बोली—'ओ दुष्टा, तेरा पति तेरा नाम तक नहीं लेता था। उसके साथ तेरा समागम कैसे हो सकता है? व्यभिचारिणी स्त्रियां लोगों को ठगने के ऐसे कितने ही उपाय जानती हैं। स्वच्छन्दचारिणी! तू क्यों यहीं खड़ी है? अभी तुरन्त मेरा गृह छोड़कर पितृगृह चली जा। तुझ जैसी स्त्री के लिए मेरे घर में कोई जगह नहीं है।' (श्लोक १२६-१२९)

इस प्रकार तिरस्कार कर केतुमती ने निर्दयी राक्षसी की तरह अपने अनुचरों को आदेश दिया—इसको ले जाकर इसके पितृगृह छोड़ आओ। (श्लोक १३०)

अनुचर अंजना और बसन्ततिलका को यान में बैठाकर महेन्द्र नगर ले गए और नगर से बाहर उन्हें यान से उतार कर अश्रुसिक्त नेत्रों से माँ की तरह अंजना को प्रणाम कर उससे क्षमा माँगी और चले गए। कहा भी गया है, उत्तम सेवक स्वामी के परिवार के साथ स्वामी के जैसा ही व्यवहार करते हैं।

(श्लोक १३१-१३२)

उसी समय सूर्य अस्त हो गया। मानो अंजना का दुःख देख न पा सकने के कारण वह अस्त हो गया हो। सचमुच, सत्पुरुष सज्जनों की विपत्ति नहीं देख सकते। श्लोक १३३)

जैसे-जैसे रात गहरी होती गई, उल्लू घर्र-घर्र शब्द करने लगे, शृगाल चिल्लाने लगे, सिंह गर्जन करने लगे, शिकारी श्वापद दरिन्द आदि विचित्र शब्द करने लगे। पिंगल साँप राक्षसों के वाद्य यन्त्र की भाँति हिस-हिस शब्द करने लगे। इन शब्दों को सुनकर मानो वह कुछ नहीं सुन रही है, बहरी हो गई है, इस प्रकार बसन्ततिलका सहित अंजना ने उस भयङ्कर रात्रि को वहीं जागते हुए व्यतीत किया। (श्लोक १३४-१३५)

सवेरा होते ही वह दीन अबला लज्जा से संकुचित बनी परिवार रहित भिक्षु की भाँति पितृगृह के द्वार पर जा खड़ी हुई। द्वार रक्षकों ने बसन्ततिलका से सब कुछ अवगत कर राजा महेन्द्र के पास जाकर यथावत् वर्णन किया। (श्लोक १३६-१३७)

सब कुछ सुनकर राजा महेन्द्र का मस्तक झुक गया। उनका मुख क्रमशः काला होने लगा। वे सोचने लगे कर्म विपाक की तरह स्त्रियों का चरित्र भी अचिन्त्य है। कुलटा अजना मेरे कुल को भी कलङ्कित करने के लिए यहाँ आई है। काजल का एक कण भी पूरे वस्त्र को दूषित कर देता है। (श्लोक १३८-१३९)

राजा महेन्द्र जब इस प्रकार सोच रहे थे तब उनका नीतिवान पुत्र प्रसन्नकीर्ति अप्रसन्न होकर बोला, 'पिताजी, उस दुष्टा को तुरंत यहाँ से बिदा कर दीजिए। उसने हमारे कुल को कलङ्कित किया है। सर्प द्वारा काटी हुई अंगुली को क्या बुद्धिमान काटकर नहीं

फेंक देते ?' (श्लोक १४०-१४१)

उसी समय महोत्साह नामक मन्त्री बोला, 'राजन्, ससुराल में दुःख मिलने पर कन्याएँ पितृगृह में आश्रय लेती हैं। यह भी तो हो सकता है सास ने उस पर कुपित हो जाने के कारण मिथ्या दोषारोपण कर उसे घर से निकाल दिया हो। अतः जब तक दोषी या निर्दोष प्रमाणित नहीं हो जाती तब तक गुप्त रूप से उसका पालन करें। अपनी कन्या समझ कर उस पर कुछ दया करें।'
(श्लोक १४२-१४४)

राजा बोले, सासुएँ तो ऐसी ही होती हैं; किन्तु बहुओं का ऐसा चरित्र कहीं नहीं मिलता। मैंने यह भी पहले सुना था कि पवनंजय अंजना को चाहते नहीं हैं। अजना पर उनका स्नेह नहीं था। तब पवनंजय द्वारा वह गर्भ धारण कैसे कर सकती है ? अतः वह सर्वथा दोषी है, उसकी सास ने ठीक ही किया है कि उसको घर से निकाल दिया। यहाँ से भी उसे तुरन्त निकाल दो। मैं उसका मुँह भी देखना नहीं चाहता। (श्लोक १४५-१४७)

राजा का यह आदेश प्राप्त कर द्वाररक्षकों ने अंजना को वहाँ से चले जाने को कहा। अंजना दीन बनी रोते-रोते वहाँ से चली गई। लोग दुःखी मन से उसकी दुर्दशा देखने लगे।
(श्लोक १४८)

भूख-प्यास से पीड़ित, क्लान्त, दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई, अश्रु प्रवाहित करती हुई, पाँवों में काँटे चुभ जाने के कारण जो रक्त बह रहा था, उससे धरती को आरक्त करती हुई अंजना धीरे-धीरे जा रही थी। दो कदम चलते न चलते वह गिर-गिर जा रही थी, ऐसे समय वह किसी वृक्ष का सहारा लेकर विश्राम कर लेती। इस भाँति दिशा-विदिशाओं को क्रन्दन से गुंजित करती हुई अंजना सखी के साथ जा रही थी; किन्तु वह जिस किसी भी ग्राम या नगर में गई सभी उसे भगाने लगे क्योंकि राजपुरुषों ने पहले ही जाकर उसको आश्रय न देने की सूचना सबको दे दी थी। इसलिए उसे कहीं भी रहने का स्थान नहीं मिला। (श्लोक १४९-१५१)

इसी प्रकार चलती हुई अंजना ने एक महावन में प्रवेश किया। वहाँ पर्वत श्रेणियों से घिरे एक वृक्ष के नीचे बैठकर वह विलाप करने लगी—'हाय, मैं कितनी हतभागिन हूं कि गुरुजनों ने

मेरे अपराध पर विचार किए बिना ही दण्ड दे दिया। सासू केतुमतीजी, आपने अच्छा ही किया, कुल को कलङ्कित होने से बचा लिया। पिताजी, आपने भी सम्बन्धियों के भय से ठीक ही विवेचना की। दुःखी लड़कियों के लिए माँ आश्रय रूप होती है; किन्तु माँ, तुमने भी पिताजी की इच्छानुसार मेरी उपेक्षा की। भाई, तुम्हारा तो पिताजी के रहते दोष ही क्या है? हे प्रिय, आपके दूर रहने से सभी मेरे शत्रु हो गए हैं। सर्वथा पतिहीना एक दिन भी जीवित नहीं रहती; किन्तु अभागियों में प्रमुख मैं जीवित हूं। (श्लोक १५२-१५७)

इस प्रकार विलाप करती हुई अंजना उसकी सखी उस गुफा में ले गई जहाँ चारण मुनि अमितगति ध्यान कर रहे थे। चारण मुनि को नमस्कार कर विनीतभाव से वे उनके सम्मुख बैठ गईं। ध्यान समाप्त होने पर दाहिना हाथ उठाकर मुनि ने मनोरथपूर्ण और कल्याणकारी, आनन्द प्रदान करने वाली धारा की तरह 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया।' (श्लोक १५८-१६०)

तब बसन्ततिलका ने उन्हें पुनः प्रणाम कर अंजना की सारी दुःख कथा सुनाई। तदुपरान्त पूछा—'भगवन्! अंजना के गर्भ में कौन आया है?' मुनि ने उत्तर दिया—

'इस भरत क्षेत्र में मन्दर नामक एक नगर है। वहां प्रियनन्दी नामक एक वणिक रहता था। उसकी जया नामक पत्नी से चन्द्र-सा कल्पनिधि और दम (इन्द्रिय दमन) प्रिय दमयन्त नामक एक पुत्र हुआ। एक बार वह उद्यान में खेलने गया। वहां उसने एक स्वाध्यायलीन एक मुनिराज को देखा। उसने उनसे शुद्ध मन से धर्म श्रवण किया। प्रतिबोध पाकर उसने सम्यक्त्व के विविध प्रकार के नियम ग्रहण किए। तभी से वह मुनियों के योग्य-दान देने लगा। वह तप और संयम में ही एकमात्र निष्ठा रखता था। अतः कालक्रम से मृत्यु के पश्चात् परमार्द्धिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ। वहां से च्युत होकर वह जम्बूद्वीप के मृगाङ्कपुर के राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी प्रियंगु लक्ष्मी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम रखा गया सिंहचन्द्र। सिंहचन्द्र जैन धर्म स्वीकार और पालन कर मृत्यु के पश्चात् देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहां से च्युत होकर वैताढ्य पर्वत के वरुण नामक नगर के राजा सुकण्ठ की रानी

कणकोदरी के गर्भ में आया। जन्मग्रहण करने के पश्चात् इसका नाम रखा गया सिंहवाहन। सिंहवाहन ने बहुत दिनों तक राज्य करने के पश्चात् विमलनाथ प्रभु के तीर्थ में लक्ष्मीधर मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। दुष्कर तप कर मृत्यु के पश्चात् वह लान्तक देवलोक में देव हुआ। वही वहां से च्यवकर अब तुम्हारी सखी अजना के गर्भ में आया है। यह पुत्र गुणों की खान, महापराक्रमी, विद्याधरों का राजा, चरम शरीरी और विमलमना होगा।' (श्लोक १६१-१७३)

'अब तुम अपनी सखी के पूर्वजन्म की कथा सुनो—कनकपुर नगर में महापराक्रमियों के शिरोमणि कनकरथ नामक एक राजा थे। उनके कनकोदरी और लक्ष्मीवती नामक दो रानियां थीं। उनमें लक्ष्मीवती श्रद्धालु श्राविका थी। वह गृह-चैत्य में रत्नमय जिन-प्रतिमा स्थापित कर सुबह-शाम दोनों समय उसकी पूजा करती, वन्दना करती। कनकोदरी उससे ईर्ष्या रखती। अतः एक दिन लक्ष्मीवती की जिन-प्रतिमा चोरी कर कूड़े में उठाकर फेंक दी। उसी समय जयश्री नामक एक आर्या विहार करती हुई वहां आयीं। उन्होंने कनकोदरी को जिन-प्रतिमा कूड़े में फेंकते देख लिया था। वे बोलीं—'तुमने यह क्या किया? भगवान् की प्रतिमा को वहां फेंक कर तुमने अपनी आत्मा को संसार के अनेक दुःखों का कारण बना लिया।' (श्लोक १७४-१७९)

'साध्वी श्री के यह वचन सुनकर कनकोदरी को पश्चाताप हुआ। उसने तत्क्षण प्रतिमा को वहां से उठाकर, शुद्ध कर, क्षमा-याचना करते हुए जहां से उस प्रतिमा को लाई थी वहीं ले जाकर रख दिया। उस दिन से वह सम्यक्त्व धारण कर जैन धर्म का पालन करने लगी। अनुक्रम से आयुष्य पूर्ण होने पर वह सौधर्म देवलोक में देवी रूप में उत्पन्न हुई। वहां से च्युत होकर महेन्द्र राजा की कन्या अंजना ने तुम्हारी सखी रूप में जन्म ग्रहण किया है। पूर्व जन्म में अंजना ने जिन-प्रतिमा को अशुद्ध स्थान में फेंक दिया इसलिए उसे ऐसा कष्ट प्राप्त हुआ है। तुमने भी उस जन्म में दुष्कर्म में उसकी सहायता की थी, अनुमोदना की थी, अतः इस समय तुम भी इसके साथ-साथ दुःख पा रही हो; किन्तु उस दुष्ट कर्म का फल अब प्रायः शेष हो गया है। अब तुम लोग इस भव में सुख प्रदान करने वाला जैन धर्म ग्रहण करो। शीघ्र ही अंजना का

मामा अकस्मात् यहां आकर तुम लोगों को ले जाएगा। थोड़े दिनों पश्चात् ही पति से मिलन होगा। (श्लोक १८०-१८५)

इस प्रकार अंजना को उसका पूर्व भव सुनाकर सखी सहित उसको जैन धर्म में सुस्थित कर मुनि गरुड़ की भांति आकाश में उड़ गए। इसी बीच उन्होंने वहां एक सिंह को आते देखा। सिंह अपनी पूँछ जमीन पर पछाड़ रहा था जैसे वह धरती को विदीर्ण कर देगा। अपनी गर्जना से वह दिशाओं को पूरित कर रहा था। हाथी के खून से लिप्त वह बड़ा विकट लग रहा था। उसके नेत्र दीप की भांति जल रहे थे। उसकी डाढ़ें वज्र की तरह दृढ़ थीं। उसके दांत करात की भांति तीक्ष्ण और क्रूर थे। उसकी केशर अग्नि शिखा की तरह उद्दीप्त थी। उसके नाखून लोहे की कीलों की तरह तीक्ष्ण थे। वक्षदेश पर्वत-शिला की भांति कठोर था। उसे अपनी ओर आते देखकर नेत्र नीचे कर वे कांपने लगीं। लग रहा था मानो वे धरती में समा जाना चाहती हैं। भयभीत हरिणी की तरह वे स्तब्ध हो गईं। उसी समय उस गुफा के अधीश्वर मणिचूल नामक यक्ष ने शरभ रूप धारण कर उस सिंह को मार डाला। फिर स्व-स्वरूप धारण कर अंजना और बसन्ततिलका को प्रसन्न करने के लिए पत्नी सहित अर्हत् का गुणगान करने लगा। अतः अंजना और बसन्ततिलका ने उस स्थान का परित्याग नहीं किया। उसी गुफा में मुनि सुव्रत स्वामी की प्रतिमा स्थापित कर उनकी पूजा करते हुए वे दिन व्यतीत करने लगीं। (श्लोक १८६-१९३)

यथा समय सिंहनी जैसे सिंह को जन्म देती है इसी प्रकार अंजना ने पदतल में वज्र, अंकुश और चक्र चिह्न युक्त एक पुत्र को जन्म दिया। बसन्ततिलका ने हर्षित होकर अग्निजलादि लाकर उसका प्रसूति कर्म सम्पन्न किया। पुत्र को गोद में लेकर दुःखित अंजना अश्रु प्रवाहित कर यहां तक कि उस गुफा को क्रन्दनमय कर विलाप करने लगी—'हाय पुत्र, इस घोर वन में तेरा जन्म होने के कारण मैं किस प्रकार से तेरा जन्मोत्सव करूँ ?' (श्लोक १९४-१९७)

उस विलाप से आकृष्ट होकर प्रतिसूर्य नामक एक विद्याधर उनके निकट आया और मधुर कण्ठ से उनके दुःख का कारण पूछा। सखी बसन्ततिलका ने अश्रुसिक्त कण्ठ से अंजना के विवाह से लेकर पुत्र जन्म तक की कथा सुनाई। वह विवरण सुनकर उस विद्याधर के

नेत्रों में अश्रु उमड़ आए। बोला—'वत्से, मैं हनुपुर के राजा चित्रभानु तथा रानी सुन्दरीमाला का पुत्र हूं, तुम्हारी माँ मानसवेगा के भाई चित्राम का मैं अनुज हूं। सौभाग्यवश ही मैं तुम्हें जीवित देख सका हूं। अब तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी होगी।'

(श्लोक १९८-२०१)

अपने मामा को देखकर अंजना अधिक रोने लगी। स्वजन-मित्र के मिलने पर प्रायः दुःख दुगुना हो जाता है। उसे रोते देख प्रतिसूर्य ने विभिन्न प्रकार से उसे आश्वसित कर शान्त किया। तदुपरान्त उनके साथ आए नैमित्तिक से जातक के सम्बन्ध में पूछा। नैमित्तिक ने कहा, 'यह बालक ऐसे लग्न में जन्मा है जबकि समस्त ग्रह शुभ और बलवान हैं। फलतः यह महापुण्यवान राजा होगा और इस जीवन में ही मुक्त होकर सिद्ध पद प्राप्त करेगा। आज चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी है और वार रविवार है। सूर्य उच्च स्थान प्राप्त कर मेष राशि में अवस्थित है। चन्द्र मकर का होकर मध्यभवन में स्थित है। मङ्गल मध्यम होकर वृष राशि में आया है। बुध मध्यता से मीन राशि में बैठा है। गुरु उच्च स्थान प्राप्त कर्क राशि में प्रवेश कर रहा है, शनि भी मीन राशि में है। मीन लग्न का उदय हुआ है और ब्रह्म योग है। अतः इसकी जन्म कुण्डली सब प्रकार से शुभ है।' (श्लोक २०२-२०८)

तब प्रतिसूर्य बसन्ततिलका और अंजना को स्वविमान में बैठाकर अपने नगर को रवाना हुआ। विमान की छत पर एक रत्नमय झूमका लटक रहा था। उसको लेने की इच्छा से बालक माँ की गोद से उछला, उछलते ही वह विमान से नीचे पर्वत पर जा गिरा मानो आकाश से वज्र गिरा हो। उसके आघात से पर्वत चूर-चूर हो गया। पुत्र को विमान से गिरते देख अंजना चिल्लाकर रो उठी और छाती पीटने लगी। उसका क्रन्दन पर्वत गुफा में प्रतिध्वनित होकर ऐसा लगा मानो अंजना के साथ पर्वत भी रो रहा है। (श्लोक २०९-२१२)

प्रतिसूर्य तत्काल नीचे उतरा और अक्षत बालक को धरोहर रखे धन की भाँति अंजना को सौंप दिया। फिर मन की गति से वेगवान् उस विमान द्वारा वह अपने नगर पहुंचा। नगर आनन्दोत्सव में झूम उठा। अंजना को अन्तःपुर में भेज दिया

गया। अन्तःपुरिकाओं ने कुलदेवी की तरह उसकी पूजा की और सम्मान किया। (श्लोक २१३-२१५)

जन्म के पश्चात् वह पहले हनुपुर आया इसलिए प्रतिसूर्य ने जातक का नाम हनुमान रखा। विमान से गिरने पर उसके शरीर के आघात से पर्वत चूर-चूर हो गया था इसलिए उसका द्वितीय नाम श्रीशैल रखा गया। (श्लोक २१६-२१७)

उधर रावण की सहायतार्थं गए पवनंजय ने वरुण से सन्धि कर खर और दूषण को मुक्त किया। रावण भी सपरिवार लङ्का लौट गया। पवनंजय रावण की अनुमति लेकर स्व-नगर को लौट आए। पिता-माता को प्रणाम कर वे अंजना के महल गए; किन्तु ज्योत्स्नाहीन चन्द्र की तरह अंजनाहीन प्रासाद को देखकर दुःखी हुए। वहाँ की एक दासी से उन्होंने पूछा—'अंजन की तरह नेत्रों को परितृप्तकारी मेरी अंजना कहाँ है?' वह बोली, आपके युद्ध में जाने के कुछ दिनों पश्चात् अंजना को गर्भवती देखकर महारानी केतुमती ने उन्हें घर से निकाल दिया। उनकी आज्ञा से हिरणी की तरह भयभीत अंजना को अनुचरगण महेन्द्रनगर ले गए। वे दुष्ट उन्हें महेन्द्रनगर के निकट एक वन में छोड़ आए।'

(श्लोक २१८-२२५)

यह सुनकर कबूतर की तरह स्वप्रियतमा से मिलने को उत्सुक पवनंजय पवन वेग से अपने श्वसुरालय गए! वहाँ भी न देखकर एक दासी से पूछा—'मेरी पत्नी अंजना यहाँ आई थी क्या?' उसने उत्तर दिया, 'वह अपनी सखी बसन्ततिलका के साथ यहाँ आई थी; किन्तु, उस पर व्यभिचार का आरोप होने के कारण उनके पिता ने उन्हें निकाल दिया।' (श्लोक २२६-२२८)

यह सुनकर वज्राहत-से आहत पवनंजय ने वन में प्रवेश किया। अरण्य में पर्वतों में उसे खोजने लगे; किन्तु कहीं भी खोज न पाकर अन्त में शापभ्रष्ट देव की तरह स्वमित्र प्रहसित बोले, 'मित्र, तुम मेरे पिता से जाकर कहो सारी पृथ्वी खोज डालने पर भी अंजना को कहीं नहीं पाया। मैं फिर वन में जाकर उसे खोजता हूं। यदि मिली तो ठीक नहीं तो मैं अग्नि प्रवेश करूँगा।'

(श्लोक २२९-२३२)

पवनंजय के कहने से प्रहसित तत्काल आदित्यपुर गया और

केतुमती को सब कुछ कह सुनाया। यह सब सुनकर केतुमती के हृदय को ऐसा आघात लगा कि वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कुछ देर पश्चात् संज्ञा लौटने पर वह प्रहसित से बोली, 'हे कठोर-हृदय प्रहसित, मरने को उत्सुक अपने मित्र को वन में अकेला छोड़ कर तुम यहाँ कैसे आए? हाय! मुझ पापिनी ने बिना विचारे अंजना सी वास्तविक निर्दोष स्त्री को घर से प्रताड़ित कर कितना नीच कर्म बांधा है। उस पर मैंने मिथ्यादोष लगाया उसका फल तो मुझे अभी ही मिल गया। सचमुच अति उग्र पाप और पुण्य का फल मनुष्य को इस जीवन में ही मिलता है।' (श्लोक २३३-२३७)

रोती हुई केतुमती को किसी प्रकार शान्त कर राजा प्रह्लाद पवनंजय और अंजना की खोज करने निकले। उन्होंने अपने मित्र विद्याधर राजाओं के पास दूत भेजकर पवनंजय और अंजना की खोज करने को कहा, साथ ही साथ स्वयं भी अनेक विद्याधरों को साथ लेकर पुत्र और पुत्रवधू की खोज करते-करते भूतवन नामक अरण्य में पहुंचे। वहाँ उन्होंने पवनंजय को देखा। पवनंजय चिता प्रज्वलित कर उसके बगल में खड़े होकर बोल रहे थे—'हे वन देवताओ! मैं विद्याधर-राज प्रह्लाद का पुत्र हूं। मेरी पत्नी का नाम अंजना है। निर्दोष और सती होने पर भी विवाह के दिन से ही मुझ दुर्बुद्धि ने उसको यातनाएँ दीं। उसे अपमानित कर प्रभु के कार्य के लिए मैं युद्ध में गया। राह में देवयोग से मुझे सुबुद्धि आई। अतः वहाँ से रात्रि में उसके पास गया। उसके साथ स्वच्छन्द रूप से विहार किया। मैं आया था इसके प्रमाणस्वरूप मैंने उसे अपनी मुद्रिका दी और माता-पिता को बिना बताए मैं फिर लौट आया। वह उस दिन गर्भवती हो गई। मेरे दोष से मेरे माता-पिता ने उसे दूषित समझकर घर से प्रताड़ित कर निकाल दिया। नहीं जानता वह अभी कहाँ है? वह पहले भी निर्दोष थी अभी भी निर्दोष है; किन्तु मेरे दोष और अज्ञान के कारण न जाने वह किस दुर्दशा को प्राप्त हुई है। मुझे धिक्कार है! मुझ-से पति को धिक्कार है! मैंने सारी पृथ्वी खोज डाली; किन्तु भाग्यहीन को जैसे रत्नाकर समुद्र में भी रत्न नहीं मिलता उसी भांति मैं भाग्यहीन उसे कहीं नहीं पा सका। समस्त जीवन विरहानल में दग्ध होकर मैं बच नहीं सकूंगा। इसलिए आज

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

चिताग्नि में प्रवेश कर एक साथ जल रहा हूं। हे देवगण! तुम लोग यदि कहीं भी मेरी प्रिया को देखो तो कहना, तुम्हारा वियोग सहन न कर सकने के कारण तुम्हारा पति अग्नि में प्रवेश कर गया है।' (श्लोक २३८-२५०)

ऐसा कहकर धू-धू जलती हुई चिता में उन्होंने जैसे ही कूदना चाहा वैसे ही प्रह्लाद ने जिसने सब कुछ देखा था और सुना था उन्हें पकड़ लिया और छाती से लगा लिया। (श्लोक २५१-२५२)

पवनंजय चिल्लाते हुए बोल उठे, 'प्रिया के वियोग रूप पीड़ा की औषधि रूप मृत्यु में भी यह कैसा विघ्न? किसने मुझे शान्ति प्राप्त करने में बाधा दी है?' (श्लोक २५३)

अश्रु प्रवाहित करते हुए प्रह्लाद ने कहा, 'पुत्रवधू को निष्कासित करने को जिसने उपेक्षा की दृष्टि से देखा मैं वही तेरा पापी पिता हूं। हे वत्स, तुमने पहले एक विवेकहीन कार्य किया है और अब तुम बुद्धिमान होते हुए भी इस प्रकार का अविवेकपूर्ण कार्य मत करो। स्थिर हो। तुम्हारी पत्नी की खोज में मैंने हजारों विद्याधर राजाओं को नियुक्त किया है। वे जब तक नहीं लौटें तब तक प्रतीक्षा करो।' (श्लोक २५४-२५६)

प्रह्लाद ने जिन सब विद्याधरों को पवनंजय और अंजना के सन्धान में भेजा था उनमें से एक दल हनुपुर भी गया। उन्होंने प्रतिसूर्य और अंजना को यह संवाद दिया कि पवनंजय ने अंजना के वियोग में दुःखी होकर अग्नि प्रवेश की प्रतिज्ञा कर ली है।

(श्लोक २५७-२५८)

यह सुनकर किसी ने मानो उसे विषपान करा दिया हो इस प्रकार बार-बार 'हाय मैं मारी गई' चिल्लाती हुई अंजना मूर्च्छित हो गई। चन्दन जल के छींटों से और तालवृन्त से हवा करने पर वह कुछ देर पश्चात् संज्ञा लौट आने पर उठ बैठी, और दीन भाव से रोती हुई बिलाप करने लगी—'पतिव्रता स्त्रियां पतिहीन होने पर अग्नि में प्रवेश करती हैं। कारण बिना पति के उनका जीवन शून्य हो जाता है; किन्तु जो श्रीमंत हैं, जिनके उपभोग के लिए हजारों स्त्रियां हैं, उसके लिए एक पत्नी का शोक तो क्षणिक होना ही है। ऐसा होने पर भी वे क्यों अग्नि-प्रवेश करने जा रहे हैं? हे प्रिय, आपके क्षेत्र में यह अपवाद हुआ है? आप मेरे

वियोग में अग्नि प्रवेश कर रहे हैं और मैं आपके विरह में कितने दिनों से जीवित हूं। इसका मतलब है वे महान सत्त्वधारी हैं और मैं कम सत्त्वसम्पन्ना हूं। नीलमणि और कांच के टुकड़े में जो पार्थक्य है वही मुझ और आप में है। इसमें मेरे सास-श्वसुर और माता-पिता का कोई दोष नहीं है। मैं भाग्यहीना हूं। मेरे कर्मों के दोष से ही यह सब घटित हुआ है। (श्लोक २५१-२६५)

तब प्रतिसूर्य ने अंजना को समझाकर शान्त किया और हनुमान के साथ विमान में बैठाकर पवनञ्जय के संधान में निकल पड़े। वे भी पवनञ्जय को खोजते हुए भूतवन में आए। प्रहसित ने अश्रुसिक्त नयनों से उन्हें आते हुए देखा। उसने तुरन्त अंजना सहित प्रतिसूर्य के आगमन का सम्वाद प्रह्लाद और पवनञ्जय को दिया। प्रतिसूर्य और अंजना ने विमान से उतरकर दूर से ही प्रह्लाद को प्रणाम किया। निकट आते ही प्रह्लाद ने प्रतिसूर्य को आलिंगन में भर लिया। तदुपरान्त पौत्र हनुमान को गोद में लेकर हर्षोत्फुल्ल बने वे उनसे बोले—'हे भद्र प्रतिसूर्य, स्वकुटुम्ब सहित मैं दुःख-सागर में डूब रहा था, तुम्हीं ने हमको बचा लिया है। इसलिए मेरे समस्त कुटुम्ब और सम्बन्धियों में तुम्हीं प्रथम हो। तुम्हीं मित्र हो। परम्परागत वंश-वृक्ष की गौरव रूप सन्तति के लिए कारणभूता अपनी पुत्रवधू को जिसे बिना दोष के ही घर से प्रताड़ित कर दिया था उसकी रक्षा कर तुमने महान् कार्य किया है।' (श्लोक २६६-२७२)

पवनञ्जय अंजना को देखकर दुःख से उसी प्रकार निवृत्त हो गए जैसे समुद्र में ज्वार-भाटा शान्त हो जाता है। विरहाग्नि के प्रशमित होने से हृदय प्रफुल्ल हो उठा। समस्त विद्याधर राजाओं ने विद्याबल से आनन्द सागर को उच्छ्वसित करने वाला चन्द्ररूप महोत्सव किया। तदुपरान्त सभी आनन्दमना बने हनुपुर गए। आकाश-पथ से उनके विमान को जाते देखकर ऐसा लगा मानो नक्षत्रों की पंक्तियां प्रवाहित हो रही हैं। मानसवेगा सहित राजा महेन्द्र भी वहां आए। केतुमती और अन्यान्य परिजन भी वहां पहुंचे। आत्मीय परिजन और बन्धुओं के आने के कारण विद्याधर राजाओं ने मिलकर वहां पहले से भी विशाल उत्सव किया। तत्पश्चात् परस्पर एक दूसरे से विदा लेकर वे सब अपने-अपने नगर को लौट गए। पवनञ्जय अंजना और पुत्र हनुमान

सहित हनुपुर रह गए। (श्लोक २७३-२७८)

कुमार हनुमान पिता की इच्छानुसार पालित-पोषित होकर समस्त कलाओं व विद्याओं के अधिकारी हो गए। शेषनाग की तरह दीर्घ बाहुयुक्त, शस्त्रों के परिज्ञाता और सूर्य के समान तेजस्वी हनुमान क्रमशः यौवन को प्राप्त हुए। (श्लोक २७९-२८०)

उसी समय कोविदों में श्रेष्ठ पर्वत के समान रावण ने सन्धि में कुछ दोष निकालकर वरुण को पराजित करना चाहा। विद्याधर राजा आमन्त्रित होकर वैताढ्य गिरि-सी सेना लेकर उसकी सहायता के लिए प्रस्तुत होने लगे। पवनञ्जय और प्रतिसूर्य भी वहां जाने के लिए तैयार होने लगे। तब पर्वत तुल्य स्वाभिमानी हनुमान उनके निकट जाकर बोला—'हे पितृश्रेष्ठ! आप लोग यहीं रहें। मैं अकेला ही समस्त शत्रुओं को जीत लूंगा। तीक्ष्णास्त्र पास रहते हुए कौन बाहुओं द्वारा युद्ध करता है? बालक समझकर मेरे प्रति अनुकम्पा न दिखाएँ। कारण, हमारे कुल में उत्पन्न मनुष्यों का जब शौर्य दिखाने का समय आता है तब उन्हें आयु प्रमाण से नहीं देखा जाता।' (श्लोक २८१-२८५)

इस भांति बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने हनुमान को युद्ध में जाने की अनुमति दे दी। हनुमान का मस्तक चूमकर उन लोगों ने उसके जाने के मांगलिक कार्यों को सम्पन्न किया। दुर्जय पराक्रमी हनुमान बड़े-बड़े सामन्त, सेनापति और सैनिक सहित रावण के स्कन्धावार में उपस्थित हुए। हनुमान का आना रावण को ऐसा लगा मानो साक्षात् विजय ही वहां आकर उपस्थित हो गई। हनुमान ने रावण को प्रणाम किया। उसने स्नेहवश हनुमान को अपनी गोद में बैठा लिया। (श्लोक २८६-२८८)

रावण युद्ध के लिए वरुण की नगरी के बाहर उपस्थित हुआ। वरुण भी अपने सौ पुत्रों के साथ युद्ध करने के लिए नगर से बाहर आ गया। (श्लोक २८९)

युद्ध प्रारम्भ हुआ। वरुण के पुत्र रावण से युद्ध करने लगे और वरुण सुग्रीव आदि वीरों के साथ युद्ध करने लगा। महापराक्रमी रक्त चक्षु वरुण के पुत्रों ने जातिवान श्वान जैसे सूअर को घेर लेते हैं उसी प्रकार रावण को घेर लिया। (श्लोक २९०-२९१)

यह देखकर हस्तीयूथ के सम्मुख जिस प्रकार सिंह शावक

उपस्थित होता है उसी भांति क्रोध में दुर्द्धर हनुमान वरुण पुत्रों के सम्मुखीन हुए। हनुमान ने विद्या बल से उन्हें स्तब्ध कर पशुओं की तरह बांध डाला। उन्हें बँधे हुए देखकर वायु जिस प्रकार पथ के वृक्षों को कम्पित कर देती है उसी प्रकार वरुण सुग्रीवादि योद्धाओं को कम्पित करता हुआ हनुमान की ओर दौड़ा। वरुण को हनुमान की ओर जाते देखकर रावण ने बाण-वर्षा कर पर्वत जैसे नदी के वेग को रोक लेता है उसी प्रकार वरुण को बीच राह में ही रोक दिया। तब क्रोध से वरुण ने हस्ती के साथ हस्ती, वृष के साथ वृष जिस प्रकार युद्ध करते हैं उसी प्रकार रावण के साथ बहुत देर तक युद्ध किया। अन्त में छल जानने वाले रावण ने अपनी छलना से वरुण को व्याकुल कर उछल कर जैसे इन्द्र को पकड़ा था उसी प्रकार वरुण को पकड़ लिया। छलना भी बल की तरह बलवान् होती है। तदुपरान्त जयनाद से आकाश को गुञ्जायमान करता विशाल-स्कन्ध रावण अपने स्कन्धावार को लौट गया। पुत्रों सहित वरुण ने रावण की अधीनता स्वीकार कर ली। तब रावण ने उसे मुक्त कर दिया। महान् आत्माओं का क्रोध प्रणिपात तक ही रहता है।

(श्लोक २९२-२९९)

अपने नेत्रों से जिसके पराक्रम को देखा था ऐसे जंवाई का मिलना दुष्कर समझकर वरुण ने अपनी कन्या सत्यवती का विवाह हनुमान के साथ कर दिया। रावण ने भी लङ्का लौटकर चन्द्रनखा (सूर्पणखा) की कन्या अनंग कुसुमा हनुमान को प्रदान की। सुग्रीव ने स्व-कन्या पद्मरागा को, नल ने हरिमालिनी एवं इसी प्रकार सबों ने मिलकर एक हजार कन्याएँ हनुमान को दीं। रावण ने हनुमान को अपने दृढ़ आलिंगन में लेकर उन्हें विदा दी। पराक्रमी हनुमान हनुपुर को लौट आए। अन्य विद्याधरगण व वानरपति सुग्रीवादि सानन्द अपने-अपने नगर को लौट गए। (श्लोक ३००-३०३)

तृतीय सर्ग समाप्त

चतुर्थ सर्ग

मिथिला नगरी में हरिवंशीय वासवकेतु नामक राजा थे। उनकी रानी का नाम विपुला था। उनके पूर्ण यशस्वी और प्रजा के

लिए जनक तुल्य जनक नामक एक पुत्र था। अनुक्रम में वह राजा बना। (श्लोक १-२)

अयोध्या नगर में भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् इक्ष्वाकु वंश में सूर्य वंश के अनेक राजा हुए। उनमें कई मोक्ष गए, कई ने स्वर्ग प्राप्त किया। उसी वंश में जब बीसवें तीर्थङ्कर का तीर्थ प्रवर्तित हो रहा था उस समय विजय नामक एक राजा राज्य कर रहे थे। उनकी रानी का नाम था हिमचूला। उनके वज्रबाहु और पुरन्दर नामक दो पुत्र थे। (श्लोक ३-५)

मार्गदर्श

उस समय नागपुर में इभवाहन नामक एक राजा थे। उनकी रानी चूड़ामणि के गर्भ से मनोरमा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। मनोरमा जब यौवन को प्राप्त हुई तब चन्द्र जैसे रोहिणी का पाणि-ग्रहण करता है उसी प्रकार वज्रबाहु ने मनोरमा का खूब धूमधाम से पाणिग्रहण किया। पाणिग्रहण के पश्चात् मनोरमा के साथ वह स्व-नगर की ओर रवाना हुआ। उनकी पत्नी का भाई उदयसुन्दर भी स्नेहवश उनके साथ गया। जाते हुए राह में उन्होंने उदयाचल पर स्थित सूर्य से बसन्तगिरि के शिखर पर स्व-तपस्तेज से प्रकाशित गुणसागर नामक एक मुनि को देखा। वे ऊर्ध्व दिशा की ओर देख रहे थे मानो वे मोक्ष मार्ग का अवलोकन कर रहे हों। मेघ को देखकर मयूर जैसे प्रसन्न हो जाता है उसी प्रकार मुनि को देखकर प्रसन्न बने वज्रबाहु ने अपने यान को रोक कर कहा—'बड़े पुण्य से चिन्तामणि जैसे खूब समर्थ और वन्दना करने योग्य मुनि के मैं आज दर्शन कर सका।' (श्लोक ६-१२)

यह सुनकर उदयसुन्दर हँसते हुए बोला—'कुमार, आप क्या दीक्षा लेना चाहते हैं?' वज्रबाहु ने कहा—'हां, मेरी ऐसी ही इच्छा है।' उदयसुन्दर उसी प्रकार हँसते हुए बोला—'आपकी यदि ऐसी ही इच्छा है तो देर कैसी? मैं भी आपका अनुगामी बनूँगा।' (श्लोक १३-१४)

वज्रबाहु बोले—'समुद्र जिस प्रकार अपनी मर्यादा को भंग नहीं करता उसी प्रकार तुम भी अपनी प्रतिज्ञा भंग मत कर देना।' (श्लोक १५)

उदयसुन्दर बोला—'निश्चय ही नहीं करूँगा।'

मोह से उतरने जैसे वज्रबाहु अपने वाहन से उतरे और उदय-

सुन्दर के साथ बसन्तगिरि के शिखर पर चढ़े। उनकी दीक्षा लेने की उत्कट अभिलाषा देखकर उदयसुन्दर बोला—'कुमार, आप आज दीक्षा ग्रहण मत करिएगा। मैं जो तमाशा कर रहा था उसे धिक्कार है! मैंने तो दीक्षा की बात ऐसे ही हँसी-हँसी में कही थी। अत: हँसी दिल्लगी में कही हुई बात का उल्लंघन करने में कोई दोष नहीं होता। विवाहोत्सव के गीतों की तरह हँसी-दिल्लगी में कही हुई बात को सत्य नहीं समझना चाहिए। हमारे परिवार की यह आशा कि आप विपत्ति के समय हमारी पूरी मदद करेंगे, दीक्षा ग्रहण कर आप तोड़ मत दीजिएगा। विवाह के निदर्शन रूप मांगलिक कंकण अभी भी आपके हाथ में बँधे हैं। अत: विवाह से प्राप्त हुए भोग का आप सहसा कैसे परित्याग कर सकेंगे। आपके दीक्षा लेने पर मेरी बहन मनोरमा तृण की भांति आप द्वारा परित्यक्त हो जाएगी। तब सांसारिक सुखों से वंचित होकर वह जीवित कैसे रहेगी?' (श्लोक १६-२१)

कुमार बोले—चारित्र मानव जन्म रूपी वृक्ष का सुन्दर फल है। स्वाति नक्षत्र का जल जिस प्रकार सीप में पड़कर मुक्ता हो जाता है उसी प्रकार तुम्हारी हँसी-दिल्लगी में कही बात मेरे लिए परमार्थ रूप हो गई है। तुम्हारी बहन यदि कुलवती है तो वह भी मेरे साथ दीक्षा ग्रहण करेगी, नहीं तो उसका सांसारिक जीवन कल्याणमय हो। मेरे लिए तो भोग-सुख अब कोई अर्थ नहीं रखता। अत: तुम मुझे दीक्षा ग्रहण की आज्ञा दो। मेरे बाद तुम भी दीक्षा ग्रहण करना क्योंकि अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना क्षत्रिय धर्म है।' (श्लोक २२-२५)

उदयसुन्दर को इस प्रकार प्रतिबोध देकर वज्रबाहु गुण रूपी रत्नों के सागर गुणसुन्दर मुनि के पास गए और तत्काल उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके साथ मनोरमा, उदयसुन्दर एवं २५ अन्य राजकुमारों ने दीक्षा ग्रहण कर ली। (श्लोक २६-२७)

राजा विजय ने जब सुना कि वज्रबाहु ने दीक्षा ग्रहण कर ली है तब सोचने लगे—वह बालक भी मुझ से श्रेष्ठ है और मैं वृद्ध होने पर (भोग सुखलिप्त) भी श्रेष्ठ नहीं हूं। ऐसा सोचते हुए विरक्त बने राजा ने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरन्दर को सिंहासन देकर निर्वाणमोह नामक मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। (श्लोक २८-२९)

कालान्तर में पुरन्दर ने अपनी पृथ्वी नामक रानी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र कीर्तिधर को सिंहासन देकर क्षेमङ्कर नामक मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। (श्लोक ३०)

कीर्तिधर राजा होकर इन्द्र जैसे पौलोमी के साथ विषयसुख का भोग करते हैं उसी प्रकार अपनी रानी सहदेवी के साथ विषय-सुख का भोग करने लगे। एक दिन उनके मन में भी दीक्षा लेने की बात आई तब मन्त्रीगण उससे बोले, 'जब तक आपके पुत्र न हो आप दीक्षा न लें। यदि आप पुत्रहीन अवस्था में दीक्षा लेंगे तो पृथ्वी अनाथ हो जाएगी। हे राजन्, आप पुत्र जन्म होने तक प्रतीक्षा करें।' (श्लोक ३१-३३)

मन्त्रियों द्वारा इस प्रकार रोके जाने पर कीर्तिधर दीक्षा न ले गृहस्थावास में ही रहने लगे। कुछ समय पश्चात् रानी सहदेवी ने सुकोशल नामक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म का संवाद सुनते ही पति दीक्षा ग्रहण कर लेंगे। इसलिए रानी ने बालक को छिपा लिया। बालक को छिपा लेने पर भी राजा को पुत्र जन्म ज्ञात हो गया। भला उदित सूर्य को कौन छिपा सकता है? तब स्व-कल्याण में कुशल कीर्तिधर ने अपने पुत्र सुकोशल को सिंहासन पर बैठाकर विजयसेन मुनि से दीक्षा ले ली। तीव्र तपस्या और अनेक परिषहों को सहन कर राजर्षि गुरु आज्ञा प्राप्त कर एकाकी विचरण करने लगे। (श्लोक ३४-३८)

एक बार कीर्तिधर मुनि मासक्षमण तप के पारने के लिए अयोध्या आए। मध्याह्न के समय वे भिक्षा के लिए नगर में विचरण करने लगे। प्रासाद शिखर से उन्हें देखकर रानी सहदेवी सोचने लगी—पहले जब इन्होंने दीक्षा ग्रहण की मैं पतिविहीना हो गई। अब यदि उन्हें देखकर सुकोशल दीक्षा ले लेगा तो मैं पुत्रविहीन हो जाऊँगी और पृथ्वी स्वामी-विहीना। अतः राज्य मङ्गल के लिए मेरे पति को व्रतधारी और निरपराध होने पर भी नगर से बहिष्कृत कर देना उचित है। ऐसा सोचकर सहदेवी ने अन्य वेषधारियों के साथ उन्हें भी नगर से निकला दिया। जिसका हृदय लोभ के वशीभूत हो जाता है उसमें विवेक नहीं रहता। (श्लोक ३९-४३)

सुकोशल की धाय माँ को जब पता चला कि सहदेवी ने

व्रतधारी स्वामी को नगर से निकाल दिया है तो वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी। सुकोशल ने उससे रोने का कारण पूछा। उसने बाष्परुद्ध कण्ठ से उत्तर दिया, 'हे वत्स, तुम जब छोटे थे तब तुम्हारे पिता ने तुम्हें सिंहासन पर बैठाकर दीक्षा ले ली थी। वे अभी भिक्षा के लिए इस नगर में आए थे। उन्हें देखकर शायद तुम भी दीक्षा ले बैठो इसी भय से तुम्हारी माँ ने उन्हें नगर से निकलवा दिया है। उसी दुःख में मैं रो रही हूं। (श्लोक ४४-४७)

धाय माँ की बात सुनकर सुकोशल संसार से विरक्त हो गया और उसने उसी समय अपने पिता कीर्तिधर के निकट जाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना की। (श्लोक ४८)

उसकी पत्नी चित्रमाला उस समय गर्भवती थी। वह बोली, 'हे स्वामी, इस राज्य का परित्याग कर पृथ्वी को अनाथ कर देना आपके लिए उचित नहीं है।' (श्लोक ४९)

सुकोशल बोले, 'तुम्हारे गर्भ में जो पुत्र है उसे मैं सिंहासन दे रहा हूं। ऐसे उदाहरण अतीत में भी है।' (श्लोक ५०)

ऐसा कहकर सभी को सान्त्वना देकर सुकोशल ने पिता से दीक्षा ग्रहण ली और तपस्या में लीन हो गए। ममता एवं कषाय रहित पिता पुत्र दोनों महामुनि पृथ्वी को पवित्र करते हुए एक साथ विहार करने लगे। (श्लोक ५१-५२)

पुत्र वियोग से कातर सहदेवी आर्तध्यान करती हुई मृत्यु को प्राप्त हुई और उसने गिरि कन्दरा में व्याघ्री रूप से जन्म ग्रहण किया। (श्लोक ५३)

मन को दमन करने वाले देह से भी निःस्पृह और स्वाध्याय ध्यान में तत्पर कीर्तिधर और सुकोशल मुनि चातुर्मास व्यतीत करने के लिए एक गिरि कन्दरा में जाकर प्रतिमा धारण कर अवस्थित हो गए। चातुर्मास शेष होने पर पारने के लिए जब वे गिरि कन्दरा से निकले तो पथ पर यमदूत-सी उसी व्याघ्री को देखा। उन्हें देखते ही व्याघ्री मुँह फैलाकर उनकी ओर दौड़ी। दुहृद व सुहृद जनों का दूर से आना समान ही होता है। (श्लोक ५४-५७)

व्याघ्री उनकी ओर आ रही है देखकर दोनों कायोत्सर्ग कर धर्म-ध्यान में लीन हो गए। वह व्याघ्री प्रथम तो विद्युत की भाँति सुकोशल मुनि पर गिरी। दूर से दौड़कर आक्रमण करने के कारण

मुनि जमीन पर गिर गए। तब उसने नखरूपी अंकुश से सुकोशल की देह को चर्र से चीर दिया और मरुभूमि की पथिका जिस भाँति तृष्णार्त होकर पानी पीती है उसी प्रकार उनके रक्त को पिया। भिखारिन जैसे तरबूजे को नोच-नोच कर खाती है उसी प्रकार उसने उनका मांस नोच-नोच कर खाया। हस्तिनी जिस प्रकार गन्ने को पीलकर उसका रसपान करती है वैसे ही वह उनकी अस्थियों को दन्तरूपी यन्त्रों से पीलकर उसका रसपान करने लगी। मुनि के हृदय में इसके लिए लेशमात्र भी विकृति उत्पन्न नहीं हुई। बल्कि वे सोचने लगे यह व्याघ्री कर्मों के क्षय में उनकी सहायता कर सहायक ही हुई है। ऐसे विचार से उनका शरीर रोमांचित हो गया। मानो उन्होंने रोमांच का वर्म धारण किया है। इस भाँति व्याघ्री का खाद्य बनकर उन्हें उसी अवस्था में केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ और वे मोक्ष गए। उसी तरह कीर्तिधर मुनि को भी केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने भी अद्वैत सुख के स्थान रूप मोक्ष को प्राप्त किया। (श्लोक ५८-६५)

उधर सुकोशल राजा की पत्नी चित्रमाला ने एक कुलनन्दन पुत्र को जन्म दिया। वह तो जन्म से ही राजा था अतः उसका नाम रखा गया हिरण्यगर्भ। हिरण्यगर्भ जब युवावस्था को प्राप्त हुआ तब मृगावती नामक एक मृगाक्षी के साथ उसका विवाह कर दिया गया। हिरण्यगर्भ के मृगावती की कुक्षी से नहुष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ मानो वह द्वितीय हिरण्यगर्भ ही था। (श्लोक ६६-६८)

एक दिन हिरण्यगर्भ ने वृद्धावस्था का द्योतक सिर पर एक सफेद केश देखा। उसे देखते ही तत्काल उन्हें वैराग्य हो गया। अतः नहुष को सिंहासन पर बैठाकर विमल नामक मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। (श्लोक ६९-७०)

नरसिंह नहुष सिंहिका नामक अपनी पत्नी सहित क्रीड़ा करता हुआ अपने पैतृक राज्य का संचालन करने लगा। एक दिन वह उत्तरापथ के राजाओं को जय करने के लिए राज्य छोड़कर रवाना हुआ। नहुष राज्य में नहीं है यह जानकर दक्षिणापथ के राजाओं ने अयोध्या पर अधिकार करने के लिए नगर को घेर लिया। शत्रु तो छलनिष्ठ होते ही हैं। तब सिंहिका पुरुष रूप धारण कर उनके सम्मुखीन हुई और उन्हें पराजित कर विताड़ित

कर दिया। सिंहनी क्या हाथियों की हत्या नहीं करती ?
(श्लोक ७१-७४)

उत्तरापथ के राजाओं को जीतकर नहुष अयोध्या लौट आया। वहाँ आकर सुना कि सिंहिका ने दक्षिणापथ के राजाओं को पराजित कर विताड़ित कर दिया है तो सोचने लगा मुझसे पराक्रमी के लिए भी जो कार्य दुष्कर था उसे सिंहिका ने किस प्रकार कर डाला ? इससे स्पष्टत: इसकी धृष्टता प्रकट होती है। उच्च कुलजात स्त्रियों के लिए ऐसा करना उचित नहीं है। इससे लगता है यह स्त्री सती नहीं है। सती स्त्रियों के लिए तो पति ही देवता होते हैं। इसलिए वह पति-सेवा छोड़कर दूसरा काम नहीं करती। ऐसा साहसिक कार्य करना तो बहुत दूर की बात है। ऐसा विचार आने से अत्यन्त प्रिय होते हुए भी खण्डित प्रतिमा की तरह उन्होंने उसका परित्याग कर दिया। (श्लोक ७५-७८)

एक समय नहुष राजा को दाहज्वर हुआ। सौ-सौ उपचार करने पर भी वह दुष्टशत्रु की भांति शान्त नहीं हुआ। उस समय सिंहिका स्व-सतीत्व प्रमाणित करने के लिए और पति की व्याधि दूर करने के लिए जल लेकर उसके पास आई और बोली, 'हे नाथ, आपके अतिरिक्त मैंने यदि किसी पुरुष को नहीं चाहा है तो आपका ज्वर मेरे जल के छींटे से इसी क्षण शान्त हो जाए।' ऐसा कहकर उसने वह जल नहुष पर छिड़का। उस जल के छिड़कते ही मानो अमृत का स्पर्श हुआ हो इस प्रकार ज्वर शान्त हो गया। देवों ने सती पर पुष्प वर्षा की। राजा ने भी तब उसे ससम्मान ग्रहण कर पूर्व की तरह अपना लिया। (श्लोक ७९-८३)

बहुत दिनों पश्चात् राजा नहुष और सिंहिका के सौदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके बड़े होने पर उसे सिंहासन देकर नहुष ने मोक्ष प्राप्त करने के लिए उत्तम उपाय रूप दीक्षा ग्रहण कर ली। (श्लोक ८४-८५)

अष्टाह्निका उत्सव का दिन आया। पूर्व की भांति ही मन्त्रियों ने सौदास के राज्य में पशु हत्या निषिद्ध कर दी। वे सौदास से बोले, 'राजन् आपके पूर्व पुरुष अष्टाह्निका के समय मांस भोजन नहीं करते थे। अत: आप भी मांस नहीं खाएँ।'
(श्लोक ८६-८७)

सौदास को मांस भोजन अत्यन्त प्रिय था। अतः उसने अपने रसोइए से कहा, 'छिपाकर मेरे लिए मांस ले आना; किन्तु राज्य में पशु हत्या निषिद्ध होने के कारण कहीं मांस प्राप्त नहीं हुआ। आकाश-कुसुम की प्राप्ति की तरह या असत् वस्तु के लाभ की इच्छा की तरह रसोइए का समस्त प्रयत्न व्यर्थ हुआ। वह सोचने लगा मैंने सब जगह मांस की खोज की; किन्तु कहीं मांस प्राप्त नहीं हुआ और राजा का आदेश है मांस लाने का। अब मैं क्या करूं? उसी समय उसने एक मृत बालक को देखा। वह तत्क्षण उस बालक का मांस काटकर ले आया और मसाला आदि देकर अच्छी तरह पकाकर राजा को खाने के लिए दिया। वह मांस खाकर राजा बड़ा परितृप्त हुआ और रसोइए से बोला, 'यह किस का मांस है?' रसोइए ने उत्तर दिया, 'नरमांस।' तब सौदास रसोइए से बोला, 'आज से तुम मुझे रोज नरमांस लाकर खिलाना।' तब रसोइया नगर से रोज एक बालक चुराकर लाता और उसका मांस पकाकर राजा को खिलाता। अन्याय होने पर भी राजाज्ञा होने के कारण उसे कोई डर नहीं था। राजा ऐसा निष्ठुर कार्य करता है यह जानकर मन्त्रीगण घर के सांप को जैसे जङ्गल में छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार सौदास को राज्यभ्रष्ट कर जङ्गल में छोड़ आए और उसके पुत्र सिंहरथ को सिंहासन पर बैठाया। सौदास बाधारहित होकर अब नरमांस खाता हुआ घूमने लगा।

(श्लोक ८८-९७)

एक बार घूमता हुआ सौदास दक्षिणापथ पर आया। वहां उसने एक महर्षि को देखा। धर्म क्या है पूछने पर महर्षि ने उसे अर्हत् धर्म का उपदेश दिया जिसमें कि मद्य-मांस त्याग की मुख्यता है। धर्म सुनकर सौदास चकित हुआ और सदैव के लिए श्रावक-व्रत ग्रहण कर लिया और मद्य-मांस त्यागकर शान्त स्वभावी हो गया।

(श्लोक ९८-१००)

उसी समय उस नगर का राजा बिना पुत्र के मारा गया। वहां के मन्त्रीमण्डल ने पांच दिव्य प्रकट होने से सौदास को वहां का राजा बना दिया। (श्लोक १०१)

राजा ने स्वपुत्र सिंहरथ को दूत भेजकर अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहा; किन्तु सिंहरथ ने दूत का तिरस्कार कर

निकाल दिया। (श्लोक १०२)

सोदास सिंहरथ पर आक्रमण करने निकला। सिंहरथ भी उससे युद्ध करने निकला। पथ पर दोनों सेना के मिलते ही युद्ध आरम्भ हो गया। सिंहरथ के युद्ध में पराजित होने पर सोदास ने उसे बन्दी बना लिया; किन्तु तदुपरान्त उभय राज्य उसे देकर मुनिव्रत ग्रहण कर लिया। (श्लोक १०३-१०५)

सिंहरथ के ब्रह्मरथ नामक एक पुत्र हुआ। तदुपरान्त क्रमशः चतुर्मुख, हेमरथ, शतरथ, उदयपृथु, वादिरथ, इन्दुरथ, मान्धाता, वीरसेन, प्रतिमन्यु, पद्मबन्धु, रविमन्यु, बसन्ततिलक, कुवेरदत्त, कुन्थु, शरभ, द्विरथ, हिरण्यकशिपु, पुञ्जस्थल, काकुस्थल व रघु आदि राजा हुए। उनमें कोई-कोई मोक्ष गया, कोई-कोई स्वर्ग। तदुपरान्त अयोध्या में शरणार्थियों को शरण देने वाला और बन्धुओं को अऋण करने वाला अनरण्य नामक एक राजा हुए। उनकी रानी पृथ्वी के गर्भ से अनन्तरथ और दशरथ नामक दो पुत्र हुए। (श्लोक १०६-११२)

अनरण्य के सहस्रकिरण नामक एक मित्र था। रावण के साथ युद्ध में पराजित होने पर उसे वैराग्य हो गया। अतः उसने दीक्षा ले ली। मित्रता के कारण अनरण्य के मन में भी वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतः उसने भी स्वपुत्र दशरथ को राज्य देकर अपने ज्येष्ठ पुत्र सहित दीक्षा ग्रहण कर ली। उस समय दशरथ केवल एक महीने का था। काल प्राप्त होने पर अनरण्य मुनि मोक्ष गए और अनन्तरथ तीव्र तपस्या करते हुए पृथ्वी पर विचरण करने करने लगे। (श्लोक ११३-११५)

राज्य करते-करते क्षीरकण्ठ दशरथ ने तरुणाई और पराक्रम एक साथ प्राप्त किया। इसलिए नक्षत्रों में जैसे चन्द्रमा, ग्रहों में सूर्य, पर्वतों में मेरु सुशोभित होता है उसी प्रकार वे भी राजाओं में सुशोभित होने लगे। दशरथ जब स्वयं राज्य का संचालन करने लगे तब परचक्र काल में लोगों पर जो उपद्रव होता था वह आकाश-कुसुम की भांति दूर हो गया। वे याचकों की इच्छानुसार द्रव्य और अलङ्कारादि देते थे इसलिए वे मद्यम आदि दस प्रकार के कल्पवृक्षों के अनुक्रम में ग्यारहवें कल्पवृक्ष गिने जाते थे। वंश-परम्परागत अपने साम्राज्य के अनुसार वे अर्हत् धर्म का सर्वदा

अप्रमत्त रूप में पालन करने लगे। युद्ध में जयश्री को वरण करने की भांति उन्होंने दर्भस्थल (कुशस्थल) के राजा सुकोमल की पत्नी अमृतप्रभा के गर्भ से जात अपराजिता (कौशल्या) नामक रूप-लावण्यवती और पवित्र कन्या से विवाह कर लिया। तदुपरान्त चन्द्र ने जैसे रोहिणी से विवाह किया उसी प्रकार कमलकुल नगर के राजा सुबन्धुतिलक की रानी मित्रादेवी के गर्भजात कैकेयी नामक कन्या का पाणिग्रहण किया। इसका द्वितीय नाम सुमित्रा था। कारण, वह मित्रा की कन्या और स्वभाव से सुशीला थी। इसके बाद उन्होंने पुण्य, लावण्य और सौन्दर्य से जिसकी देह सुशोभित थी ऐसी सुप्रभा नामक अनिन्दित राजकन्या के साथ विवाह किया। विवेकियों में अग्रगण्य राजा दशरथ धर्म और अर्थ को क्षुण्ण किए बिना इन तीन राजकन्याओं के साथ सुख-भोग करने लगे।

(श्लोक ११६-१२६)

अर्द्ध भरत क्षेत्र के अधिकारी रावण ने एक बार एक नैमित्तिक से पूछा—'अमर तो देवों को ही कहा जाता है। तब यह निश्चित है कि संसारी प्राणियों की मृत्यु अवश्य होगी। अतः मुझे बताएँ मेरी मृत्यु स्वाभाविक रूप में होगी या अन्य किसी के हाथों से? जो कुछ है स्पष्ट बताओ। कारण, पुरुष सदा स्पष्ट कथन ही करते हैं।' नैमित्तिक बोला—'जनक राजा की भावी कन्या के लिए दशरथ राजा के पुत्र के हाथों आपकी मृत्यु होगी।'

(श्लोक १२७-१३०)

नैमित्तिक की बात सुनकर विभीषण बोला—'इस नैमित्तिक की बात सदैव सत्य ही होती है; किन्तु इस बार मैं इसके कथन को असत्य प्रतिपादित कर दूँगा। क्योंकि मैं भावी कन्या और पुत्र के अपदार्थ पिता बीज रूप जनक और दशरथ जो कि इस अनर्थ के कारण होंगे हत्या कर दूँगा। उनको मार डालने के पश्चात् जब कन्या और पुत्र होंगे ही नहीं तब नैमित्तिक का वचन झूठा हो जाएगा।'

(श्लोक १३१-१३३)

रावण के सम्मत होने पर विभीषण उठा और अपने गृह गया। नारद जो कि उस सभा में उपस्थित थे, सब कुछ सुनकर दशरथ की राजसभा में गए। दूर से ही उन्हें आता देख दशरथ उठकर खड़े हो गए और उन्हें बन्दना कर गुरु की भांति सम्मान

देकर उत्तमासन पर बैठाया। फिर उन्हें पूछा—'आप अभी कहां से आ रहे हैं?' (श्लोक १३४-१३६)

नारद ने कहा—'पूर्व विदेह की पुण्डरीकिनी नगरी में सुरासुर मिलकर श्री सीमन्धर स्वामी का निष्क्रमणोत्सव कर रहे थे। वही देखने मैं वहां गया था। उस उत्सव को देखकर तीर्थनाथ की वन्दना के लिए मेरु पर्वत पर गया। वहां से लङ्का जाकर शान्त गृहस्थ शान्तिनाथ को नमस्कार कर रावण की सभा में गया। वहां के एक नैमित्तिक को बोलते सुना कि जनक राजा की कन्या के लिए आपके पुत्र के हाथ से रावण की मृत्यु होगी। यह सुनकर आप दोनों को मारने के लिए विभीषण कृतसंकल्प हुआ है। वह शीघ्र ही यहां आएगा। स्वधर्मी होने कारण आप पर मेरा प्रेम है। इसीलिए शीघ्रातिशीघ्र यह बताने के लिए यहां चला आया।'

(श्लोक १३७-१४१)

सब कुछ सुनकर दशरथ ने नारद की पूजा कर उन्हें विदा दी। नारद ने वहां से जनक राजा के यहां जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। (श्लोक १४२)

तब दशरथ ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर सारी वस्तुस्थिति उन्हें समझाई और उन्हीं पर राज्यभार सौंपकर स्वयं योग का रूप धारण कर अरण्य की ओर चले गए। (श्लोक १४३)

शत्रु को छलने के लिए मन्त्रियों ने दशरथ की एक लेप्यमय मूर्ति बनवाकर राजप्रासाद में एक अन्धकारमय स्थान में रख दी।

(श्लोक १४४)

जनकराजा भी दशरथ की तरह योगी वेष धारण कर अरण्य में चले गए। उनके मन्त्रियों ने भी जनक की लेप्यमय मूर्ति बनवाकर प्रासाद के एक अन्धकारमय स्थान रखवा दी। दशरथ और जनक गुप्त रूप में पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

(श्लोक १४४-१४५)

क्रुद्ध विभीषण अयोध्या आया और अन्धकार में रखी लेप्य मूर्ति का मस्तक खड्ग से काट डाला। इस घटना ने सारे नगर में कोलाहल मचा दिया और अन्तःपुर में चारों ओर रोना-धोना मच गया। अङ्ग रक्षकों सहित सामन्त राजगण वहां उपस्थित हुए और मन्त्रविद् मन्त्रियों ने राजा की सब प्रकार से अन्त्येष्टि क्रिया

सम्पन्न की। (श्लोक १४६-१४८)

दशरथ मर गया समझ कर विभीषण जनक को बिना मारे ही लङ्का लौट गया। सोचा, अकेला राजा जनक क्या कर सकता है। (श्लोक १४९)

मिथिला और इक्ष्वाकु वंश के राजा जनक और दशरथ समान स्थिति में पड़ जाने से मित्र बन गए और साथ-साथ भ्रमण करने लगे। पर्यटन करते हुए वे उत्तरापथ में गए। वहाँ कौतुक-मङ्गल नगर के राजा की शुभमती रानी से उत्पन्न द्रोणमेघ की बहिन बहत्तर कलाओं में निपुणा कैकेयी के स्वयंवर की बात सुनी। यह सुनकर वे भी कौतुकमङ्गल नगर जाकर स्वयंवर सभा में जहाँ हरिवाहन आदि राजा बैठे थे उनमें कमल के मध्य हंस की तरह बैठ गए। (श्लोक १५०-१५३)

कन्या-रत्न कैकेयी रत्नालङ्कारों से विभूषित होकर साक्षात् लक्ष्मी की तरह सभा-भवन में आई। प्रतिहारिणी के हाथों का सहारा लिए प्रत्येक राजा को देखती हुई जिस प्रकार चन्द्रलेखा नक्षत्रों का अतिक्रमण करती है उसी प्रकार अनेक राजाओं को वह अतिक्रमण कर गई। अनुक्रम-से गङ्गा जैसे समुद्र के निकट जाती है उसी प्रकार वह भी राजा दशरथ के पास जाकर लङ्गर डाली हुई नौका की तरह खड़ी हो गई। उसकी देह रोमांचित हो गई अतः प्रसन्नता के साथ अपनी भुजाओं-सी बर माला को दशरथ के गले में डाल दी। (श्लोक १५४-१५७)

हरिवाहन आदि राजा इसे अपना अपमान समझ कर क्रोध में प्रज्ज्वलित होकर कहने लगे—'जीर्ण-शीर्ण कपड़े पहने इस एकाकी भिक्षुक को कैकेयी ने अपना पति चुना है; किन्तु हम यदि उसका अपहरण करें तो देखते हैं वह किस प्रकार कैकेयी की रक्षा करेगा।' (श्लोक १५८-१५९)

इस प्रकार कहते हुए क्रुद्ध बने वे अपनी-अपनी छावनी में गए और अस्त्र धारण कर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। राजा शुभमति ने दशरथ का पक्ष लिया और उत्साह पूर्वक अपनी चतुरंगिनी सेना तैयार करवाई। उस समय एकाकी दशरथ ने कैकेयी से कहा, 'प्रिये, तुम यदि मेरा सारथ्य करो तो मैं इन शत्रुओं को विनष्ट कर डालूँ।' (श्लोक १६०-१६२)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

यह सुनकर कैकेयी ने एक वृहद् रथ पर चढ़कर अश्व की बल्गा अपने हाथों में ले ली। कारण वह बुद्धिमती तो थी ही साथ ही बहत्तर कलाओं में भी निपुण थी। तब दशरथ भी कवच धारण कर पीठ में तुणीर कसा और हाथ में धनुष लेकर रथ पर चढ़ गए। यद्यपि उस समय वे अकेले ही थे, फिर भी शत्रुओं को तृणवत् समझा। चतुर कैकेयी हरिवाहन आदि समस्त राजाओं के सम्मुख समयानुसार सवेग उस रथ को ले जाने लगी और अखण्ड पराक्रमी दशरथ द्वितीय आखण्डल की तरह एक-एक कर शत्रुओं का रथ खण्डित करने लगे। इस प्रकार समस्त राजाओं को पराजित कर दशरथ ने द्वितीय पृथ्वी-सी कैकेयी से विवाह किया। दशरथ ने अपनी नवपरिणीता से कहा, 'देवी, तुम्हारे सारथ्य से मैं सन्तुष्ट हुआ हूं अतः तुम कोई वर मांग लो।' कैकेयी बोली, 'स्वामी, समय आने पर मैं वह वर आप से मांगूगी। अभी वह आपके ही पास धरोहर की तरह रक्षित रहे।' राजा दशरथ ने यह स्वीकार कर लिया। (श्लोक १६३-१६९)

शत्रुओं से जिस सेना को जीता था उस सेना और श्री जैसी कैकेयी सहित दशरथ राजगृह नगर में गए और जनक अपनी राजधानी मिथिला लौट गए। समयज्ञ ही बुद्धिमान होते हैं। वे जहां-तहां जैसे-तैसे रूप में नहीं रहते। (श्लोक १७०-१७१)

राजा दशरथ मगध जीतकर राजगृह में ही रहने लगे, रावण के भय से अयोध्या नहीं लौटे। अपराजिता आदि रानियों को राजगृह में ही बुलवा लिया। पराक्रमी पुरुषों का राज्य सर्वत्र ही होता है। अपनी रानियों के साथ क्रीड़ा करते हुए बहुत दिनों तक वे राजगृह में ही रहे। राजाओं को स्व अर्जित भूमि से ही प्रेम होता है। (श्लोक १७२-१७४)

एक दिन रानी अपराजिता ने बलराम के जन्म सूचक हस्ती, सिंह, चन्द्र, और सूर्य ये चार स्वप्न देखे। उसी समय कोई महर्द्धिक देव ब्रह्म देवलोक से च्युत होकर जिस प्रकार हंस कमल वन में जाता है उसी प्रकार अपराजिता की कुक्षी में आया। यथा समय अपराजिता ने पुण्डरीक श्वेत कमल की तरह श्वेत वर्ण युक्त, पुरुषों में पुण्डरीक, अग्नि कोण के दिग्गज-से सम्पूर्ण लक्षण युक्त एक पुत्र को जन्म दिया। (श्लोक १७५-१७७)

प्रथम पुत्र-रत्न के मुखकमल को देखकर राजा दशरथ उसी प्रकार हर्षित हुए जिस प्रकार पूर्णचन्द्र के दर्शन से समुद्र हर्षित होता है। राजा चिन्तामणि रत्न की तरह याचकों को वांछित वस्तुएँ दान देने लगे। लोकश्रुति है पुत्र उत्पन्न होने पर दिया गया दान अक्षय होता है। (श्लोक १७८-१७९)

उसी समय लोक में इतना हर्ष हुआ कि लगा राजा की अपेक्षा नागरिकों को ही अधिक प्रसन्नता हुई है। वे लोग दूर्वा, फूल, फलों से पूर्ण मङ्गलमय पात्र राजप्रासाद में लाने लगे। नगर के घर-घर में मङ्गलगान होने लगा। पथ पर केशर से सुवासित जल का छिड़काव किया गया। द्वार-द्वार पर तोरण बाँधे गए। उस पुत्र के प्रभाव से अन्य राजाओं के यहाँ से भी राजा दशरथ के पास अप्रत्याशित उपहार आने लगे। राजा दशरथ ने पद्मा—लक्ष्मी के निवास पद्म रूप उस पुत्र का नाम रखा पद्म; किन्तु लोक में वह राम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। (श्लोक १८०-१८४)

तदुपरान्त रानी सुमित्रा ने रात्रि के शेष याम में वासुदेव के जन्म सूचक हस्ती, सिंह, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, लक्ष्मी और समुद्र इन सात स्वप्नों को देखा। उसी समय एक परम महर्द्धिक देव ने देव लोक से च्युत होकर सुमित्रा के गर्भ में प्रवेश किया। यथा समय सुमित्रा ने भी वर्षा ऋतु के मेघ से वर्णवाले सर्वलक्षण युक्त एक जगन्मित्र पुत्र को जन्म दिया। (श्लोक १८५-१८७)

उस समय राजा दशरथ ने समस्त नगर के अर्हत् चैत्यों में स्नात्र पूर्वक अष्ट प्रकारी पूजा करवाई और कारागार से बन्दियों को यहाँ तक कि शत्रुओं को भी मुक्त कर दिया। कहा भी गया है उत्तम पुरुष के जन्म लेने पर कौन सुखपूर्वक नहीं रहता?

(श्लोक १८८-१८९)

उस समय प्रजा सहित केवल राजा ही प्रफुल्लित नहीं हुए देवी पृथ्वी भी उच्छ्वसित हो उठी। राजा ने राम जन्म के समय जितना उत्सव किया था उससे भी अधिक उत्सव इस समय किया। क्या हर्ष से कोई भी तृप्त हुआ है? दशरथ ने इस पुत्र का नाम नारायण रखा; किन्तु लोक में वह लक्ष्मण नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(श्लोक १९०-१९२)

दूध पीने वाले दोनों शिशुओं ने क्रमशः पिता की दाढ़ी के

केश खींचने की उम्र प्राप्त की। धात्रिओं द्वारा पालित उन दोनों कुमारों को राजा दशरथ अपनी दोनों भुजाओं की तरह देखने लगे। स्पर्श मात्र से मानो देह में अमृत सिंचन कर देते हो इस प्रकार वे सभास्थित लोगों की एक गोद से दूसरी गोद में बार-बार जाने लगे। (श्लोक १९३-१९४)

अनुक्रम से दोनों बड़े हो गए। दोनों नीलाम्बर और पीताम्बर पहन कर चरणों के दबाव से पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए इधर-उधर घूमने लगे। मानो साक्षात् पुण्य राशि ही इस प्रकार उन दोनों ने कलाचार्य को मानो साक्षी रख कर ही समस्त कलाओं को अधिगत कर लिया। वे दोनों पराक्रमी भाई जैसे बर्फ को मुक्का मार कर चूर-चूर कर दिया जाता है उसी प्रकार बड़े-बड़े पर्वतों को मुष्टि प्रहार से चूर-चूर कर देते। व्यायामशाला में व्यायाम करने के समय तीर को जब वे प्रत्यंचा पर चढ़ाते तब सूर्य भी इस आशंका से कांप उठता मानो वे उसे तीरबद्ध करेंगे। वे मात्र अपने भुजबल से शत्रुओं के बल को तृणवत् समझते थे। उनके शस्त्रास्त्रों के सम्पूर्ण कौशल और अपार भुजबल के कारण राजा दशरथ स्वयं को असुरों से भी अजेय समझने लगे।

(श्लोक १९५-२०१)

कुछ काल व्यतीत होने पर राजा दशरथ अपने पुत्रों के पराक्रम से आश्वस्त होकर इक्ष्वाकुओं की राजधानी अयोध्या लौट गए। दुर्दशामुक्त दशरथ मेघ विमुक्त सूर्य की भांति प्रताप से प्रकाशित होकर राज्य करने लगे। (श्लोक २०२-२०३)

कुछ समय पश्चात् रानी कैकेयी ने शुभ स्वप्न द्वारा सूचित भरत क्षेत्र के अलङ्कार रूप भरत को जन्म दिया। सुप्रभा ने भी जिसकी भुजाओं का पराक्रम शत्रुघ्न—शत्रु नाशक है ऐसे कुलनन्दन शत्रुघ्न को जन्म दिया। दिन-रात एक साथ प्रेम पूर्वक रहने के कारण भरत और शत्रुघ्न द्वितीय बलदेव और वासुदेव की भांति सुशोभित होने लगे जैसे चार गजदन्ताकृति पर्वत द्वारा मेरु सुशोभित होता है। (श्लोक २०४-२०७)

इसी जम्बूद्वीप के दारू नामक ग्राम में वसुभूति नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी अनुकोशा नामक पत्नी के गर्भ से अतिभूति नामक पुत्र का जन्म हुआ। उसने सरसा नामक एक स्त्री

के साथ विवाह किया। (श्लोक २०८-२०९)

कयान नामक एक ब्राह्मण सरसा को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। उसने एक दिन अवसर पाकर उसका हरण कर लिया। कामातुर क्या नहीं करता? (श्लोक २१०)

अतिभूति सरसा को खोजने के लिए भूत की भाँति सर्वत्र घूमने लगा। पुत्र और पुत्र-वधू की खोज में उसके पीछे-पीछे अनुकोशा और वसुभूति भी घूमने लगे। वे बहुत जगह गए; किन्तु कहीं भी पुत्र और पुत्र-वधू का सन्धान नहीं मिला। आगे बढ़ने पर उन्हें एक मुनि मिल गए। उन्होंने मुनि की भक्ति भाव से वन्दना की। उनकी देशना सुनकर दोनों के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतः दोनों ने मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरु की आज्ञा से अनुकोशा कमलश्री नामक आर्यिका के पास रहने लगी। कालक्रम से वे दोनों मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुए। व्रत यदि एक दिन भी पालन किया जाए तो स्वर्ग में ही जन्म होगा अन्यत्र नहीं। (श्लोक २११-२१४)

वसुभूति वहां से च्युत होकर वैताढ्य पर्वत के रथनुपुर नगर में चन्द्रगति राजा के रूप में उत्पन्न हुआ। अनुकोशा का जीव भी वहां से च्यव कर विद्याधरपति चन्द्रगति की पुष्पवती नामक अनिन्द्य चरित्रा पत्नी रूप में उत्पन्न हुआ। (श्लोक २१५-२१६)

सरसा ने एक साध्वी के सम्पर्क में आकर दीक्षा ग्रहण कर ली और मृत्यु के पश्चात् ईशान देवलोक में देवी रूप में उत्पन्न हुई। (श्लोक २१७)

सरसा के विरह में पीड़ित अतिभूति मृत्यु के पश्चात् संसार भ्रमण करते हुए एक बार हंस-शिशु के रूप में जन्मा। उसी समय एक बाज पक्षी ने उसे अपने पंजों में पकड़ लिया; किन्तु वह पंजों से स्खलित होकर आकाश से एक मुनि के सामने आ गिरा। उसके प्राणों को समाप्त होते देखकर मुनि ने नमस्कार मन्त्र सुनाया। उस मन्त्र के प्रभाव से वह मृत्यु के पश्चात् किन्नर जाति की व्यंतर योनि में दस हजार वर्ष का आयुष्य लेकर देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहां से च्युत होकर उसने विद्या नामक नगर में प्रकाश सिंह राजा की रानी प्रवरावली के गर्भ से जन्म लिया और कुण्डलमण्डित नाम से प्रसिद्ध हुआ। (श्लोक २१८-२२१)

कयान ने भोगासक्ति में मृत्यु प्राप्त कर चिरकाल तक संसार रूपी अटवी में भ्रमण करते हुए चन्द्रपुर के राजा चन्द्रध्वज के पुरोहित धूमशिख की पत्नी स्वाहा के गर्भ से पिंगल नामक पुत्र के रूप में जन्म लिया। पिंगल और चन्द्रध्वज राजा की कन्या अतिसुन्दरी एक ही गुरु से एक साथ पढ़ते थे। वहां दोनों में परस्पर प्रेम हो गया। तब पिंगल छलना का आश्रय लेकर उसका अपहरण कर विदग्ध नगरी में ले गया। कला और विज्ञानहीन पिंगल काष्ठ और तृण विक्रय कर किसी प्रकार उसका भरण-पोषण करने लगा। निर्गुणी और कर ही क्या सकता है? (श्लोक २२२-२२६)

वहां अतिसुन्दरी को राजपुत्र कुण्डलमण्डित ने देखा। दोनों में प्रेम हो जाने से कुण्डलमण्डित ने उसका अपहरण कर लिया और वह उसे पिता के भय से एक दुर्गम प्रदेश में ले गया और वहां कुटी बनाकर रहने लगा। (श्लोक २२७-२२८)

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पिंगल अतिसुन्दरी के विरह में उन्मत्त होकर चारों ओर उसे खोजने लगा। उसी समय आर्यगुप्त नामक एक आचार्य से उसका मिलना हुआ। उनसे धर्म श्रवण कर वह दीक्षित हो गया। दीक्षित होने पर भी उसके मन से अतिसुन्दरी का प्रेम नहीं गया।

(श्लोक २२९-२३०)

कुण्डलमण्डित दुर्गम स्थल में रहकर कुत्ते की तरह बार-बार राजा दशरथ के राज्य में लूटपाट करने लगा। राजा दशरथ ने बालचन्द्र नामक एक सामन्त को उसे पकड़ने का आदेश दिया। बालचन्द्र ने उसे बन्दी बनाकर राजा दशरथ के सन्मुख उपस्थित किया। राजा ने कुछ दिनों तक उसे बन्दी रखकर छोड़ दिया। शत्रु के दिन होने पर महान पुरुषों का कोप शान्त हो जाता है।

(श्लोक २३१-२३३)

तब कुण्डलमण्डित पितृराज्य प्राप्त करने के लिए स्वराज्य की ओर जाने लगा। राह में मुनिचन्द्र नामक मुनि से धर्म श्रवण कर उसने श्रावक व्रत ग्रहण कर लिया। राज्य की इच्छा लिए मृत्यु होने पर वह मिथिला नगरी के राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ से पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। (श्लोक २३४-२३५)

सरसा ईशान देवलोक में देवी रूप में उत्पन्न हुई। वहां से च्युत होकर एक पुरोहित की कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। उसका

नाम वेगवती रखा गया। उस जीवन में भी दीक्षा लेकर वह मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मदेवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ से च्युत होकर वह रानी विदेहा के गर्भ में कुण्डलमण्डित के जीव के साथ कन्या रूप में अवतरित हुई। (श्लोक २३६-२३७)

समय होने पर विदेहा ने एक पुत्र एक कन्या के रूप में युगल सन्तान को जन्म दिया। ठीक उसी समय पिंगल मुनि मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुए। अवधि ज्ञान से अपना पूर्वभव जानकर उस जन्म के बैरी कुण्डलमण्डित को राजा जनक के यहाँ पुत्र रूप में जन्म ग्रहण करते देखा। पूर्वभव के बैर के कारण रुष्ट होकर उसने उसका अपहरण कर लिया। (श्लोक २३८-२४०)

अपहरण कर ले जाते समय उसने सोचा इसे पत्थर पर पटक कर मार डालूँ; किन्तु फिर सोचा पहले ही मैंने नीच कर्म, किए हैं। जिनको कई जन्मों तक भोगना पड़ा है। बाद में दैवयोग से मुनि बना और इस उच्च स्थिति को प्राप्त किया। अब इस शिशु की हत्या कर अनेक भव-भ्रमण का कारण क्यों बनूँ ?

(श्लोक २४१-२४२)

यह सोचकर कुण्डलादि अलङ्कारों से बालक को भूषित कर आकाश से स्खलित नक्षत्र की भ्रान्ति उत्पन्न कर रथनुपुर में उतरा और बालक को बिछावन में जैसे सुलाया जाता है उसी प्रकार नन्दनोद्यान में धीरे से सुला दिया। आकाश से स्खलित नक्षत्र द्युति को चन्द्रगति ने देखा। 'यह क्या हुआ' जानने के लिए वह द्युति का अनुसरण करते हुए नन्दन उद्यान में आया और दिव्य अलङ्कार भूषित एक बालक को देखा। पुत्रहीन वह विद्याधर पति तुरन्त उसे पुत्र रूप में ग्रहण कर राज प्रासाद में ले गया और उसे अपनी पत्नी पुष्पवती को दे दिया। तदुपरान्त राजसभा में जाकर बोला,'आज देवी पुष्पवती ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया है।

(श्लोक २४३-२४७)

राजा और पुरवासियों ने उसका जन्मोत्सव मनाया। भामण्डल अर्थात् कान्तिपुंज के रूप में उसको उतरते देखा था अतः उसका नाम रखा भामण्डल। पुष्पवती और चन्द्रगति के नेत्ररूपी कुमुदों के लिए चन्द्ररूप वह बालक खेचरियों द्वारा लालित होकर अहर्निश बड़ा होने लगा। (श्लोक २४८-२४९)

उधर मिथिला में पुत्र का अपहरण हो गया यह जानकर रानी विदेहा ने करुण स्वर से क्रन्दन कर आत्मीय परिजनों को शोक-सागर में निमज्जित कर दिया। राजा जनक ने उसके अनुसन्धान के लिए चारों ओर आदमी भेजे; किन्तु बहुत दिन बीत जाने के पश्चात् भी बालक का कोई पता कहीं से भी नहीं मिला।

(श्लोक २५०-२५१)

राजा जनक ने उस कन्या को अनेक गुणरूपी धान्य उत्पन्न हुआ है समझ कर उसका नाम रखा सीता। क्रमशः उनका पुत्रशोक कम हो गया। कारण संसार में मनुष्य का हर्ष और शोक तो आता-जाता ही रहता है। (श्लोक २५२-२५३)

कुमारी सीता रूप और लावण्य के साथ-साथ क्रमशः बुद्धिमान भी होने लगी। धीरे-धीरे वह चन्द्रलेखा की तरह कलापूर्ण हो उठी। यौवन प्राप्त होने पर उस कमलाक्षी ने उत्तम लावण्यमय लहरों से युक्त सरिता का रूप धारण कर लिया। सती लक्ष्मी-सा उसका वह अपरूप रूप देखकर राजा जनक दिन-रात यही सोचने लगे कि इसके योग्य पति कौन होगा? मन्त्रियों से परामर्श कर उन्होंने अनेक राजकुमारों को देखा; किन्तु कोई भी सीता के योग्य पतिरूप में उन्हें नहीं जँचा। (श्लोक २५४-२५७)

उसी समय अर्द्धबर्बर देश के आतरंगतम आदि दैत्य की तरह म्लेच्छ राजाओं ने जनक के राज्य में आकर उपद्रव शुरू कर दिया। कल्पान्त काल के जल प्रवाह की तरह उनकी गति उनसे नहीं रोकी जाएगी। समझकर जनक ने राजा दशरथ के पास सहायता के लिए दूत भेजा। (श्लोक २५८-२५९)

उदार-हृदय दशरथ ने आगत दूत को सम्मानित कर अपने पास बैठाया और बोले, 'चन्द्र से समुद्र जिस प्रकार दूर होता है उसी प्रकार दूर रहने पर भी मेरे मित्र ने जब तुम्हें मेरे पास भेजा है तो इससे तो हमारे मध्य का प्रगाढ़ बन्धुत्व ही सूचित होता है। आशा करता हूं मिथिलापति के राज्य में, नगर में, कुल में, सैन्यवाहिनी में सर्वत्र कुशल मङ्गल ही होगा? वे भी अवश्य स्वस्थ होंगे? अभी तुम्हारे आने का क्या कारण है?'

(श्लोक २६०-२६२)

दूत बोला, 'हे महाबाहु, मेरे प्रभु के अनेक आत्मीय हैं;

किन्तु स्व-आत्मा से हार्दिक मित्र तो केवल आप ही हैं। राजा जनक के सुख-दुःख को ग्रहण करने की शक्ति तो केवल आपमें ही है। अतः उनके दुःख सुख में आप ही उनकी सहायता कर सकते हैं। इस समय वे अत्यन्त विपन्न हैं। एतदर्थ अपने कुलदेव-से आपको याद किया है। वैताढ्य गिरि के दक्षिण में और चूल हिमवंत के उत्तर में अनेक जनपद हैं जहाँ भयङ्कर प्रकृति के मनुष्य निवास करते हैं। वहाँ बर्बर कुल की भाँति अर्द्ध-बर्बर देश है जो कि क्रूर आचार युक्त मानवों के कारण अत्यन्त भयङ्कर है। उसी देश के अलङ्कार रूप मयूरमाल नगर में आतरङ्गतम नामक अति प्रबल म्लेच्छ राजा राज्य करता है। उसके हजार-हजार पुत्र हैं जो स्वयं राजा बनकर शुक, मङ्कन, कम्बोज आदि देशों का भोग कर रहे हैं। इस समय उसी आतरङ्गतम ने अक्षौहिणी सेना से परिवृत होकर जनक राजा का राज्य भङ्ग कर दिया है। उन दुराचारियों ने वहाँ के चैत्यादि नष्ट कर दिए हैं। समस्त जीवन भोग कर सकें इतनी सम्पत्ति के अधिकारी होने पर भी वे आकर धर्म में विघ्न डालते हैं जिससे लगता है वे धन नहीं चाहते, धर्म नष्ट करना ही उन्हें अभीष्ट है। हे राजन्, अपने अत्यन्त प्रिय धर्म और राजा जनक की रक्षा कीजिए।' (श्लोक २६३-२७१)

दूत की बात सुनकर दशरथ ने उसी क्षण युद्ध-यात्रा के लिए रणवाद्य बजवाए। सत्पुरुष, सत्पुरुष की रक्षा में कभी विलम्ब नहीं करते। तभी राम आकर बोले, 'पिताजी, म्लेच्छों का उच्छेद करने के लिए यदि आप स्वयं जाएँगे तो राम तथा उसका अनुज यहाँ बैठकर क्या करेगा? पुत्र-स्नेह के कारण आप हमें असमर्थ समझ रहे हैं; किन्तु इक्ष्वाकु वंश के पुरुष तो जन्म से ही पराक्रमी होते हैं। एतदर्थ पिताजी आप प्रसन्नतापूर्वक यहीं रहें और म्लेच्छों के उच्छेद की आज्ञा हम लोगों को दें। कुछ ही दिनों में आप अपने पुत्रों की जयवार्ता सुनेंगे। (श्लोक २७२-२७५)

ऐसा कहकर बड़ी मुश्किल से राजा दशरथ की आज्ञा लेकर राम अनुज सहित बड़ी सेना लेकर मिथिला गए। वहाँ उन्होंने म्लेच्छों को इस प्रकार घूमते देखा जैसे महारण्य में चमरू, हस्ती, सिंह आदि घूमते रहते हैं। (श्लोक २७६-२७७)

जिनकी भुजाएं युद्ध करने के लिए खुजलाती रहती है, जो

स्वयं को विजयी समझते रहते हैं ऐसी म्लेच्छ सेना के सैनिकों ने राम की सेना में उपद्रव मचाना शुरू कर दिया। प्रबल वायु जिस प्रकार धूल उड़ाकर जगत् को अन्धा कर देती है उसी प्रकार उन म्लेच्छों ने राम के सैनिकों को स्व अस्त्रों से अन्धा कर दिया। उस समय शत्रु और उनकी सेना ने स्वयं को विजयी समझ लिया। राजा जनक स्वयं को मृत्यु के सन्निकट समझने लगे और लोग 'हाय मारे गए' ऐसा मानने लगे। (श्लोक २७८-२८०)

यह देखकर राम ने तत्काल धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाया और रणनाट्य के वाद्य की तरह उससे टङ्कार की। तदुपरान्त मृत्यु लोक में अवतरित देव की भाँति भ्रूभङ्ग किए बिना ही अल्प समय में उन्होंने कोटि-कोटि म्लेच्छों को शिकारी जिस प्रकार हरिणों को विद्ध करता है उसी प्रकार उन्हें विद्धकर डाला। (श्लोक २८१-२८२)

राजा जनक तो बेचारा गाय है, उसकी सेना मक्खी-मच्छर है, उसकी सहायता के लिए आने वाली सेना तो पहले से ही दीन हो गई है तब यह गरुड़ की भाँति आकाश को आच्छादित कर देने वाला तीर किसका है? आतरङ्ग आदि राजा परस्पर इसी प्रकार बात करते हुए राम के आगे आए। राम को देखकर विस्मय और क्रोध से भरकर वे राम पर अस्त्र वर्षा करने लगे। अष्टापद जिस प्रकार सिंह को समाप्त कर देता है उसी प्रकार राम ने दूरापाती (दूर से आकर गिरने वाले,) दृढ़ाघाती और शीघ्रभेदी तीरों से लीला मात्र में म्लेच्छों को विनष्ट कर डाला। म्लेच्छगण कौओं की तरह इधर-उधर जिधर जो जा सका भाग छूटे। जनक और पुरवासियों ने स्वस्ति की श्वांस ली। (श्लोक २८३-२८७)

राम का पराक्रम देखकर जनक ने अपनी कन्या सीता का विवाह राम से करना स्थिर किया। अतः राम के आने से जनक को दो प्रकार के लाभ हुए। एक कन्या के योग्य वर की प्राप्ति, दूसरा म्लेच्छों के उपद्रव का निवारण। (श्लोक २८८)

सीता के रूप की चर्चा सुनकर नारद कौतूहलवश उसे देखने के लिए मिथिला नगरी आए और सीधे कन्यागृह में प्रवेश किया। पीतचक्षु, पीतकेश, वृहद् उदर, हाथों में दण्ड और छत्र लिए, कौपीनधारी, कृश शरीर और दीर्घ शिखा युक्त नारद के भयङ्कर

रूप को देखकर सीता मारे भय के 'ओ माँ' कहती हुई वहाँ से उठ कर भीतरी कक्ष में चली गई। सीता का चिल्लाना सुनकर दासियाँ दौड़ती हुई आईं और नारद को घेर लिया। वे भी उनका गला, शिखा और हाथ पकड़ कर चिल्लाने लगीं। उनका चिल्लाना सुनकर शस्त्रधारी द्वाररक्षक 'मारो मारो' कहते हुए दौड़कर वहाँ आए। नारद घबड़ा गए। अतः किसी प्रकार उनके हाथों से स्वयं को मुक्त कर आकाश में उड़ गए और फिर वैताढ्य पर्वत पर जाकर वे सोचने लगे बाघिनों के मुख से गाय जिस प्रकार बड़ी कठिनता से स्वयं को मुक्त कर सकती है उसी प्रकार उन क्रीतदासियों के हाथ से आज तो मैं भाग्यवश ही मुक्त हो सका हूं। इस वैताढ्य पर्वत पर अनेक विद्याधरपति रहते हैं। इसी पर्वत की दक्षिण श्रेणी में इन्द्र के समान पराक्रमी चन्द्रगति का पुत्र युवक भामण्डल रहता है। सीता का चित्र बनाकर मैं उसे दिखाऊँ। उसे देखकर वह मुग्ध हो जाएगा। और जबरदस्ती सीता को उठा लाएगा। इससे सीता ने मेरे साथ जो व्यवहार किया है उसका प्रतिशोध भी ले सकूँगा। (श्लोक २८९-२९७)

ऐसा विचार कर नारद ने सीता के उस रूप को जिसे इसके पूर्व त्रैलोक्य में भी कहीं नहीं देखा गया चित्रित कर भामण्डल को दिखाया। उस रूप को देखते ही भामण्डल भूताविष्ट की तरह कामातुर हो उठा। विंध्य पर्वत से पकड़ कर लाए हुए हाथी की तरह उसके नेत्र की नींद जाती रही। वह आहार-पानी का परित्याग कर ध्यान निरत योगी तरह रहने लगा। भामण्डल की यह अवस्था देखकर राजा चन्द्रगति ने उससे पूछा, 'किसी चिन्ता ने तुम्हें आविष्ट कर लिया है या अस्वस्थता-पीड़ित हो या किसी ने तुम्हारी आज्ञा भङ्ग की है या अन्य किसी प्रकार तुम्हें दुःख है? तुम अपने दुःख का कारण मुझे बताओ।' पिता का कथन सुनकर भामण्डल अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लज्जा से नतमस्तक हो गया। कारण, कुलीन व्यक्ति अपने गुरुजनों के सम्मुख यह बात कैसे कह सकते हैं?

(श्लोक २९८-३०२)

किन्तु भामण्डल के मित्रों ने उसके दुःख का कारण पिता को बताया। बोले, 'नारद अङ्कित एक स्त्री का चित्र देखकर भामण्डल की यह अवस्था हो गई है।' यह सुनकर चन्द्रगति ने

शीघ्र ही ससम्मान नारद को अपने आवास पर बुलवाया और एकान्त में उनसे पूछा कि उन्होंने जिस स्त्री का चित्र अङ्कित किया है वह किसकी कन्या है ? (श्लोक ३०४-३०५)

नारद ने उत्तर दिया, 'जिस स्त्री का चित्र अङ्कित कर मैंने उसे दिखाया था वह राजा जनक की पुत्री सीता है। सीता का रूप जैसा है वैसा तो मैं अङ्कित ही नहीं कर सका। वैसा अङ्कित करना तो अन्य के लिए भी सम्भव नहीं है। कारण, वह रूप लोकोत्तर है। सीता के जैसा रूप तो मानवियों में क्या देवियों में भी नहीं देखा जाता। यहाँ तक कि नाग-कन्याएँ और गन्धर्व-कन्याओं में भी नहीं। उसके रूप की सृष्टि करने में तो देव भी असमर्थ हैं। उसका रूप तो दूर उस रूप की अनुकृति करने में देव या मनुष्य भी असमर्थ है। यहाँ तक कि स्वयं प्रजापति ब्रह्मा भी अनुरूप आकृति सर्जन करने में असमर्थ हैं। उसकी आकृति और वाणी में जो माधुर्य है, हाथ-पाँव, कण्ठ में जो लालिमा है, वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। उसके रूप को जिस प्रकार चित्रित करने में मैं असमर्थ हूं, उसी प्रकार उस रूप का वर्णन करने में भी असमर्थ हूं। फिर भी कहता हूं वह यथार्थतः भामण्डल के ही योग्य है। यह समझ कर ही मैंने भामण्डल को उसका चित्र यथासाध्य अङ्कित करके दिखाया था।' (श्लोक ३०५-३१२)

नारद की बात सुनकर चन्द्रगति भामण्डल से बोले, 'वह तुम्हारी पत्नी होगी।' इस प्रकार भामण्डल को आश्वस्त कर उन्होंने नारद को विदा दी। (श्लोक ३१३)

तदुपरान्त चन्द्रगति ने चपलमति नामक एक विद्याधर को कहा, 'तुम शीघ्र जाकर जनक को अपहरण कर ले आओ।' चन्द्रगति के आदेशानुसार वह रात्रि के समय मिथिला गया और राजा जनक को उठाकर ले आया और उनके सम्मुख उपस्थित किया। रथनुपुर के अधिपति चन्द्रगति ने तब सस्नेह जनक का आलिङ्गन कर अपने पास बैठाकर कहा, 'तुम्हारी जो लोकोत्तर रूप सम्पन्ना सीता नामक कन्या है और मेरे रूप सम्पत्ति से परिपूर्ण भामण्डल नामक जो पुत्र है—मेरी इच्छा है दोनों वैवाहिक बंधन में बंध जाएँ ताकि योग्य के साथ योग्य का मिलन हो जाए और इस समय से हम दोनों भी मित्र हो जाएँ।' (श्लोक ३१४-३१८)

यह सुनकर जनक बोले, 'मैंने अपनी कन्या को दशरथ पुत्र राम को दे दी है। अब अन्य को किस प्रकार दूँ? कारण कन्या एक बार ही दी जाती है।' (श्लोक ३११)

चन्द्रगति बोला, 'जनक, यद्यपि मैं सीता को हरण कर लाने में समर्थ हूं फिर भी हम दोनों में प्रेम बढ़े यही सोचकर तुम्हें यहाँ लाकर सीता की याचना कर रहा हूं। यद्यपि तुमने अपनी कन्या राम को देने की जबान दी है, फिर भी राम हमको पराजित किए बिना उससे विवाह नहीं कर सकता। युद्ध न हो इसका एक उपाय है। मेरे यहाँ दुस्सह तेजोमय वज्रावर्त्त और अर्णवावर्त नामक दो धनुष हैं। एक हजार देवता उसकी रक्षा करते हैं। देवों के आदेश से हमारे घर पर उनकी कुलदेवों की तरह पूजा होती है। उन दोनों धनुषों को भावी बलदेव और वासुदेव व्यवहार करेंगे। तुम धनुष ले जाओ। यदि राम उनमें से एक पर भी प्रत्यंचा चढ़ा पावे तो समझ लेना मैं राम से पराजित हो गया हूं। इसके बाद वह सीता के साथ सुखपूर्वक विवाह कर सकेगा। (श्लोक ३२०-३२४)

जनक द्वारा ऐसी प्रतिज्ञा करवाकर उसने उन्हें मिथिला पहुंचा दिया। स्वयं भी स्वपरिवार मिथिला गया। साथ में दोनों धनुष भी ले गया। वह धनुष को सभागृह में रखकर स्वयं नगर बाहर अवस्थित हो गया। (श्लोक ३२५)

जनक ने सारी बात स्वपत्नी विदेहा से कही। सुनकर शर से आहत होने की तरह विदेहा अत्यन्त दुःखी हो गई। वह रोते-रोते कहने लगी—'हे दैव, तुम अत्यन्त निर्दय हो। तुमने मेरे एकमात्र पुत्र का हरण कर लिया फिर भी तृप्त नहीं हुए। अब तुम मेरी कन्या का भी हरण करना चाहते हो। संसार में कन्याएँ स्वेच्छा से वर वरण करती हैं; किन्तु दैव योग से मेरी कन्या को अन्य की इच्छा से वर ग्रहण करना होगा। अन्य की इच्छा से की गई प्रतिज्ञा के अनुसार यदि राम इस धनुष पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सके और दूसरा यह काम करे तब तो अवश्य ही मेरी कन्या को अवांछित वर प्राप्त करना होगा। हाय दैव, अब मैं क्या करूँ?'

(श्लोक ३२६-३३०)

विदेहा का रुदन सुनकर जनक उसे आश्वस्त करते हुए बोले, 'देवी, तुम डरो मत। मैंने राम का शौर्य देखा है। यह धनुष उसके

लिए लता-तुल्य है।' (श्लोक ३३१)

विदेहा को इस प्रकार समझा-बुझाकर दूसरे ही दिन सुबह जनक के मण्डप स्थित मंच पर दोनों धनुष-रत्नों को पूजा कर रख दिया। राजा ने सीता के स्वयम्वर में विद्याधर और मनुष्य राजाओं को आमन्त्रित किया। वे आए और एक-एक कर मण्डप स्थित सिंहासन पर बैठने लगे। (श्लोक ३३२-३३३)

तदुपरान्त अलङ्कार धारण कर सखियों से घिरी हुई सीता मण्डप में आई। उसे देखकर लगा मानो कोई देवी धरती पर पैदल चल रही है। लोगों की दृष्टि के लिए अमृत तुल्य सीता ने सविता की तरह राम का ध्यान कर धनुष की पूजा की और वहीं खड़ी हो गई। (श्लोक ३३४-३३५)

नारद के कथानुसार सीता का रूप देखकर भामण्डल कामातुर हो उठा। उसी समय जनक का द्वारपाल हाथ ऊँचा करके बोलने लगा, 'हे विद्याधर और पृथ्वी के राजागण, सुनिए—राजा जनक ने घोषणा की है कि इन दोनों धनुषों में से किसी एक में जो प्रत्यंचा चढ़ा सकेगा उसे मेरी कन्या प्राप्त होगी।'

(श्लोक ३३६-३३८)

यह सुनकर एक-एक कर विद्याधरराज और पृथ्वी के राजागण धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए धनुष के निकट जाने लगे; किन्तु प्रत्यंचा चढ़ाना तो दूर वे लोग भयङ्कर सर्पों से वेष्टित, जिससे तीव्र ज्वालाएँ निकल रही थी ऐसे धनुषों का स्पर्श भी नहीं कर पाए। बहुत से धनुष से निकलने वाले अग्नि स्फुलिंग से दग्ध होकर लज्जा से मस्तक नीचा किए अपने-अपने आसन पर जा बैठे। तब सुवर्णमय कुण्डल को आन्दोलित करते हुए दशरथ पुत्र राम गजेन्द्र गति से धनुष के पास जाकर उपस्थित हुए। उस समय चन्द्रगति आदि राजा उपहास की दृष्टि से और राजा जनक सशङ्क दृष्टि से राम की ओर देखने लगे। सौमित्र के अग्रज राम ने तब निःशङ्क होकर इन्द्र जैसे वज्र का स्पर्श करता है उसी प्रकार वज्रावर्त धनुष को हाथों से स्पर्श किया। तुरन्त ही उससे निकलते सर्प एवं अग्नि ज्वालाएँ शान्त हो गई। तब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ राम ने उस धनुष को लौहपीठ पर रखकर बेत की तरह झुकाया, उस पर प्रत्यंचा चढ़ाई और कानों तक खींचकर टङ्कार की। उस

टङ्कार ने धरती और आकाश को गुंजित करते हुए पटह की तरह राम की कीर्ति प्रसिद्ध कर दी। सीता तत्क्षण अग्रसर हुई और राम के गले में वरमाला अर्पण कर दी। तब राम ने धनुष को प्रत्यंचा से मुक्त कर दिया। (श्लोक ३३९-३४८)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तदुपरान्त लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से अर्णवावर्त धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई जिसे लोग विस्मित होकर देखने लगे। तब लक्ष्मण ने प्रत्यंचा खींचकर छोड़ दी। उससे जो ध्वनि निकली उससे मानो दिक्समूह के कान बधिर हो गए। फिर लक्ष्मण ने प्रत्यंचा उतार दी। (श्लोक ३४९)

उसी समय विस्मित और चकित १८ विद्याधरों ने देव कन्याओं-सी अद्भुत सुन्दर कन्याएँ लक्ष्मण को दीं। चन्द्रगति आदि विद्याधर राजा लज्जित होकर दुःखार्त भामण्डल को लेकर स्व-स्व राज्य को लौट गए। (श्लोक ३५०-३५१)

राजा जनक ने दशरथ को संवाद भेजा। दशरथ के आने पर राजा जनक ने खूब धूमधाम से राम के साथ सीता का विवाह कर दिया। जनक के भाई कनक ने रानी सुप्रभा के गर्भ से उत्पन्न अपनी कन्या भद्रा का विवाह भरत के साथ कर दिया। तत्पश्चात् राजा दशरथ पुत्र और पुत्रवधुओं सहित प्रजाजन द्वारा कृत उत्सव से मुखरित अयोध्या नगरी लौट आए। (श्लोक ३५२-३५४)

एक बार दशरथ ने खूब धूमधाम से चैत्य महोत्सव और शान्ति स्नात्र करवाया। राजा ने स्नात्र-जल अपनी पटरानी अपराजिता (कौशल्या) को अन्तःपुर के एक वृद्ध पुरुष के द्वारा भेजा। तदुपरान्त अन्य दासियों द्वारा अन्य रानियों को भी वही स्नात्र-जल भेजा। तरुण अवस्था के कारण दासियाँ द्रुतगति से वह जल रानियों के पास ले गईं और उन्होंने भी वन्दना कर उस जल को मस्तक से लगाया। (श्लोक ३५५-३५७)

अन्तःपुर का अधिकारी वृद्ध होने के कारण शनिग्रह की भाँति धीरे-धीरे जा रहा था। अतः पट्ट महारानी को वह जल शीघ्र नहीं मिला। इससे दुःखी होकर वह सोचने लगी, राजा ने सब रानियों को स्नात्र-जल भेजकर उन पर कृपा की है; किन्तु मुझे पट्ट महारानी होते हुए भी वह जल नहीं भेजा। अतः मुझसी भाग्यहीना का जीवित रहने से क्या लाभ है? मान नष्ट हो

जाने पर जीवित रहना मृत्यु से भी अधिक कष्टकर है।
(श्लोक ३५८-३६०)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ऐसा विचार कर मृत्यु का संकल्प ले मानिनी वे भीतरी कक्ष में गई और वस्त्र द्वारा फांसी लगाने का उपक्रम करने लगीं। ठीक उसी समय राजा दशरथ वहाँ पहुंचे। मरणोन्मुख कौशल्या को उस अवस्था में देखकर भयभीत राजा ने शीघ्र ही फांसी का फन्दा खोलकर उन्हें अपनी गोद में बैठाया और पूछा, 'प्रिये, क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है जिसके कारण तुम ऐसा दुःस्साहस कर रही थी? अथवा दैवयोग से मेरे द्वारा तो तुम्हारा कोई अपमान नहीं हुआ?' तब कोशल्या गद्‌गद् कण्ठ से बोली, 'देव, आपने सभी रानियों को स्नात्र-जल भेजा; किन्तु मुझे नहीं भेजा—क्यों?'
(श्लोक ३६१-३६४)

कौशल्या के अपना वाक्य पूर्ण करने के पूर्व ही वृद्ध अधिकारी 'यह स्नात्र-जल है, इसे महाराज ने भेजा है।' कहते-कहते वहाँ उपस्थित हुआ।
(श्लोक ३६५)

राजा ने तुरन्त उस पवित्र जल से रानी का मस्तक अभिसिंचित किया। फिर वृद्ध पुरुष से पूछा, 'भद्र, तुमने आने में इतनी देर क्यों कर दी?' वृद्ध पुरुष ने उत्तर दिया, 'स्वामिन्, सर्व कार्यों में असमर्थ इसका दायित्व मेरी वृद्ध अवस्था पर ही है आप मेरी ओर देखें।'
(श्लोक ३६६-३६७)

राजा ने उसकी ओर देखा। मरणोन्मुख व्यक्ति की तरह उसका पैर हिल रहा था। मुंह से लाल गिर रही थी। दांत टूट चुके थे। ललाट पर थी बलिरेखा। भौहों के केशों से नेत्र आच्छादित थे। देह का मांस और खून सूख गया था। वह थर-थर कांप रहा था।
(श्लोक ३६८-३६९)

वृद्ध पुरुष की यह अवस्था देखकर राजा सोचने लगे—मुझे इस अवस्था को प्राप्त होने के पूर्व ही मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। इस विचार ने उनके हृदय को वैराग्य से भर दिया। फिर भी कुछ दिनों तक विषयों से विरक्त होते हुए भी वे संसार में रहे।
(श्लोक ३७०-३७१)

एक बार चार ज्ञान के अधिकारी सत्यभूति नामक महामुनि संघ सहित अयोध्या आए। राजा दशरथ पुत्रों और परिवार सहित

उन्हें वन्दना करने गए और देशना सुनने के लिए उनके निकट बैठ गए। (श्लोक ३७२-३७३)

राजा चन्द्रगति अनेक विद्याधर राजाओं और सीता की अभिलाषा से पीड़ित पुत्र भामण्डल सहित रथावर्त पर्वत पर स्थित अर्हतों की वन्दना करने गए हुए थे। वहाँ से लौटते समय वे उधर से गुजर रहे थे। आकाश पथ से सत्यभूति मुनि को देखकर नीचे उतरे। मुनि को वन्दना कर वे भी उनकी देशना सुनने के लिए उनके सम्मुख जा बैठे। (श्लोक ३७४-३७६)

भामण्डल को सीता की अभिलाषा से सन्तप्त देखकर सत्यशील सत्यभूति मुनि ने समयोपयोगी देशना दी। प्रसङ्गतः पाप से बचाने के लिए उन्होंने चन्द्रगति और पुष्पावती एवं भामण्डल और सीता का पूर्व भव सुनाया और साथ ही सीता और भामण्डल का एक साथ जन्म ग्रहण, भामण्डल का अपहरण आदि वृत्तान्त भी सुनाए। (श्लोक ३७७-३७८)

यह सुनकर भामण्डल को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। वह तत्क्षण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। कुछ देर बाद जब चेतना लौटी तो भामण्डल ने अपना पूर्व भव जैसा मुनि ने बतलाया था वैसा ही स्वयं विवृत किया। इससे चन्द्रगति आदि के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। सद्बुद्धि प्राप्त होने के कारण भामण्डल ने सीता को अपनी बहिन समझ कर प्रणाम किया। सीता ने भी भामण्डल को अपना सगा भाई, जिसका जन्म के समय ही अपहरण हो गया था, जानकर आशीर्वाद दिया। विनयी भामण्डल ने जिसके हृदय में उसी समय सौहार्द उत्पन्न हुआ था जमीन से मस्तक लगाकर राम को प्रणाम किया। (श्लोक ३७९-३८४)

चन्द्रगति ने उत्तम विद्याधरों को मिथिला भेजकर जनक और विदेहा को वहाँ बुलवाया और भामण्डल का जन्म के समय ही जिसका अपहरण हो गया था आपका पुत्र है' कहकर उसके हरण का सारा वृत्तान्त सुनाया। चन्द्रगति का विवरण सुनकर जनक और विदेहा उसी प्रकार हर्षित हो गए जिस प्रकार मेघ की गर्जना सुनकर मयूर हर्षित हो जाता है। विदेहा के स्तनों से दुग्ध की धार प्रवाहित होने लगी। अपने वास्तविक माता-पिता को पाकर भामण्डल ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने भी उसका मस्तक

चूमकर हर्ष के आंसुओं से उसे अभिषिक्त कर दिया।

(श्लोक ३८५-३८८)

चन्द्रगति विरक्त हो गए अतः भामण्डल को राज्य देकर सत्यभूति मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। तब भामण्डल सत्यभूति और चन्द्रगति मुनियों को, जनक, विदेहा (अपने माता-पिता) और राजा दशरथ को प्रणाम कर अपने राज्य को लौट गया। तब राजा दशरथ ने भी सत्यभूति मुनि को प्रणाम कर अपना पूर्वभव जानना चाहा। मुनि ने कहना प्रारम्भ किया—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

'तुम सेनपुर में भावन नामक महामना वणिक थे। तुम्हारे दीपिका नामक पत्नी से उपास्ति नामक एक कन्या थी। उसने उस जन्म में साधुओं के साथ द्वेषपूर्ण व्यवहार किया जिसके फल-स्वरूप तिर्यंचादि महाकष्टदायी योनियों में दीर्घकाल भ्रमण करती रही।

(श्लोक ३८९-३९३)

'अनुक्रम से तुमने चन्द्रपुर के धन्य नामक वणिक की सुन्दरी नामक पत्नी के गर्भ मे वरुण नामक पुत्र रूप में जन्म लिया। उस भव में प्रकृति से उदार होने के कारण तुमने साधुओं को श्रद्धापूर्वक खूब दान दिया। मृत्यु के पश्चात् वहाँ से तुम धातकी खण्ड के उत्तर कुरु में युगलिक रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ से देवलोक में जन्मे। देवलोक से च्युत होकर तुमने पुष्कलावती विजय में पुष्कला नगरी के राजा नन्दिघोष और रानी पृथ्वी देवी के पुत्र नन्दिवर्द्धन के रूप में जन्म ग्रहण किया। राजा नन्दिघोष तुम्हें राज्य देकर यशोधर मुनि से दीक्षित हो गए। मृत्यु के पश्चात् वे ग्रैवेयक विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए और तुम श्रावक धर्म पालन कर मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुए।

(श्लोक ३९४-३९९)

'वहाँ से च्युत होकर तुम पूर्व विदेह के पर्वत की उत्तरी श्रेणी के अलङ्कार रूप शशिपुर नामक नगर में विद्याधरपति रत्नमाली की विद्युल्लता नामक पत्नी के गर्भ से दीर्घबाहु सूर्यञ्जय के रूप में उत्पन्न हुए।

(श्लोक ४००-४०१)

'एक बार रत्नमाली गर्वित विद्याधर वज्रनयन का दमन करने के लिए सिंहपुर गए। वहाँ वे बाल, वृद्ध, स्त्री, पशु और उपवन सहित समस्त नगर को जलाने लगे। उसी समय उपमन्यु

नामक पुरोहित का जीव जो कि उसी समय सहस्रार देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुआ था वहाँ आया और बोला, 'हे महानुभाव ऐसा उग्र पाप मत करिए। आप पूर्व भव में हरिनन्दन नामक राजा थे। उसी समय विवेकपूर्वक आपने प्रतिज्ञा की थी कि आप मांस ग्रहण नहीं करेंगे। तदुपरान्त आपने मेरे (पुरोहित उपमन्यु) कहने से प्रतिज्ञा भङ्ग कर दी। उपमन्यु की स्कन्द नामक एक व्यक्ति ने हत्या कर दी। मृत्यु के पश्चात् वह हाथी बना। उसी हाथी को राजा भूरिनन्दन पकड़ कर ले आए। युद्ध में उस हाथी की मृत्यु हुई। मृत्यु के पश्चात् वह राजा भूरिनन्दन और उनकी पत्नी गांधारी के अरिसूदन नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। यहाँ उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ अतः उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। मृत्यु के पश्चात् वह सहस्रार देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ, वही मैं हूं। (श्लोक ४०२-४०९)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

'राजा भूरिनन्दन ने मृत्यु के पश्चात् अजगर के रूप में एक वन में जन्म ग्रहण किया। वहाँ दावानल में दग्ध होकर वे नरक गए। पूर्व स्नेह के कारण मैंने नरक में जाकर उन्हें उपदेश दिया। वहाँ से निकलकर आप प्रतिमाली नामक राजा हुए। पूर्व भव में आपने मांस-त्याग की प्रतिज्ञा भङ्ग की थी उसका इतना दुःखदायक परिणाम हुआ। अतः अब फिर वैसा ही अनन्त दुःखात्मक परिणामयुक्त नगरदाह का कार्य न करें। (श्लोक ४१०-४१२)

'इस प्रकार अपना पूर्वभव अवगत कर रत्नमाली ने युद्ध से विरक्त होकर तुम्हारे (सूर्यञ्जय का) पुत्र कुलनन्दन को राज्य देकर अपने पुत्र सूर्यञ्जय (तुम) सहित तिलकसुन्दर आचार्य से दीक्षा ग्रहण कर ली। दोनों ही मुनिधर्म पालन कर मृत्यु के पश्चात् महाशुक्र देवलोक में उत्तम देवरूप में उत्पन्न हुए।

(श्लोक ४१३-४१५)

'वहाँ से च्युत होकर सूर्यञ्जय का जीव तुम राजा दशरथ बने और रत्नमाली का जीव राजा जनक बना। पुरोहित उपमन्यु सहस्रार देवलोक से च्युत होकर जनक का छोटा भाई कनक बना और नन्दिवर्द्धन के भव में जो जीव नन्दिघोष नामक तुम्हारा पिता था वह ग्रैवेयक विमान से च्युत होकर मैं सत्यभूति बना।

(श्लोक ४१६-४१७)

इस प्रकार अपना पूर्वभव अवगत करने से राजा दशरथ के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतः वे मुनि को बन्दना कर राज्यभार राम को देने के लिए प्रासाद में गए और अपनी पत्नियों पुत्रों, मन्त्रियों को बुलाकर मधुर-अक्षरा बाणी में सबसे दीक्षा लेने की अनुमति चाही। (श्लोक ४१८-४१९)

भरत उसी समय पिता को नमस्कार कर बोले, 'पिताजी, मैं आपके साथ सर्वविरति रूप धर्म ग्रहण करूँगा। आपके बिना मैं घर पर नहीं रहूंगा। यदि रहूंगा तो दो प्रकार से वह मेरे लिए कष्टकर होगा। एक आपका बिरह, दूसरा सांसारिक संक्लेश।' (श्लोक ४२०-४२१)

यह सुनकर कैकेयी डर गई। वह सोचने लगी, यदि ऐसा ही हुआ तो मेरे पति भी नहीं रहेंगे, पुत्र भी नहीं रहेगा। अतः वह बोली, 'स्वामिन्, आपको अवश्य ही याद होगा, स्वयम्वर के समय मैंने आपका सारथ्य किया था। उसी समय आपने मुझे एक बर देने को कहा था। अब वह वर दीजिए क्योंकि आप सत्यप्रतिज्ञ हैं महात्माओं की प्रतिज्ञा पत्थर पर खोदी रेखा की तरह होती है।' (श्लोक ४२२-४२४)

दशरथ बोले, 'मैंने जो बर देने को कहा था वह मुझे याद है। एतदर्थ मेरी दीक्षा निषेध के सिवाय जो कुछ मेरा है मांग लो।' (श्लोक ४२५)

तब कैकेयी बोली. 'हे नाथ यदि आप स्वयं दीक्षित हो रहे हैं तो पूरा राज्य भरत को दे दीजिए।' दशरथ ने उत्तर दिया, 'यह राज्य तुम अभी ले लो।' तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण को बुलाकर कहा, 'वत्स, एक बार कैकेयी ने मेरा सारथ्य किया था। उस समय मैंने उसे वर मांगने को कहा था। उसी बर में उसने आज भरत के लिए राज्य मांगा है।' (श्लोक ४२६-४२८)

यह सुनकर राम आनन्दित होकर बोले, 'तात, मेरी माँ ने उस बर में मेरे पराक्रमी भाई भरत के लिए राज्य मांगा है यह उचित ही हुआ है। आप जो इस विषय में मेरा परामर्श चाह रहे हैं यह तो आपकी उदारता है; किन्तु मुझे इससे यह सोचकर दुःख हो रहा है कि लोग इससे मुझे अविनयी समझ सकते हैं। हे तात, आप सन्तुष्ट होकर यह राज्य चाहे जिसे खुशी से दे सकते हैं।

मैं तो आपकी आज्ञा को धारण करने वाला भृत्य मात्र हूं। मेरा निषेध करने का या सम्मति देने का कोई अधिकार ही नहीं है। जो भरत है वही मैं हूं। हम दोनों आपके लिए समान हैं, अतः आप सहर्ष भरत को राजपद पर अभिषिक्त करें।'

(श्लोक ४२९-४३२)

राम की बात सुनकर दशरथ विस्मित और विशेष प्रीतिमय हो गए और तदनुरूप करने के लिए मन्त्रियों को आज्ञा दी; किन्तु भरत बीच में ही बोल उठे, 'तात आपके साथ दीक्षित होने की बात मैंने पहले ही आपको कह दी थी। अतः अन्य के कहने से अन्यथा करना किसी भी प्रकार उचित नहीं है।' (श्लोक ४३३-४३४)

दशरथ बोले, 'वत्स, तुम मेरी प्रतिज्ञा को व्यर्थ मत करो। तुम्हारी माँ को तो मैंने बहुत पहले ही वरदान दे दिया था जो कि दीर्घकाल से धरोहर की भाँति मेरे पास रक्षित था। उस वर में वह आज तुम्हारे लिए राज्य चाह रही है। इसलिए पुत्र, तुम्हारी माँ और मेरी आज्ञा को अन्यथा करना तुम्हें उचित नहीं है।'

(श्लोक ४३५-४३६)

तब राम भरत से बोले, 'भाई, यद्यपि तुम्हारे मन में राज्य प्राप्ति की बिन्दु मात्र भी इच्छा नहीं है फिर भी पिताजी के कथन को सत्य करने के लिए तुम यह राज्य ग्रहण करो।' (श्लोक ४३७)

राम की यह बात सुनकर भरत के नेत्रों में जल भर आया। वे राम के चरणों में गिर पड़े और करबद्ध होकर गद्‌गद् कण्ठ से बोले, 'हे पूज्य, पिताजी और आप जैसे महामना के लिए मुझे राज्य देना उचित है; किन्तु मुझ-से व्यक्ति को तो वह ग्रहण करना उचित नहीं है। क्या मैं राजा दशरथ का पुत्र नहीं हूं? या आप जैसे अग्रज का अनुज जिस पर मैं गर्व कर सकूं?'

(श्लोक ४३८-४४०)

यह सुनकर राम दशरथ से बोले, 'पिताजी, मेरे यहाँ रहते भरत राज्य ग्रहण नहीं करेगा। एतदर्थ मैं वन में वास करने जा रहा हूं।' ऐसा कहकर पिता की आज्ञा ली और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर हाथ में धनुष और कन्धे पर तूणीर लिए वे वहाँ से निकल गए। (श्लोक ४४१-४४३)

भरत उच्च स्वर से रोने लगे। राम को वन में जाते देख-

कर अत्यन्त स्नेहवश दशरथ भी बार-बार मूर्च्छित होने लगे।

(श्लोक ४४३)

राम वहां से निकल कर मां कौशल्या के पास जाकर बोले, 'मां, मैं जैसा तुम्हारा पुत्र हूं, भरत भी वैसा ही तुम्हारा पुत्र है। अपनी प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए पिताजी ने उसे राज्य दिया है; किन्तु मैं यदि यहां रहूंगा तो वह राज्य ग्रहण नहीं करेगा। इसलिए मेरा वन जाना ही उचित है। आप मेरे वियोग में कातर मत होइएगा।'

श्लोक ४४४-४४६)

राम की बात सुनकर कौशल्या मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी। दासियों ने चन्दन जल के छींटे देकर उन्हें स्वस्थ किया। तब वे बोली, 'किसने मुझे स्वस्थ किया? किसने मुझे बचाया? मेरी सुखपूर्वक मृत्यु के लिए तो मूर्च्छा ही ठीक थी। क्योंकि जीवित रहकर मैं राम का विरह कैसे सह सकूंगी? अरे कौशल्या, तेरे पति दीक्षित हो रहे हैं, तेरा पुत्र वन जा रहा है, यह सुनकर भी तेरी छाती नहीं फट रही है? लगता है वह वज्र की बनी हुई है।'

(श्लोक ४४७-४४९)

तब राम मां को सान्त्वना देकर बोले, 'मां मेरे पिताजी की पत्नी होकर आप साधारण स्त्री की तरह यह क्या कह रही हैं? सिंहनी-शावक वन में अकेला ही विचरण करता है फिर भी सिंहनी स्वस्थ रहती है, कभी भी विचलित नहीं होती। मां, पिताजी द्वारा दिया गया वरदान पितृऋण की भांति होता है। उस ऋण से उन्हें मुक्त करना क्या मेरा कर्त्तव्य नहीं है? यदि मैं यहां रहूं, भरत राज्य न ले तब पिताजी जिस प्रकार ऋणमुक्त होंगे?'

(श्लोक ४५०-४५२)

इस प्रकार युक्तियुक्त वाक्यों से कौशल्या को समझाकर और अन्य माताओं को प्रणाम कर राम अयोध्यापुरी से निकल गए।

(श्लोक ४५३)

सीता तब दूर से राजा दशरथ को प्रणाम कर कौशल्या के पास गई और राम के साथ वन जाने की अनुमति मांगी।

(श्लोक ४५४)

तब कौशल्या पुत्री की तरह उसे अपने गोद में बैठाकर और उष्ण अश्रुजल से उसे सिंचित करती हुई बोली, 'वत्से, विनीत

राम पिता की आज्ञा से वन जा रहा है। उस नरसिंह पुरुष के लिए वह सब कुछ कठिन नहीं है; किन्तु तुम तो जन्म से ही देवी की तरह उत्तम वाहनादि से यात्रा करती थी। तब क्या पैदल चलने का कष्ट सहन कर सकोगी? कमल के अन्तर्भाग की तरह तुम्हारी देह कोमल है। जब तुम धूप आदि से पीड़ित होगी तब तुम्हारे पति को भी कष्ट होगा। फिर भी मैं तुम्हें पति के साथ जाने और अकारण कष्ट सहने के लिए जैसे निषेध नहीं कर पा रही हूं कारण तुम पति का अनुगमन कर रही हो, उसी प्रकार सम्मति भी नहीं दे पा रही हूं।' (श्लोक ४५५-४५९)

कौशल्या का कथन सुनकर प्रातःकालीन विकसित कमल की तरह प्रफुल्ल शोक-रहित सीता ने कौशल्या को प्रणाम कर कहा, 'माँ, बादल के पीछे जिस प्रकार बिजली सर्वदा रहती है उसी प्रकार मैं राम के साथ जा रही हूं। राह में यदि कोई तकलीफ हुई तो आपके प्रति मेरी जो भक्ति है वह उसे दूर कर देगी।' ऐसा कहकर कौशल्या को पुनः प्रणाम कर आत्मा में जिस प्रकार आत्माराम का ध्यान किया जाता है उसी प्रकार राम का ध्यान करती हुई वह भी पुरी से निकल गई। (श्लोक ४६०-४६२)

मार्गदर्शक - आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

सीता को राम के साथ वन जाते देख नगरवासियों का हृदय शोक से भर गया। अत्यन्त गद्‌गद् कण्ठ से वे बोलने लगे—'ऐसी प्रगाढ़ पतिभक्ति के लिए सीता आज से, जो रमणियां पति को देव-तुल्य मानती है उनके लिए दृष्टान्त रूप हो गई है। इस उत्तम सती को कष्ट का जरा भी भय नहीं है। इसने अपने शील से उभय कुल को पवित्र किया है।' (श्लोक ४६३-४६५)

राम के वनगमन की बात सुनकर लक्ष्मण की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। वे मन ही मन सोचने लगे मेरे पिता दशरथ स्वभाव के अत्यन्त सरल हैं; किन्तु स्त्रियां स्वभाव से ही सरल नहीं होतीं। नहीं तो कैकेयी ने इतने दिनों तक वर न मांग कर आज ही वर क्यों मांगा? पिताजी ने भरत को राज्य दिया। और अपने ऋण का बोझ उतार कर पितरों को ऋण-भय से मुक्त कर दिया; किन्तु मैं क्यों नहीं अब निर्भीक होकर अपना क्रोध शान्त करने के लिए कुलाधम भरत से राज्य छीनकर राम को लौटा दूं; किन्तु नहीं। राम सत्यवादियों में श्रेष्ठ हैं। अतः तृणवत्

परित्यक्त राज्य को वे किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करेंगे और मेरे इस कार्य से पिताजी को भी कष्ट होगा। पिताजी को दु:ख देना मुझे अभीष्ट नहीं है। अत: भरत ही राज्य करें, मैं एक अनुचर की भांति राम के साथ वन जाता हूं। (श्लोक ४६६-४७१)

ऐसा विचार कर सौमित्र पिता की आज्ञा लेकर अपनी माता सुमित्रा के पास गए। मां को प्रणाम कर बोले, 'मां राम वन जा रहे हैं इसलिए मैं भी उनका अनुगमन करूंगा कारण जिस प्रकार समुद्र मर्यादा बिना नहीं रहता उसी प्रकार सौमित्र भी राम के बिना नहीं रह सकता।' (श्लोक ४७२-४७३)

लक्ष्मण की बात सुनकर हृदय में धैर्य धारण कर सुमित्रा बोली, 'वत्स, राम तो बहुत पहले ही मुझे प्रणाम कर गया है अत: विलम्ब मत करो. शीघ्र जाओ, नहीं तो तुम उससे बहुत दूर रह जाओगे।' (श्लोक ४७४-४७५)

मां की बात सुनकर लक्ष्मण मां को प्रणाम कर बोले, मां

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तुम धन्य हो। तुम्ही मेरी वास्तविक मां हो।' (श्लोक ४७६)

फिर लक्ष्मण कौशल्या को प्रणाम करने गए। कौशल्या को प्रणाम कर बोले, 'मां, मेरे अग्रज अकेले वन गए हैं इसलिए मैं भी उनके साथ जाने को उत्सुक हुआ हूं, आप मुझे आज्ञा दीजिए।

(श्लोक ४७६-४७७)

ऐसा सुनकर अश्रु प्रवाहित करती हुई कौशल्या बोली, 'वत्स, मैं भाग्यहीन हूं, मेरी मृत्यु निश्चित है, कारण तुम भी अब मेरा परित्याग कर वन को चले जा रहे हो। लक्ष्मण, राम के विरह से पीड़ित मेरे हृदय को आश्वस्त करने के लिए तुम यहीं रहो।'

(श्लोक ४७८-४७९)

लक्ष्मण बोले, 'मां, राम की माता होकर भी आप इतनी अधीर क्यों हो रही हैं? मेरे अग्रज बहुत पहले चले गए हैं अत: मैं जल्द ही उनके पीछे जाऊंगा। एतदर्थ आप मुझे रोकने की चेष्टा न करें। मैं तो सर्वदा ही राम के अधीन हूं।' ऐसा कहकर उन्हें प्रणाम कर हाथ में धनुष और पीठ पर तूणीर बांधकर लक्ष्मण शीघ्र राम और सीता के पास जाकर उपस्थित हो गए। तदुपरांत तीनों ही मानो वन में विहार करने जा रहे हैं इस प्रकार प्रफुल्लमना नगर से निर्गत हो गए। (श्लोक ४८०-४८३)

अपने प्राणों के समान राम, लक्ष्मण और सीता को नगर-वासियों ने जब नगर से बाहर जाते देखा तो वे भी अत्यन्त व्याकुल होकर उनके पीछे दौड़ने लगे और क्रूर कैकेयी को भला-बुरा कहने लगे। राजा दशरथ और अन्तःपुर का परिवार स्नेह-रज्जु से बंधे हुए रोते-रोते राम के पीछे चलने लगे। जब राजा और प्रजाजन राम के पीछे नगर से बाहर निकल गए तो लगा मानो समस्त अयोध्या सूनी हो गई। (श्लोक ४८४-४८७)

राम ने माता-पिता को समझा-बुझाकर किसी प्रकार नगर को वापिस भेजा। प्रेम भरे समुचित कथनों द्वारा पुरवासियों को भी लौटाया। फिर शीघ्रतापूर्वक लक्ष्मण और सीता सहित अग्रसर हुए। (श्लोक ४८८-४८९)

राह में प्रत्येक नगर के प्रत्येक ग्राम के अधिवासी वृद्ध पुरुषों ने राम को अपने यहाँ रहने का अनुरोध किया; किन्तु उन सभी की प्रार्थना अस्वीकार कर राम आगे बढ़ने लगे। (श्लोक ४९०)

उधर भरत ने राज्य लेना अस्वीकृत कर दिया। वास्तव में सहोदर-विरह को सहन करने में असमर्थ बने वे माँ कैकेयी और अपने ऊपर दोषारोपण करने लगे। (श्लोक ४९१)

दीक्षा-ग्रहण को उत्सुक राजा दशरथ ने राम को राज्य ग्रहण करने के लिए लक्ष्मण सहित लौटा लाने के लिए सामन्त और मन्त्रियों को भेजा। (श्लोक ४९२)

राम पश्चिम की ओर जा रहे थे। सामन्तगण अति शीघ्रता से उनके निकट पहुंचे और उन्हें अयोध्या लौटने के लिए राजा दशरथ का आदेश सुनाया। सामन्तों एवं मन्त्रियों के विनीत अनुनय-विनय के पश्चात् भी राम लौटे नहीं। कारण, महान् पुरुषों की प्रतिज्ञा पर्वत-सी अटल होती है। राम उन्हें बार-बार लौट जाने को कह रहे थे; किन्तु राम को लौटा ले जाने की आशा में वे उनके पीछे-पीछे चलने लगे। (श्लोक ४९३-४९५)

राम, लक्ष्मण और सीता अग्रसर होते हुए विन्ध्याटवी में वन्य पशुओं के निवास रूप एवं निर्जन और वृक्ष सम्बद्ध प्रदेश में पहुंच गए। वहाँ जाते हुए राह में गम्भीर आवर्त्तयुक्त विपुल प्रवाह वाली गम्भीरा नामक नदी आई। उसके तट पर खड़े होकर राम ने सामन्तों से कहा, आप लोग यहीं से लौट जाएँ। कारण

सामने का पथ महान कष्टदायक है। आप पिताजी को मेरा कुशल समाचार दीजिएगा और भरत की पिताजी और मेरे समान समझ कर सेवा करिएगा।' (श्लोक ४९६-४९९)

'हम राम के चरणों की सेवा के योग्य नहीं हैं, हम लोगों को धिक्कार है'—ऐसा कहते हुए अश्रुजल से वस्त्रों को भिगोते हुए सामन्तगण बड़े कष्ट से लौटे। (श्लोक ५००)

जिसे पार करना कठिन है ऐसी नदी को तब राम, लक्ष्मण और सीता ने पार किया। सामन्तों ने अश्रु भरे नयनों से उन्हें पार जाते हुए देखा। जब वे और दिखलाई नहीं पड़े तब अत्यन्त दुःखी होकर वे अयोध्या लौट गए और सारा समाचार राजा दशरथ को सुनाया। सुनकर राजा भरत से बोले—'वत्स! राम और लक्ष्मण जब नहीं लौटे हैं तो इस राज्य को अब तुम्हीं ग्रहण करो। मेरी दीक्षा में अब और विघ्न मत डालो।' भरत बोले—'पिताजी! मैं कदापि राज्य ग्रहण नहीं करूँगा। मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा और अपने ज्येष्ठ भ्राता को प्रसन्न कर लौटा लाऊँगा।' (श्लोक ५०३-५०४)

उसी समय कैकेयी वहाँ उपस्थित हुई और बोली—'स्वामिन्, आपने सत्य की रक्षा के लिए भरत को राज्य दिया है; किन्तु आपके औचित्यवेत्ता इस पुत्र ने उसे ग्रहण नहीं किया। इससे मैं और इसकी अन्य माताएँ दुःखी हो रही हैं। विचार रहित मुझ पापिनी की मूर्खता के कारण ऐसा घटित हुआ है। हाय! आपके पुत्रवान् होते हुए भी यह राज्य अब राजा-विहीन हो गया है। कौशल्या, सुमित्रा और सुप्रभा का दुःखद क्रन्दन सुनकर मेरी छाती फटी जा रही है। हे नाथ! इसलिए आज्ञा दीजिए मैं भी भरत के साथ जाकर वत्स राम और लक्ष्मण को लौटा लाने का प्रयत्न करूँ।'

(श्लोक ५०५-५०९)

राजा दशरथ के सानन्द आज्ञा देने पर कैकेयी भरत और मन्त्रियों को संग लेकर शीघ्रतापूर्वक राम के पास जाने को निकल पड़ी। कैकेयी और भरत छह दिनों के मध्य ही वहाँ पहुंच गए। वहाँ उन्होंने राम, लक्ष्मण और सीता को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा। उन्हें देखते ही कैकेयी रथ से नीचे उतरी और 'हे वत्स, हे वत्स' कहती हुई बार-बार राम का मस्तक चूमने लगी। सीता और लक्ष्मण ने उनके चरण-कमलों में प्रणाम किया। वह उन्हें दोनों

भुजाओं में भरकर उच्च स्वर में रोने लगी। भरत ने आँखों में अश्रु भरकर राम के चरणों में प्रणाम किया। खेद रूपी विष के सर्वाङ्ग में व्याप्त हो जाने के कारण वे तत्क्षण मूच्छित हो गए। राम के द्वारा उनकी चेतना के लौटने पर सुसंस्कारी भरत इस प्रकार बोले, 'हे भाई, अज्ञात व्यक्ति की तरह मुझे त्यागकर आप यहां क्यों चले आए ? माँ ने जो गलती की उस अपराध का कलङ्क मेरे मस्तक पर लगा हुआ है कि भरत राज्यलोभी है। वह कलङ्क आप मुझे अपने साथ वन ले जाकर दूर करें। ऐसा करने पर मेरा कुलीनता-नाशक शल्य नष्ट हो जाएगा। आपके राजा होने पर सौमित्र आपके मन्त्री बनेंगे, मैं आपका द्वारपाल और शत्रुघ्न छत्रधारक होगा।'

(श्लोक ५१०-५१८)

भरत के ऐसा कहने पर कैकेयी अश्रु विसर्जित करती हुई बोली—'वत्स ! तुम्हारे भाई ने जैसा कहा है तुम वही करो। कारण, तुम भ्रातृवत्सल हो। इसमें न तुम्हारे पिता का दोष है, न भरत का। यह समस्त अपराध तो स्त्री स्वभाव सुलभ कैकेयी का है। कुलटा स्वभाव को छोड़कर स्त्रियों में जितने भी दोष होते हैं उन सब दोषों की खान मैं ही हूं। पति को, पुत्र को, उनकी माताओं को दुःख पहुंचाने वाला कार्य मैंने किया है। उसके लिए पुत्र, मुझे क्षमा करो। कारण, तुम भी मेरे पुत्र हो।' (श्लोक ५१९-५२२)

तब राम अश्रु भरे नयनों से बोले—'माँ ! मैं राजा दशरथ का पुत्र होकर प्रतिज्ञा कैसे भंग करूँ ? पिता ने भरत को राज्य दिया उसमें मैंने अपनी सम्मति दे दी। अब जबकि हम दोनों जीवित हैं तो अन्यथा कैसे हो सकता है ? एतदर्थ हम दोनों की आज्ञा से भरत का राजा होना उचित है। पिताजी की तरह भरत के लिए मेरी आज्ञा भी अनुल्लंघनीय है।' (श्लोक ५२३-५२५)

ऐसा कहकर सीता द्वारा लाए जल से समस्त सामन्तों के सम्मुख राम ने वहीं भरत का राज्याभिषेक किया। तदुपरान्त कैकेयी को प्रणाम और भरत को मधुर सम्भाषण से आश्वस्त कर राम ने दोनों को अयोध्या लौटा दिया और स्वयं दक्षिण की ओर प्रस्थान कर गए। (श्लोक ५२६-५२७)

अयोध्या आकर भरत ने पिता और ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा से अखण्ड राज्यभार ग्रहण किया। दशरथ ने भी बहुत से परिजनों

सहित सत्यभूति मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। अग्रज के वनवास करने के कारण सद्बुद्धि भरत दुःख भरे हृदय से अर्हतों की पूजा में निरत रहते हुए एक भृत्य की भाँति राज्य की रक्षा करने लगे।

(श्लोक ५२८-५३०)

पृथ्वी के देव रूपी राम लक्ष्मण व सीता सहित राह में पड़ने वाले चित्रकूट को लांघकर कुछ ही दिनों में अवन्ती देश के एक भाग में जा पहुंचे। (श्लोक ५३१)

चतुर्थ सर्ग समाप्त

पंचम सर्ग

राह में चलते-चलते सीता क्लान्त हो गई। उसे विश्राम देने के लिए राम यक्षपति कुबेर की तरह एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गए। फिर चारों ओर देखकर लक्ष्मण से बोले, 'लगता है कि किसी भय से यह स्थान हाल ही में जनहीन हुआ है। कारण, उद्यान की मिट्टी अभी सूखी नहीं है। गन्ने के खेतों में अभी भी गन्ना लगा हुआ है। खलिहानों में अन्न उसी भाँति भरा हुआ है। इससे लगता है कि कुछ दिन पूर्व ही यह स्थान जनहीन हुआ है।' (श्लोक १-३)

उसी समय एक व्यक्ति को उधर आता देखकर राम ने उससे पूछा—'भद्र ! बता सकते हो यह स्थान अचानक जनशून्य क्यों हो गया ? तुम भी यहाँ से कहीं जा रहे हो ?' प्रत्युत्तर में वह बोला—

'इस देश का नाम अवन्ती है। इसकी राजधानी का नाम भी अवन्ती है। वहाँ सिंह-सा दुस्सह सिंहोदर नामक एक राजा राज्य करता है। उनके राज्य में दशाङ्गपुर नामक एक नगर है। वहाँ वज्रकरण नामक सिंहोदर के एक सामन्त राज्य करते हैं। एक बार वज्रकरण शिकार करने गए। वहाँ उन्होंने प्रीतिवर्द्धन नामक मुनि को कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित देखा। उन्होंने पूछा—'इस घोर अरण्य में आप वृक्ष की भाँति क्यों खड़े हैं ?' प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा, 'आत्महित के लिए।' वज्रकरण ने पुनः पूछा, 'इस अरण्य में अनाहार रहकर आप अपना आत्महित कैसे करते हैं ?' योग्य अधिकारी समझकर मुनि ने उन्हें आत्महित का उपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर विचक्षण वज्रकरण ने तत्क्षण श्रावक धर्म अङ्गीकार कर लिया और यह नियम लिया कि वे अर्हत् देव और

गुरु जैन मुनि के अतिरिक्त किसी को नमस्कार नहीं करेंगे।
(श्लोक ४-११)

मुनि का पुनः वन्दन कर वज्रकरण दशाङ्गपुर लौट गए। श्रावक धर्म का पालन करते हुए उन्होंने एक दिन सोचा, मैंने देव गुरु के अतिरिक्त किसी को भी नमस्कार न करने का नियम लिया है। उस नियम के लिए यदि मैं सिंहोदर को नमस्कार नहीं करूँगा तो वह मुझसे रुष्ट हो जाएगा। अतः इसके लिए कोई उपाय करना चाहिए। यह सोचकर उस बुद्धिमान् सामन्त ने अपनी अँगूठी में मुनि सुव्रत स्वामी की मणिमय मूर्ति स्थापित करवाई। तदुपरान्त उस अँगूठी में स्थित मुनि सुव्रत मूर्ति को नमस्कार करके सिंहोदर को प्रतारित करने लगे। अति बलवान व्यक्ति के सम्मुख माया ही कार्य करती है। वज्रकरण की इस छलनीति की बात किसी ने जाकर सिंहोदर से कह दी। दुष्ट हमेशा छुरी की तरह सबका अनिष्ट ही करता रहता है।
(श्लोक १२-१५)

'यह सुनकर सिंहोदर वज्रकरण पर कुपित होकर सर्प की तरह फुफकारने लगा। यह बात मैंने जाकर वज्रकरण को कह दी। वज्रकरण बोला, 'वे मुझ पर कुपित हैं तुमने यह बात कैसे जानी?' प्रत्युत्तर में मैंने कहा, 'कुन्दनपुर में समुद्रसङ्गम नामक एक श्रावक रहते हैं, मैं उनका पुत्र विद्युदङ्ग हूं। मेरी माँ का नाम यमुना है। यौवनावस्था प्राप्त होने पर मैं बहुत सारा द्रव्य लेकर क्रय-विक्रय के लिए उज्जयिनी नगरी में गया। वहाँ मृग-नयनी कामलता नामक एक वेश्या को देखा। उसे देखते ही मैं काम के वशीभूत हो गया। एक ही रात इसके पास रहूंगा यह निश्चित कर मैं उसके पास गया और उससे समागम किया; किन्तु जाल में जैसे मृग आबद्ध हो जाता है उसी प्रकार मैंने उसके आसक्ति जाल में आबद्ध होकर पिताजी की जीवन भर की कमाई छह महीने में नष्ट कर दी।
(श्लोक १६-३२)

'एक दिन कामलता मुझसे बोली, 'सिंहोदर राजा की पटरानी श्रीधरा के जैसे कुण्डल है वैसे कुण्डल मुझे लाकर दो।' मैं सोचने लगा—अब जबकि मेरे पास बिल्कुल अर्थ नहीं है तब वैसे कुण्डल मैं कैसे बनवा सकूँगा? अतः उसके कुण्डलों को चोरी कर लाना ही अच्छा होगा। ऐसा सोचकर एक दिन मैं साहसपूर्वक

सेंध लगाकर राजा के महल में प्रवेश कर गया। उसी समय श्रीधरा और सिंहोदर में जो बातचीत हो रही थी उसे मैं सुन सका। श्रीधरा ने पूछा, 'हे नाथ, आज आपको नींद क्यों नहीं आ रही है? आप इतने उद्विग्न क्यों हैं?' सिंहोदर ने उत्तर दिया, 'देवी, जब तक मैं वज्रकरण की (जो कि मुझे प्रणाम नहीं करता) हत्या नहीं करूंगा तब तक मुझे नींद कैसे आएगी? कल सुबह ही मित्र, पुत्र बन्धु-बान्धव सहित मैं वज्रकरण की हत्या करूंगा तभी मैं सो पाऊंगा उसके पूर्व नहीं।' उसकी यह बात सुनकर स्वधर्मी प्रेम के कारण कुण्डल चोरी किए बिना ही मैं यह संवाद आपको देने के लिए भागता हुआ आया हूं। (श्लोक २४-२९)

'यह संवाद सुनकर वज्रकरण ने अपने नगर को अन्न और तृण से पूर्ण कर लिया। तभी शत्रु सेना के पैरों से उड़ती हुई धूल आकाश में दिखाई पड़ी और चन्दन वृक्ष को जैसे सांप घेर लेता है उसी प्रकार अल्प समय में ही दशाङ्गपुर नगर को सिंहोदर ने घेर लिया। तदुपरान्त एक दूत के साथ कहला भेजा, 'ओ कपटी, अंगुली में अंगूठी धारण कर तूने बहुत दिनों तक मुझे प्रतारित किया। अतः अंगुली से अंगूठी उतार कर आओ और मुझे प्रणाम करो। ऐसा नहीं करने पर तुम सपरिवार शीघ्र ही यमराज के पास पहुंच जाओगे।' (श्लोक ३०-३३)

'प्रत्युत्तर में वज्रकरण ने कहला भेजा, 'मैंने नियम लिया है कि मैं अर्हत् और साधु के अतिरिक्त किसी को नमस्कार नहीं करूंगा। इसलिए मैंने ऐसा किया है। मुझे पराक्रम का बिलकुल अभिमान नहीं है; किन्तु धर्म का अभिमान है। अतः नमस्कार के अतिरिक्त मेरा जो कुछ भी है आप यथारुचि ग्रहण करें और मुझे एक धर्म द्वार दें जिससे धर्म के लिए मैं अन्यत्र चला जाऊं। धर्म ही मेरा धन है। (श्लोक ३४-३६)

'किन्तु सिंहोदर ने यह बात स्वीकार नहीं की। कारण अभिमानी पुरुष धर्म-अधर्म को कुछ नहीं समझते। तभी से सिंहोदर वज्रकरण सहित इस नगर को घेरे हुए हैं। उसी के भय से यह सारा प्रदेश जनहीन हो गया है। इस राजविग्रह को देखकर मैं भी सकुटुम्ब अन्यत्र चला गया हूं। आज ही वहां कई घर जला दिए गए हैं। उनके साथ ही मेरा घर भी जल गया है। मेरी

क्रूर पत्नी ने उन सब जले हुए घरों से मूल्यवान द्रव्य चोरी करके लाने को कहा है। दैवयोग से उसके दुर्वचनों का भी मुझे शुभ फल मिला है जिससे आप जैसे देव पुरुष से साक्षात् हो गया।'

(श्लोक ३७-४१)

उस दारिद्र्य पीड़ित की कथा सुनकर करुणामय रघुवंशी

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

राम ने उसे एक रत्नजड़ित सुवर्णहार दिया। फिर उसे विदा कर वे दशाङ्गपुर गए। नगर के बाहर चन्द्रप्रभ स्वामी का जो चैत्य था वहाँ जाकर उन्हें वन्दन किया और वहीं अवस्थित हो गए। तदुपरान्त राम की आज्ञा से लक्ष्मण दशाङ्गपुर में वज्रकरण के पास गए। कारण सरल व्यक्तियों की यही रीति है। वज्रकरण उन्हें आकृति से उत्तम पुरुष समझकर बोले, 'हे महाभाग, आप मेरा आतिथ्य ग्रहण करें।' लक्ष्मण ने प्रत्युत्तर दिया, 'मेरे अग्रज राम पत्नी सीता सहित नगर के बाहर अवस्थित हैं। उनके भोजन कर लेने पर ही मैं भोजन कर सकता हूं।' तब राजा वज्रकरण नानाविध खाद्य द्रव्य लेकर लक्ष्मण सहित राम के निकट आए।

(श्लोक ४२-४७)

आहार के पश्चात् राम ने लक्ष्मण को कुछ कहकर सिंहोदर के पास भेजा। लक्ष्मण सिंहोदर के पास जाकर मधुर वचनों में बोले—'समस्त राजाओं को जिन्होंने अपना दास बना लिया है ऐसे राजा दशरथ के पुत्र राजा भरत ने वज्रकरण के साथ विरोध न करने का आपको आदेश दिया है।' यह सुनकर सिंहोदर बोला, 'राजा भरत भी, जो उनका भक्त है उसी पर कृपा करते हैं अन्य पर नहीं। मेरा यह दुष्ट सामन्त वज्रकरण मुझे नमस्कार नहीं करता तब आप ही कहिए मैं इस पर कृपा किस तरह करूँ?' लक्ष्मण बोले, वज्रकरण, आपके प्रति अविनयी नहीं है। धर्म के अनुरोध पर उसने अन्य को प्रणाम न करने की शपथ ली है। इसी लिए वह आपको प्रणाम नहीं करता। अतः वज्रकरण पर क्रोध न करें। इसके अतिरिक्त राजा भरत का आदेश भी आपको मानना चाहिए। कारण, राजा भरत का आधिपत्य समुद्र पर्यन्त समस्त पृथ्वी पर है।' (श्लोक ४८-५३)

लक्ष्मण की बात सुनकर सिंहोदर क्रुद्ध होकर बोला—'यह भरत राजा कौन है जिसने पागल की तरह वज्रकरण का पक्ष

लेकर ऐसा कहलवाया है ?' (श्लोक ५४)

यह सुनकर लक्ष्मण के नेत्र लाल हो उठे, होठ फड़कने लगे। वे बोले—'ओ मूर्ख ! तुम राजा भरत कौन है यह नहीं जानते तो लो मैं अभी उनसे तुम्हारा परिचय करवा देता हूं। उठो, युद्ध के लिए तैयारी करो। मेरी वज्र-सी भुजाओं द्वारा ताड़ित होने पर तुम छिपकली-से बच नहीं पाओगे।' (श्लोक ५५-५६)

यह सुनकर सिंहोदर बालक जिस प्रकार भस्माच्छादित अग्नि को स्पर्श करने के लिए तत्पर होता है उसी प्रकार लक्ष्मण के साथ युद्ध करने को, उन्हें मारने को प्रस्तुत हो गया। (श्लोक ५७)

तब लक्ष्मण ने हाथियों को बांधने के आलानस्तम्भ को कमलनाल की भांति उखाड़कर दण्डधारी हाथ में लिए यमराज की भांति शत्रुओं को मारने लगे। तदुपरान्त उन्होंने महाबाहु हाथी पर चढ़कर हाथी की पीठ पर बैठे सिंहोदर को उसी के वस्त्र से जिस प्रकार गले में रस्सी डालकर बांध दिया जाता है उसी भांति बांध दिया। (श्लोक ५८-५९)

दशांगपुर के लोग आश्चर्यचकित होकर उस दृश्य को देखने लगे। लक्ष्मण सिंहोदर को उसी अवस्था में खींचते हुए रामचन्द्र के पास ले गए। राम को देखकर सिंहोदर उन्हें नमस्कार करते हुए बोले—'हे रघुकुल नायक ! मुझे नहीं मालूम था कि आप यहां आए हैं। शायद मेरी परीक्षा लेने के लिए ही आपने ऐसा किया है। देव, यदि आप ही अपना पराक्रम दिखाने के लिए तत्पर हो जाएँगे तब तो मेरा जीवित रहना ही कठिन हो जाएगा। हे स्वामिन् ! मेरा यह अज्ञान-जन्य अपराध क्षमा करें और मुझे क्या करना है बताएँ क्योंकि सेवक पर स्वामी का क्रोध, शिष्य पर गुरु का क्रोध उन्हें शिक्षा देने के लिए ही होता है। (श्लोक ६०-६३)

राम बोले—'वज्रकरण के साथ सन्धि कर लो।' सिंहोदर ने 'तथास्तु' कहकर यह स्वीकार कर लिया। फिर राम की आज्ञा से वज्रकरण वहां आए और करबद्ध हो विनयपूर्वक राम के सामने खड़े होकर बोलने लगे—'ऋषभदेव स्वामी के वंश में आप लोगों ने बलभद्र और वासुदेव के रूप में जन्म ग्रहण किया है—यह मैंने सुना है। आज सौभाग्य से आप दोनों के दर्शनों का लाभ मिला है। पहले नहीं जानता था; पर अब जान रहा हूं। आप भरतार्द्ध

के अधिपति हैं। मैं और अन्यान्य राजागण आपके दास हैं। हे नाथ! मेरे स्वामी सिंहोदर को छोड़ दें और इन्हें समझावें कि मेरे अन्य को नमस्कार न करने के अभिग्रह को सहन करें। अर्हत् और साधु के अतिरिक्त किसी को नमस्कार नहीं करूँगा– मैंने यह नियम प्रीतिवर्द्धन मुनि से लिया था। (श्लोक ६४-६९)

राम के भृकुटि निर्देश मात्र से सिंहोदर ने यह बात स्वीकार कर ली। लक्ष्मण ने जब उसे मुक्त कर दिया तो उसने वज्रकरण को आलिङ्गन में लिया और अनुज की तरह राम की साक्षी में अपना आधा राज्य वज्रकरण को दे दिया। दशाङ्गपुर के राजा वज्रकरण ने अवन्ती के राजा सिंहोदर से श्रीधरा के कुण्डल मांगकर विद्युदंग को दिए। वज्रकरण ने अपनी आठ कन्याएँ और सामन्त सहित सिंहोदर ने उनकी तीन सौ कन्याएँ लक्ष्मण को दीं। तब लक्ष्मण ने उनसे कहा, 'अभी आप लोग अपनी कन्याओं को अपने पास ही रखिए क्योंकि इस समय पिताजी ने भरत को सिंहासन पर बैठाया है अतः जब मैं सिंहासन पर बैठूँगा उस समय आपकी कन्याओं का पाणिग्रहण करूँगा। अभी तो हम मलयाचल जाकर रहेंगे।' वज्रकरण और सिंहोदर ने यह स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् राम ने सभी को विदा दी। विदा लेकर सभी अपने-अपने नगर को लौट गए। (श्लोक ७०-७६)

राम सीता और लक्ष्मण सहित उस रात वहीं रहे। दूसरे दिन सुबह यात्रा करते हुए वे एक निर्जन प्रदेश में जा पहुंचे। सीता को बहुत प्यास लगी थी। अतः लक्ष्मण राम-सीता को एक वृक्ष के नीचे बैठाकर राम की आज्ञा लेकर जल की खोज में निकले। चलते-चलते उन्होंने कमलाच्छादित प्रियमित्र-सा वल्लभ और आनन्ददायक एक सरोवर देखा। वहाँ कुबेरपुर का राजा कल्याणमाला क्रीड़ा करने आया हुआ था। वह लक्ष्मण को देखते ही अतिदुरात्मा कामदेव के बाण से बिद्ध हो गया। उसने लक्ष्मण को नमस्कार कर कहा, 'आज आप हमारे अतिथि बनें।'

(श्लोक ७७-८१)

उसकी देह में काम विकार और स्त्रियोचित लक्षण देखकर लक्ष्मण मन-ही-मन सोचने लगे—यह कोई स्त्री प्रतीत होती है। किसी कारणवश पुरुष वेश धारण कर रखा है। ऐसा सोचकर वे

बोले, 'यहाँ से कुछ ही दूरी पर मेरे प्रभु, पत्नी सहित बैठे हुए हैं। उनके आहार किए बिना मैं आहार नहीं कर सकता।'

(श्लोक ८२-८३)

कल्याणमाला ने भद्र आकृति युक्त एवं मधुर भाषी व्यक्तियों को भेजकर राम और सीता को वहाँ बुलवा लिया। कल्याणमाला ने उन्हें प्रणाम किया और उनके लिए एक स्कन्धावार निर्मित करवा दिया। राम ने वहीं स्नान कर भोजन किया।

(श्लोक ८४-८६)

तदुपरान्त कल्याणमाला स्त्री वेष धारण कर बिना अनुचरों को लिए केवल एक मन्त्री के साथ राम के पास गई। लज्जा से नम्र बनी कल्याणमाला को राम ने पूछा, 'भद्रे, पुरुष वेश धारण कर तुम क्यों स्त्री भाव को छिपा रही हो?' (श्लोक ८६-८७)

कुबेरपति कल्याणमाला ने तब कहा, 'इस कुबेरपुर में बालिखिल्य नामक एक राजा थे। पृथ्वी नामक उनकी रानी थी। जब रानी गर्भवती हुई उसी समय म्लेच्छों ने कुबेरपुर पर आक्रमण किया और बालिखिल्य को बन्दी बना कर ले गए। समय होने पर पृथ्वी देवी ने एक कन्या को जन्म दिया; किन्तु बुद्धिशाली सुबुद्धि नामक मन्त्री ने समस्त नगर में प्रचारित कर दिया कि राजा के पुत्र हुआ है। पुत्र जन्म का संवाद पाकर यहाँ के मुख्य राजा सिंहोदर ने कहला भेजा कि जब तक बालिखिल्य मुक्त होकर यहाँ लौटकर नहीं आ जाते हैं तब तक यह बालक ही यहाँ का राजा रहेगा। अतः मैं जन्म से ही पुरुष वेष धारण कर इतनी बड़ी हुई हूं। यह बात सिवाय मेरे, मेरी माँ और मन्त्री के, कोई नहीं जानता। कल्याणमाला के नाम से प्रसिद्ध होकर मैं मन्त्रियों के विचार सामर्थ्य से इस राज्य पर शासन कर रही हूं। कभी-कभी असत् भी सत् प्रवृत्ति का रूप ले लेता है। मैंने अपने पिताजी को मुक्त कराने के लिए म्लेच्छों को बहुत धन दिया है; किन्तु वे धन तो ले लेते हैं; लेकिन उन्हें मुक्त नहीं करते। अतः हे दयानिधि! आप कृपा करें। आपने जिस प्रकार सिंहोदर के हाथ से वज्रकरण मुक्त किया है। उसी प्रकार मेरे पिताजी को भी म्लेच्छों के हाथों से मुक्त करिए।' (श्लोक ८८-९५)

राम बोले, 'जब तक हम तुम्हारे पिताजी को मुक्त नहीं

करवा देते हैं तब तक तुम पूर्व की भाँति ही पुरुष वेश में राज्य करो।' (श्लोक ९६)

'यह आपकी दया है' कहकर, कल्याणमाला ने अन्यत्र जाकर पुरुष वेश धारण कर लिया। तब सुबुद्धि मन्त्री ने राम से कहा, 'लक्ष्मण कल्याणमाला के पति बनें।' राम ने कहा 'अभी हम लोग पिता की आज्ञा से देशान्तर में जा रहे हैं। जब लौटेंगे तब लक्ष्मण कल्याणमाला से विवाह कर लेगा।' यह बात उन्होंने स्वीकार कर ली। राम ने तीन दिनों तक वहाँ अवस्थान किया। चौथे दिन पौ फटने के पूर्व ही जबकि सभी सो रहे थे राम ने लक्ष्मण और सीता सहित उस स्थान का परित्याग कर दिया।
(श्लोक ९७-९९)

प्रातःकाल कल्याणमाला ने जब राम, लक्ष्मण और सीता को वहाँ नहीं देखा तो अत्यन्त दुःखी होकर खिन्न मन से स्वनगर को लौट गई और पूर्व की भाँति ही राज्य करने लगी। (श्लोक १००)

चलते-चलते राम नर्मदा नदी के निकट पहुंचे और उसे अतिक्रमण कर विन्ध्याटवी में प्रविष्ट हुए। अन्य यात्रियों ने उन्हें उधर जाने से रोका; किन्तु इन्होंने उनकी बात नहीं सुनी। उसी समय दक्षिण दिशा में कण्टक सेमल के एक वृक्ष पर बैठा एक कौआ कठोर स्वर में कांव-कांव करने लगा। तदुपरान्त क्षीर वृक्ष पर बैठा हुआ दूसरा कौआ मधुर स्वर में कांव-कांव करने लगा। लेकिन यह सब सुनकर भी राम को न हर्ष हुआ न शोक। दुर्बल लोग ही शकुन व अपशकुन को देखते हैं। और आगे जाने पर उन्होंने असंख्य हस्ती, रथ और अश्वारोहियों से युक्त म्लेच्छ सेना को अन्य देश पर आक्रमण करने जाते हुए देखा। (श्लोक १०१-१०४)

उस सेना में एक युवक सेनापति था। वह सीता को देखकर कामातुर हो गया। अतः उस स्वेच्छाचारी ने उसी समय म्लेच्छ सेना को आदेश दिया, 'तुम लोग जाकर उन दोनों पथिकों को प्रताड़ित कर या मारकर उस सुन्दर स्त्री को मेरे लिए ले आओ।'
(श्लोक १०५-१०६)

आज्ञा मिलते ही वे बाण और बरछा आदि तीक्ष्ण अस्त्रों से राम पर प्रहार करने के लिए दौड़े। (श्लोक १०७)

उन्हें आते देख लक्ष्मण ने रामचन्द्र से कहा, 'आर्य, श्वानों-

जैसे इन म्लेच्छों को जब तक मैं भगा नहीं देता हूं, आप सीता सहित यहीं अवस्थान करें।' (श्लोक १०८)

ऐसा कहकर लक्ष्मण ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उससे टङ्कार ध्वनि की। उस टङ्कार को सुनकर सिंह की गर्जना से जिस प्रकार हाथी भयभीत हो जाता है उसी प्रकार म्लेच्छ सेना भयभीत हो उठी। सोचने लगे, जिसके धनुष की टङ्कार ऐसी असह्य है उसके बाणों का तो कहना ही क्या? अतः म्लेच्छाधिपति राम के निकट आए। शस्त्र परित्याग कर रथ से नीचे उतरे और दीन-सा मुख लिए राम को नमस्कार किया; किन्तु लक्ष्मण क्रुद्ध दृष्टि से ही उसे देखते रहे।' (श्लोक १०९-१११)

म्लेच्छाधिपति बोला, 'हे देव, कौशाम्बीपुर में वैश्वानर नामक एक ब्राह्मण था। उसके सावित्री नामक एक पत्नी थी। मैं उन्हीं का पुत्र हूं रुद्रदेव हूं। मैं जन्म से क्रूर कार्य करने वाला हूं, चोर हूं, पर-स्त्री लम्पट हूं। ऐसा कोई दुष्कर्म नहीं है जिसे मैंने नहीं किया। एक बार सेंध लगाते समय राज-प्रहरियों ने मुझे पकड़ लिया। तदुपरान्त राज्याज्ञा से मुझे शूली देने के लिए ले गए। कसाई के घर बकरा जैसे दीनावस्था में रहता है, उसी प्रकार शूली के निकट मुझे खड़ा देखकर एक श्रावक के मन में दया उत्पन्न हो गई, उस महात्मा ने दण्ड का अर्थ देकर मुझे मुक्त करवा दिया और 'कभी चोरी नहीं करना' कहकर मुझे छोड़ दिया। तब मैं उस देश का परित्याग कर घूमता हुआ इस पल्ली में आया और काक नाम से प्रसिद्ध होकर क्रमशः पल्लीपति का पद प्राप्त किया। और अब तस्करों की सहायता करने के लिए नगर में जाकर लूट-पाट करता हूं, राजाओं को पकड़ लाता हूं और शुल्क अदा करता हूं। अतः मुझे आज्ञा दें यह किंकर आपकी क्या सेवा करे? मेरा अविनय क्षमा करें।' (श्लोक ११२-११९)

राम ने उस किरातपति से कहा, 'बालिखिल्य राजा को मुक्त कर दो।' उसने उसी क्षण बालिखिल्य राजा को मुक्त कर दिया। उन्होंने आकर राम को प्रणाम किया। राम की आज्ञा से काक ने बालिखिल्य को कुबेर नगर में पहुंचा दिया। वहां उन्होंने अपनी पुत्री कल्याणमाला को पुरुष वेश में देखा। तदुपरान्त कल्याणमाला और बालिखिल्य ने एक-दूसरे को अपनी कथा सुनाई।

काक स्वपल्ली को लौट गया। राम वहाँ से चलते हुए विंध्य अटवी का अतिक्रमण कर तापी नदी के तट पर जा पहुंचे।
(श्लोक १२०-१२३)

तापी नदी को पार कर आगे बढ़ते हुए उसी देश की सीमा पर स्थित अरुण नामक ग्राम में पहुंचे। सीता को प्यास लगने के कारण वे तीनों ही कपिल नामक एक क्रोधी अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर गए। उसकी स्त्री सुशर्मा ने उन्हें बैठने के लिए अलग-अलग आसन दिए और शीतल एवं स्वादिष्ट जल पीने को दिया। उसी समय पिशाच-सा भयङ्कर कपिल घर लौटा। उन्हें अपने घर पर बैठा देखकर क्रोधित हो उठा और अपनी पत्नी से बोला, 'ऐ पापिनी, तूने इन अपवित्र मनुष्यों को घर में क्यों घुसाया? मेरा अग्निहोत्र अपवित्र हो गया। यह सुनकर क्रुद्ध हुए लक्ष्मण कपिल को उठाकर हाथी की तरह आकाश में घुमाने लगे। तब राम बोले, 'हे मानद, कीट 'जैसे इस अधम ब्राह्मण पर तुम क्यों कुपित हुए हो? छोड़ दो इसे।' राम के कहने पर लक्ष्मण ने उसे छोड़ दिया। तदनन्तर सीता और लक्ष्मण सहित राम उस गृह का परित्याग कर अन्यत्र चले गए। (श्लोक १२४-१३१)

चलते-चलते वे एक वृहद् अरण्य में प्रविष्ट हुए।। तभी आकाश काले बादलों से घिर गया। वर्षा ऋतु आ गई थी। वर्षा आरम्भ होने पर राम ने एक वटवृक्ष के नीचे आश्रय लिया और बोले, 'इस वटवृक्ष के नीचे ही हम वर्षाकाल व्यतीत करेंगे।' यह सुनकर उस वृक्ष का अधिष्ठायक यक्ष इभकर्ण भयभीत होकर अपने स्वामी गोकर्ण यक्ष के निकट जाकर उन्हें प्रणाम कर बोला, 'हे प्रभु, अत्यन्त तेजस्वी पुरुषों ने आकर मुझे मेरे निवास स्थान से प्रताड़ित कर दिया है। अतः आश्रयहीन होकर मैं आपके पास आया हूं। आप मेरी रक्षा करिए। वे मेरे निवास स्थान वटवृक्ष के नीचे ही वर्षाकाल व्यतीत करेंगे।' (श्लोक १३२-१३६)

गोकर्ण ने अवधि ज्ञान से सब कुछ जानकर बुद्धिमान की तरह उससे कहा—'जो तुम्हारे घर आए हैं वे अष्टम वासुदेव और बलभद्र हैं। अतः वे पूजनीय हैं।' तब गोकर्ण यक्ष उसे अपने साथ लेकर जहाँ राम अवस्थित थे वहाँ आया और रात्रि में ९ योजन दीर्घ और १२ योजन प्रशस्त धन-धान्य भरे उच्च प्राकारों से युक्त

बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से सुशोभित विविध प्रकार के पदार्थों से पूर्ण एक नगरी का निर्माण किया और उसका नाम रखा रामपुरी। प्रातःकाल राम मङ्गल-ध्वनि सुनकर जागे और वीणाधारी यक्ष एवं समस्त समृद्धिपूर्ण नगरी को देखा। अकस्मात् निर्मित उस नगरी को देखकर राम चकित हो गए। विस्मित राम से यक्ष बोला, 'हे स्वामी, आप हमारे अतिथि हैं। मैं गोकर्ण यक्ष हूं। आपके लिए इस नगरी का निर्माण किया है। आप जब तक यहां रहेंगे उतने दिनों तक अनुचर सहित मैं आपकी सेवा करूँगा। आप इच्छानुसार सानन्द यहीं रहें। उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर राम सौमित्र और सीता सहित यक्ष के अनुचर द्वारा सेवित होते हुए सुखपूर्वक वहां निवास करने लगे। (श्लोक १३७-१४३)

एक बार कपिल ब्राह्मण हाथ में कुल्हाड़ा लिए समिधा-संग्रह के लिए इसी महारण्य में पहुंचा। वहां नई नगरी बसी हुई देखकर चकित बना सोचने लगा—यह माया है या इन्द्रजाल या कोई गन्धर्वपुर है? वह जब इस प्रकार सोच रहा था तभी एक सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित मानवी रूप एक यक्षिणी को देखा। कपिल ने उससे पूछा, 'यह नवीन नगरी किसकी है?' उसने उत्तर दिया, राम, सीता और लक्ष्मण के लिए इस नवीन नगरी का निर्माण गोकर्ण यक्ष ने किया है। इसका नाम रामपुरी है। यहां दयानिधि राम दीनों को दान देते हैं। जो भी दुःखीजन यहां आते हैं कृतार्थ होकर यहां से लौटते हैं।' (श्लोक १४४-१४२)

यह सुनकर कपिल समिधा का बोझ एक ओर फेंककर उसके चरणों में गिर पड़ा और पूछा कि वह कैसे राम से मिल सकता है? यक्षी बोली—'इस नगरी के चार द्वार हैं। प्रत्येक द्वार पर यक्ष द्वारपाल की तरह खड़े होकर नगरी की रक्षा करते हैं। अतः भीतर जाना कठिन है; किन्तु इसके पूर्व द्वार पर एक जिन चैत्य है। वहां जाएँ। श्रावक बनकर यथाविधि वन्दना कर नगरी की तरफ जाने पर ही नगर में प्रवेश कर सकते हैं। धनलोलुप कपिल साधुओं के पास गया। उनकी वन्दना कर उनका उपदेश सुना। वह लघुकर्मी था। अतः तत्काल ही वह धर्मोपदेश के प्रभाव से शुद्ध श्रावक हो गया। फिर घर जाकर अपनी पत्नी को लाया और

उसे भी धर्मोपदेश सुनाकर शुद्ध श्राविका बना दिया।

(श्लोक १४९-१५३)

तदुपरान्त जन्म से ही दारिद्र्याग्नि में दग्ध दम्पती राम के निकट धनप्राप्ति की इच्छा से रामपुरी गए और जिन-मन्दिर में जाकर तीर्थङ्करों की वन्दना की। तदुपरान्त पुरी में प्रवेश कर अनुक्रम से राम के निवास पर जाकर उपस्थित हुए। राम, सीता और लक्ष्मण को देखते ही उसे स्मरण हो गया कि वह उन पर क्रुद्ध हुआ था। अतः उसकी इच्छा वहाँ से भाग जाने की हुई। उसे भयभीत होते देखकर लक्ष्मण दयार्द्र होकर बोले, 'हे ब्राह्मण! भय का कोई कारण नहीं है। यदि प्रार्थित होकर आए हो तो इधर आओ और जो कुछ चाहिए बताओ।' यह सुनकर वह निःशङ्क होकर राम के समीप गया और उन्हें आशीर्वाद देकर यक्ष द्वारा प्रदत्त आसन पर उनके सम्मुख बैठ गया। तब राम ने पूछा, 'भद्र! तुम कहाँ से आए हो?' वह तोला—'मैं अरुण ग्राम-निवासी वही ब्राह्मण हूं। क्या आपने मुझे पहचाना नहीं? जब आप मेरे घर पर अतिथि रूप में आए थे तब मैंने क्रोधवशतः आपको बहुत कठोर वचन कहे थे। फिर भी आपने मुझ पर दया कर इन्हीं आर्य पुरुष के हाथों से मुक्त करवाया था।' कपिल की पत्नी सुशर्मा ने भी दीन-हीन मुख लिए सीता के पास जाकर उसे आशीर्वाद दिया और पास बैठकर पूर्व विवरण विवृत किया। राम ने उसे खूब धन देकर उसकी इच्छा पूर्ण कर विदा किया। वहाँ से वे अपने गाँव लौट गए। अब कपिल के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। एतदर्थ यथा-रीति दान देकर वह नन्दावतंस मुनि से दीक्षित हो गया।

(श्लोक १५४-१६२)

वर्षा ऋतु समाप्त होने पर राम ने जाने की इच्छा प्रकट की। यह सुनकर गोकर्ण यक्ष करबद्ध होकर उनके सामने खड़ा हो गया और बोला—'हे प्रभु! आप यहाँ से जाना चाहते हैं तो प्रसन्नतापूर्वक जाइए। आपकी सेवा में यदि कोई त्रुटि रह गई हो या मेरे द्वारा कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करें। हे महाबाहु, आपके अनुरूप सेवा करने का सामर्थ्य किसमें है?' ऐसा कहकर स्वयंप्रभ नामक एक हार राम को, दो दिव्य कुण्डल लक्ष्मण को और चूड़ामणि सीता को भेंट की। साथ ही इच्छानुसार वादित

एक वीणा भी सीता को दी। तब यक्ष से अनुमति लेकर इच्छा के अनुरूप वे वहां से प्रस्थान कर गए। गोकर्ण यक्ष ने जिस नगरी का निर्माण किया था उसे नष्ट कर दिया। (श्लोक १६३-१६७)

राम, लक्ष्मण और सीता चलते-चलते अरण्य का अतिक्रमण कर एक दिन सन्ध्या समय विजयपुर नगर के निकट पहुंचे। उस नगर के बाहर दक्षिण दिशा में एक उद्यान था। वहीं एक वटवृक्ष के नीचे वे अवस्थित हो गए। (श्लोक १६८-१६९)

उस नगरी के राजा का नाम था महीधर। उसकी रानी का इन्द्राणी और कन्या का नाम वनमाला था। वनमाला ने सौमित्र के गुणों और रूप-सम्पदा की चर्चा सुनी थी। अतः बाल्यकाल से ही वह उनके प्रति अनुरागिनी हो गई थी; किन्तु महीधर ने जब सुना कि राजा दशरथ दीक्षित हो गए और राम-लक्ष्मण वन को चले गए हैं तो बहुत दुःखी हुए और चन्द्रनगर के राजा वृषभ के पुत्र सुरेन्द्ररूप के साथ वनमाला का सम्बन्ध ठीक कर दिया।

(श्लोक १७०-१७३)

वनमाला ने जब यह सुना तो मरण निश्चित कर उसी रात घर से निकल कर दैवयोग से उसी उद्यान में पहुंची जहां राम, लक्ष्मण और सीता अवस्थित थे। उसने यक्षायतन में जाकर यक्ष की पूजा की और प्रार्थना की कि आगामी जन्म में लक्ष्मण ही उसके पति बनें। वहां से वह उसी वटवृक्ष के समीप गई। राम और सीता तो उस समय सो गए थे; किन्तु लक्ष्मण प्रहरी की भांति जागृत थे। उन्होंने वनमाला को देखकर सोचा, यह कोई वन-देवी है या वटवृक्ष की कोई अधिष्ठात्री या कोई यक्षिणी है। इसी बीच लक्ष्मण ने सुना—'इस जन्म में लक्ष्मण मेरे पति नहीं हो सके; किन्तु यदि उनके प्रति मेरी पूर्ण भक्ति है तो आगामी जन्म में मैं उन्हें प्राप्त करूं।' तदुपरान्त लक्ष्मण ने देखा कि उसने अपने उत्तरीय को वटवृक्ष की डाल पर बांधकर गले में फांसी लगा ली। लक्ष्मण तत्काल वहां गए और उसके गले की फांसी खोलकर उसे नीचे उतारा और बोले, 'भद्रे! मैं ही लक्ष्मण हूं, तुम यह दुःस्साहस क्यों कर रही हो?' (श्लोक १७४-१८२)

रात्रि के अन्तिम भाग में राम और सीता के जागने पर लक्ष्मण ने वनमाला का समस्त वृत्तान्त राम को सुनाया। वनमाला

लज्जित हो गई। उसने सिर ढककर राम एवं सीता को प्रणाम किया। (श्लोक १८३-१८४)

उधर सुबह होते ही महीधर राजा की रानी ने वनमाला को जब प्रासाद में नहीं देखा तो वह करुण स्वर में रोने लगी। महीधर राजा उसे सान्त्वना देकर वनमाला को खोजने निकले। सेना सहित उसे इधर-उधर खोजते हुए उसी उद्यान में उनकी नजर वनमाला पर पड़ी। महीधर की सेना 'मारो-मारो' कहती हुई अस्त्र उठाकर अपहरणकारी लक्ष्मण की ओर दौड़ी। उन्हें इस प्रकार आते देख लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे और खड़े होकर भृकुटि की तरह धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर शत्रु को नष्ट कर देने वाली टङ्कार की। उस टङ्कार को सुनकर सैनिक क्षुब्ध और त्रासित होकर धरती पर गिर पड़े। केवल महीधर राजा अकेले ही उनके सन्मुख खड़े रहे। उन्होंने गौर से लक्ष्मण को देखा और पहचान गए। बोले, 'सौमित्र धनुष पर से प्रत्यंचा उतार दो। मेरी लड़की के पुण्योदय से ही तुम्हारा यहाँ आना हुआ है।' (श्लोक १८५-१९०)

लक्ष्मण ने तुरन्त धनुष से प्रत्यंचा उतार दी। महीधर यह देखकर आश्वस्त हुए। फिर उनकी दृष्टि राम पर पड़ी। वे रथ से उतर कर राम को प्रणाम कर बोले, 'आपके अनुज के प्रति मेरी कन्या का पहले से ही अनुराग था। इसलिए मैंने लक्ष्मण को इसके पति रूप में सोच रखा था। मेरे भाग्य से ही आज इनका मिलन हुआ है। लक्ष्मण-सा जँवाई और आपके जैसा कुटुम्ब पाना दुर्लभ है। तदुपरान्त वे राम, लक्ष्मण और सीता को अपने प्रासाद में ले आए। (श्लोक १९१-१९४)

वे जब वहाँ निवास कर रहे थे तभी एक दिन राजा महीधर की सभा में राजा अतिवीर्य का दूत आया। वह बोला, 'नन्दावर्त के राजा अतिवीर्य ने, जो शौर्य के सागर हैं, राजा भरत के साथ युद्ध छिड़ने के कारण आपको सहायता के लिए बुलवाया है। दशरथ पुत्र भरत की सेना में अनेक राजा आए हैं। इसीलिए महापराक्रमी आपको उन्होंने स्मरण किया है।' तब लक्ष्मण ने पूछा, 'नन्दावर्त के राजा अतिवीर्य के साथ भरत का युद्ध क्यों छिड़ गया है?' प्रत्युत्तर में दूत बोला, 'मेरे स्वामी भरत की सेवा चाहते हैं; किन्तु भरत ने वह स्वीकार नहीं किया। उनके विरोध और युद्ध का

यही कारण है।' तब राम ने पूछा, 'भरत क्या अतिवीर्य से युद्ध करने का सामर्थ्य रखते हैं जो वे अतिवीर्य की सेवा करने से इन्कार कर रहे हैं?' दूत ने कहा, 'अतिवीर्य अत्यन्त बलवान् हैं; किन्तु भरत भी उनसे किसी अंश में कम नहीं हैं। इसलिए कहा नहीं जा सकता युद्ध में किसकी विजय होगी?' (श्लोक १९५-२०१)

महीधर ने दूत को यही कहकर विदा कर दिया 'मैं शीघ्र आ रहा हूं।' फिर महीधर ने राम से कहा, 'अल्पबुद्धि अतिवीर्य कितना अज्ञानी है जो मुझे भरत के साथ युद्ध करने को बुला रहा है। मैं एक वृहद् सेना लेकर वहां जाऊँगा और जाकर भरत से मित्रता व उसके साथ बैर है यह कुछ बिना कहे ही मानो मैं भरत की आज्ञा से ही उसकी हत्या कर रहा हूं उसे मार डालूंगा।' राम बोले, 'राजन्, आप यहीं रहें। मैं आपकी सेना और पुत्रों के साथ जाऊंगा और जो यथोचित होगा वही करूंगा। महीधर के यह बात स्वीकार कर लेने पर राम लक्ष्मण और सीता सहित महीधर के पुत्रों और सेना को लेकर नन्दावर्त जा पहुंचे। (श्लोक २०२-२०६)

उसी नगर के बाहर एक उद्यान में राम ने सेना का स्कन्धावार स्थापित किया। उस स्थान की अधिष्ठायिका देवी राम के सन्मुख आकर बोली. 'हे महाभाग, आपकी जो इच्छा हो बताएँ? मैं उसी के अनुरूप कार्य करने को प्रस्तुत हूं।' राम ने कहा, 'मेरे लिए कुछ भी करने की आवश्यता नहीं है।' तब वह देवी बोली, 'यद्यपि आप स्वयं ही सब कुछ कर सकते हैं फिर भी मैं आपका एक उपकार करूंगी। लोगों में अतिवीर्य की अपकीर्ति करने के लिए कि वह स्त्रियों द्वारा पराजित हुआ आप लोगों को सैन्य सहित स्त्री रूप में परिवर्तित कर दूंगी।' ऐसा कहकर उस देवी ने स्त्री राज्य की तरह महीधर की सेना को स्त्री रूप में बदल दिया। राम और लक्ष्मण भी सुन्दरी स्त्री के रूप में परिवर्तित हो गए। तब राम ने द्वारपाल द्वारा अतिवीर्य को कहला भेजा, 'राजा महीधर ने आपकी सहायता के लिए यह सैन्यदल भेजा है।' यह सुनकर अतिवीर्य बोला, 'जब मरणेच्छुक महीधर स्वयं नहीं आया तब मुझे उसकी सेना की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अकेला ही भरत को पराजित कर दूंगा। अतः अपकीर्ति करने वाली इस सेना को तुरन्त यहां से विताड़ित करो।' (श्लोक २०७-२१३)

उसी समय एक व्यक्ति बोल उठा, 'देव, महीधर स्वयं नहीं आया सो तो ठीक है; किन्तु उसने आपको लज्जित करने के लिए जिस सैन्यदल को भेजा है वह स्त्री-सेना है।' यह सुनकर राजा अतिवीर्य अत्यन्त कुपित हो उठा और द्वार पर उपस्थित राम और उसकी सेना के लिए आदेश दिया, 'क्रीतदासियों की तरह उन्हें गर्दन पकड़कर नगर से बाहर निकाल दो।' (श्लोक २१४-२१६)

यह सुनकर अतिवीर्य के महापराक्रमी सामन्तों ने उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए स्त्री सेना में उपद्रव मचा दिया। यह देखकर लक्ष्मण आलान स्तम्भ को उखाड़ कर उसे ही अस्त्र के रूप प्रयोग कर सामन्तों को धराशायी करने लगे। सामन्तों को धराशायी होते देखकर अतिवीर्य और क्रुद्ध हो उठा और हाथ में खड्ग लेकर युद्ध के लिए जैसे ही आगे बढ़ा लक्ष्मण ने उसके हाथ से खड्ग छीन लिया और उसके केश पकड़ कर जमीन पर पटक दिया और उसी के वस्त्रों से उसे बांध दिया। तदुपरान्त हरिण को जैसे सिंह पकड़कर ले जाता है उसी प्रकार वे नरसिंह लक्ष्मण उसे पकड़कर ले गए। भयभीत नगर जन त्रस्त दृष्टि से यह दृश्य देखने लगे। दयावश सीता ने उसे छुड़वाया। लक्ष्मण ने उसे यह स्वीकार करवा के छोड़ दिया कि वह भरत की सेवा करेगा।

(श्लोक २१७-२२२)

तब देवों ने उनका स्त्री रूप समाप्त कर दिया। अतः अतिवीर्य राम और लक्ष्मण को पहचान गए और उनकी खूब सेवा की। अब अभिमानी अतिवीर्य को अपने मान की बात स्मरण हो आई। मान को आघात लगने से उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। मैं अन्य का सेवक बनूँगा? इसी अहङ्कार के कारण उन्होंने दीक्षा लेना स्थिर कर उसी समय अपने पुत्र विजयरथ को राज्य दे दिया। यह देख राम ने कहा, 'तुम तो मेरे द्वितीय भरत हो। सुखपूर्वक राज्य करो, दीक्षा मत लो।' फिर भी महामानी अतिवीर्य ने दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके पुत्र विजयरथ ने अपनी बहिन रतिमाला लक्ष्मण को दी। लक्ष्मण ने उसे ग्रहण कर लिया।

(श्लोक २२३-२२७)

तब राम अपनी सेना लेकर पुनः विजयपुर लौट गए। विजयरथ भी भरत की सेवा करने के लिए अयोध्या चले गए।

गौरव के गिरितुल्य भरत ने सारी बात सुनकर आगत विजयरथ का सत्कार किया। सत्पुरुष भक्तवत्सल होते ही हैं। विजयरथ ने अपनी छोटी बहिन विजयमाला को जो कि रतिमाला से छोटी थी, भरत को दी। उसी समय प्रव्रजन करते हुए अतिवीर्य मुनि अयोध्या पहुंचे। यह संवाद पाकर अनेक राजाओं के साथ भरत उनका स्वागत करने गए और वन्दना कर क्षमा-प्रार्थना की। सम्मान-पूर्वक भरत द्वारा विदा दे देने के पश्चात् विजयरथ भी आनन्दमना बने अपने राज्य नन्दावर्तपुर को लौट गए। (श्लोक २२८-२३२)

महीधर राजा की आज्ञा लेकर राम भी विजयनगर का परित्याग करने को प्रस्तुत हुए। जाने को इच्छुक लक्ष्मण ने भी वनमाला से सम्मति चाही। अश्रु प्रवाहित करती हुई वनमाला बोली, 'प्रियतम, उस समय आपने मेरे प्राणों की रक्षा क्यों की थी ? उस समय यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो वह सुखद मृत्यु होती। कारण, तब मुझे आपका असह्य विरह सहन नहीं करना पड़ता। हे नाथ ! आप मुझसे विवाह कर अपने साथ ले चलिए, नहीं तो विरह के वेश में यमराज मुझे ले जाएगा। (श्लोक २३३-२३६)

लक्ष्मण बोले – 'हे मनस्विनी ! इस समय मैं अपने अग्रज की सेवा में निरत हूं। अतः तुम मेरे सेवा-कार्य में विघ्न मत बनो। हे वर-वर्णिनी ! मैं अपने अग्रज को उनके इच्छित स्थान पर पहुंचा कर तुम्हारे पास आऊँगा और तुम्हें ले जाऊँगा क्योंकि तुम्हारा निवास मेरे हृदय में है। हे मानिनी ! मैं यहां पुनः आऊँगा। इस बात की प्रतीति के लिए यदि तुम मुझसे कोई प्रतिज्ञा करवाना चाहो तो मैं वह भी करने को तैयार हूं।' उसकी इच्छा पर लक्ष्मण ने यह शपथ ली कि यदि वह पुनः यहां नहीं आए तो उन्हें रात्रि भोजन का पाप लगेगा। (श्लोक २३७-२४०)

रात्रि के शेष भाग में राम ने लक्ष्मण व सीता सहित उस स्थान का परित्याग कर दिया। क्रमशः कई वनों को पार करते हुए वे क्षेमाञ्जलि नामक नगर के निकट पहुंचे व नगर के बाहर के उद्यान में अवस्थित हुए। लक्ष्मण वन से फल-मूल आहरण कर लाए। सीता ने उसे परिष्कार कर राम को खाने के लिए दिया। राम ने वह खाया। तदुपरान्त लक्ष्मण राम की आज्ञा लेकर नगर को गए और वहां पर घोषणा सुनी कि 'जो व्यक्ति राजा की शक्ति

का प्रहार सहन कर सकेगा राजा उसे अपनी कन्या देंगे।' यह सुनकर लक्ष्मण ने एक व्यक्ति से इसका कारण पूछा। वह बोला, 'यहां के राजा का नाम शत्रुदमन है। वे बहुत शक्तिशाली हैं। उनकी रानी कनकादेवी की गर्भजात जितपद्मा नामक एक कन्या है। वह कमल-नयना और लक्ष्मी के निवास रूप है। उसके पति की शक्ति-परीक्षा के लिए राजा ने यह घोषणा करवाई है; किन्तु आज तक कोई भी ऐसा वर नहीं मिला जो उनका शक्ति-प्रहार सहन कर सके। अतः प्रतिदिन राज-पथ पर यह घोषणा दोहराई जाती है।'

(श्लोक २४१-२४७)

यह सुनकर लक्ष्मण उसी समय राजसभा में जाकर उपस्थित हुए। उन्हें देखकर राजा ने पूछा, 'आप कौन हैं और यहां क्यों आए हैं ?' लक्ष्मण ने प्रत्युत्तर दिया, 'मैं राजा भरत का दूत हूं। किसी कारणवश इधर से निकला था। राह में आपकी कन्या के बारे में घोषणा सुनकर उससे विवाह करने आया हूं।' राजा ने पूछा, 'क्या तुम मेरी शक्ति का प्रहार सहन कर सकोगे ?' लक्ष्मण बोले, 'एक ही क्यों, मैं पांच-पांच प्रहार सहन करने को तैयार हूं।'

(श्लोक २४८-२५०)

उसी समय राजकुमारी जितपद्मा राजसभा में आई और लक्ष्मण को देखते ही मदन के वशीभूत होकर उनसे प्रेम करने लगी। उसने राजा को उन पर शक्ति प्रहार करने का निषेध किया; किन्तु राजा ने उसकी बात नहीं सुनी और लक्ष्मण पर शक्ति के पांच प्रहार किए। लक्ष्मण ने दो शक्ति को दोनों हाथों में, अन्य दो शक्ति को बगलों में और एक शक्ति को दांतों द्वारा जितपद्मा के मन सहित ग्रहण कर लिया। जितपद्मा ने तत्काल उनके गले में वरमाला पहना दी। राजा बोले, 'अब इस कन्या को ग्रहण करो।' लक्ष्मण ने उत्तर दिया, 'मेरे अग्रज राम नगर के बाहर उद्यान में हैं। मैं उनके अधीन हूं।' (श्लोक २५१-२५५)

यह सुनकर राजा समझ गए कि ये राम और लक्ष्मण हैं। वे उद्यान में गए और नमस्कार कर राम को प्रासाद में ले आए। उन्होंने राम का खूब आदर-सत्कार किया। सामान्य अतिथि ही जबकि पूज्य होते हैं तो उत्तम पुरुषों का तो कहना ही क्या ? उनका सत्कार ग्रहण कर राम ने वहां से प्रस्थान किया।

जाने के समय लक्ष्मण बोले, 'जब लौटकर आऊँगा तब आपकी कन्या का पाणिग्रहण करूँगा।' (श्लोक २५६-२५८)

राम वहाँ से रात्रि के शेष भाग में यात्रा प्रारम्भ कर सन्ध्या समय वंशशैल नामक गिरि की तलहटी में स्थित वंशस्थल नगर में उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने वहाँ के राजा और समस्त नगर-वासियों को भयभीत देखा। उन्होंने एक नागरिक से भय का कारण पूछा। उसने प्रत्युत्तर दिया, 'तीन दिन से इस पर्वत पर रात्रि के समय भयङ्कर अट्टहास सुनाई पड़ता है। उसी अट्टहास के भय से रात्रि के समय समस्त नागरिक अन्यत्र चले जाते हैं और सुबह होते ही यहाँ लौट आते हैं। इस प्रकार इन तीन दिनों से हम भयङ्कर कष्ट भोग रहे हैं।' तब लक्ष्मण की प्रेरणा से और कौतूहलवश वे पर्वत पर चढ़े—वहाँ उन्होंने कायोत्सर्ग स्थित दो मुनियों को देखा। राम-लक्ष्मण और सीता ने उन्हें वन्दना की तदुपरान्त उनके सामने राम गोकर्ण प्रदत्त वीणा बजाने लगे। लक्ष्मण ग्राम और राग से मनोहर गीत गाने लगे और सीता अङ्गहार से विचित्र नृत्य करने लगी। (श्लोक २५९-२६५)

सूर्य अस्त हुआ। रात्रि क्रमशः गहन होने लगी। उसी समय अनेक बेतालों की सृष्टि कर अनलप्रभ नामक एक देव वहाँ आया और अट्टहास से आकाश गुञ्जायमान करता हुआ महर्षियों को पीड़ित करने लगा। यह देखकर राम और लक्ष्मण सीता को मुनियों के पीछे बैठाकर काल रूप धारण कर बेतालों को मारने के लिए उद्यत हुए। इनके तेज को सहन नहीं कर सकने के कारण वह देव तुरन्त उस स्थान का परित्याग कर स्वस्थान चला गया। इधर उन दोनों मुनियों को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। देवों ने आकर केवलज्ञान-महोत्सव मनाया। (श्लोक २६६-२६९)

राम ने उस मुनिद्वय को वन्दना कर उन पर होने वाले उस उपसर्ग का कारण पूछा। तब कुलभूषण नामक मुनि बोले, पद्मिनी नामक नगरी में विजयपर्व नामक एक राजा थे। उनका अमृत-स्वर नामक एक दूत था। उनकी उपयोगा नामक पत्नी से उदित और मुदित नामक दो पुत्र थे। अमृतस्वर दूत का वसुभूति नामक एक ब्राह्मण मित्र था। उस पर आसक्त होकर उपयोगा ने अपने पति को मारना चाहा। एक बार अमृतस्वर राजा के आदेश से

विदेश गया। वसुभूति भी उसके साथ गया और राह में उसने अमृतस्वर की हत्या कर दी। तदुपरान्त वसुभूति नगर लौट आया और लोगों से कहने लगा कि अमृतस्वर ने कार्यवश उसे वापस भेज दिया है। फिर उपयोगा के पास जाकर बोला, 'हमारे स्वच्छद विहार में कण्टक रूप अमृतस्वर की मैंने हत्या कर दी है।' यह सुनकर उपयोगा प्रसन्न हुई और बोली, 'यह तुमने अच्छा किया। अब इन दोनों पुत्रों को भी मार डालो ताकि दुष्टों के हाथों से मुझे मुक्ति मिले।' वसुभूति ने यह स्वीकार कर लिया। दैवयोग से वसुभूति की पत्नी को इस बात का पता चल गया। उसने ईर्ष्यावश यह सब उदित और मुदित को बता दिया। उदित ने क्रोध में आकर उसी क्षण वसुभूति को मार डाला। मृत्यु के पश्चात् उसने नलपल्ली में म्लेच्छ के रूप में जन्म ग्रहण किया।

(श्लोक २७०-२७९)

'एक दिन मतिवर्द्धन नामक मुनि से धर्म श्रवण कर राजा विजयपर्व ने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके साथ ही उदित और मुदित भी दीक्षित हो गए। (श्लोक २८०)

'एक बार उदित और मुदित मुनि सम्मेत शिखर स्थित चैत्यों की वन्दना करने जा रहे थे। राह भूलकर वे नलपल्ली पहुंच गए। वहां वसुभूति के जीव ने, जिसने म्लेच्छ रूप में जन्म ग्रहण किया था, उन्हें देखा और पूर्वभव के बैर के कारण मारने दौड़ा। म्लेच्छ राजा ने उसे रोका कारण पूर्वभव में म्लेच्छ पति हरिण थे एवं उदित-मुदित कृषक। उस समय किसी शिकारी के हाथ से उस मृग को मुक्त करवाया था इसीलिए म्लेच्छपति ने इस जन्म में उनकी रक्षा की। तदुपरान्त उन मुनियों ने सम्मेत शिखर जाकर वहां के चैत्यों की वन्दना की और दीर्घकाल तक पृथ्वी पर विचरण करते रहे। अन्तत: अनशन ग्रहण कर मृत्यु प्राप्त की और महाशुक्र देवलोक में दोनों सुन्दर और सुकेश नामक महर्द्धिक देव हुए। (श्लोक २८१-२८५)

'वसुभूति के जीव ने अनेक भवों का भ्रमण कर किसी पुण्ययोग से मनुष्य जन्म प्राप्त किया। उस भव में वह तापस बना। उसी रूप में मृत्यु प्राप्त कर ज्योतिष्क देवलोक में धूमकेतु नामक मिथ्यादृष्टि दुष्टदेव बना। (श्लोक २८६-२८७)

'उदित और मुदित के जीव ने भी महाशुक्र देवलोक से च्युत होकर भरत क्षेत्र के रिष्टपुर नगर में प्रियम्वद राजा की पद्मावती रानी के गर्भ से रत्नरथ और चित्ररथ नामक पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया। धूमकेतु ने भी ज्योतिष्क देवलोक से च्युत होकर उसी राज्य की कनकाभा नामक रानी के गर्भ से अनुद्धर नामक पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया। वह उनका सौतेला भाई था इसलिए वह उनसे ईर्ष्या करने लगा; किन्तु वे लोग उससे ईर्ष्या भाव नहीं रखते थे। (श्लोक २८८-२९१)

'प्रियम्वद राजा रत्नरथ को राज्य और चित्ररथ एवं अनुद्धर को युवराज पद देकर स्वयं दीक्षित हो गए। वे मात्र छह दिन व्रत-पालन कर मृत्यु को प्राप्त हुए और देव रूप में उत्पन्न हुए। (श्लोक २९२)

'एक राजा ने अपनी कन्या श्रीप्रभा चाहने पर भी अनुद्धर को न देकर राजा रत्नरथ को दी। इससे कुपित होकर अनुद्धर ने युवराज पद त्यागकर रत्नरथ के राज्य में लूटपाट प्रारम्भ की। रत्नरथ उसे युद्ध में परास्त कर पकड़ लाया; किन्तु कुछ दिन पश्चात् उसे मुक्त कर दिया। मुक्त होने के पश्चात अनुद्धर तापस बन गया: किन्तु स्त्री संसर्ग रखने के कारण उसकी तपस्या व्यर्थ हो गई। अत: मृत्यु के पश्चात् उसने अनेक भव भ्रमण कर पुन: मनुष्य जन्म प्राप्त किया। मनुष्य जन्म में वह पुन: अज्ञान तप कर मृत्यु के पश्चात् उपद्रवकारी अनलप्रभ नामक देव रूप में उत्पन्न हुआ। (श्लोक २९३-२९७)

'चित्ररथ और रत्नरथ भी क्रमश: दीक्षा ग्रहण कर मृत्यु के पश्चात् अच्युत कल्प में अतिबल और महाबल नामक महर्द्धिक देव बने। वहाँ से च्युत होकर सिद्धार्थपुर के राजा क्षेमङ्कर की रानी विमलादेवी के गर्भ में अवतरित हुए। अनुक्रम से विमलादेवी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वे दोनों पुत्र हम लोग ही हैं। मेरा नाम कुलभूषण और इसका नाम देशभूषण है। राजा ने हम लोगों को शिक्षा देने के लिए घोष नामक उपाध्याय के पास भेजा। वहाँ बारह वर्षों तक रहकर हमने समस्त कलाओं को अधिगत किया। तेरहवें वर्ष में हम घोष उपाध्याय के साथ ही राजमहल को लौट आए। आने के समय राजप्रासाद के गवाक्ष में एक अनिन्द्य सुन्दरी

कन्या को देखा। उसे देखते ही हम उसके प्रेम में पड़ गए। उसने हमारे मन पर अधिकार कर लिया। हम लोगों ने राजा के सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन किया। राजा ने उपाध्याय की पूजा कर उसे विदा कर दिया। राजा की आज्ञा से हम माँ के पास गए। वहाँ भी हमने पुनः उस कन्या को देखा। माँ ने कहा, 'यह तुम लोगों की बहिन कनकप्रभा है। जब तुम लोग घोष उपाध्याय के पास थे तब इसका जन्म हुआ था। इसलिए तुम लोग इसे नहीं जानते।' यह सुनकर हम लज्जित हो गए और अज्ञानवश उसके अनुरागी होने पर भी अनुतप्त हो गए। हमारे मन में वैराग्य उत्पन्न हो जाने के कारण हम गुरु के पास जाकर उसी समय दीक्षित हो गए। तीव्र तप करते हुए हम इस पर्वत पर आए और शरीर ममता विसर्जित कर कायोत्सर्ग-ध्यान में स्थित हो गए।'

(श्लोक २९८-३०८)

'हमारे पिता हमारे वियोग से दुःखी होकर अनशन मृत्यु वरण कर महालोचन नामक गरुड़पति के रूप में उत्पन्न हुए। आसन कम्पित होने के कारण दुःखित बने वे इसी समय यहाँ आए हैं।

(श्लोक ३०९-३१०)

'अन्यत्र पूर्वोक्त अनलप्रभ देव कौतुकवशतः कई देवों को सङ्ग लेकर केवलज्ञानी महामुनि अनन्तवीर्य के पास गए थे। देशना समाप्त होने पर किसी शिष्य ने अनन्तवीर्य से पूछा, 'हे भगवन्! आपके बाद मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थ में कौन केवलज्ञानी होंगे?'

(श्लोक ३११-३१२)

'प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा, 'मेरे निर्वाण के पश्चात् कुलभूषण और देशभूषण नामक दो भाई केवलज्ञानी होंगे।' यह सुनकर अनलप्रभ स्वस्थान को लौट गया।

श्लोक ३१३)

'कुछ दिन पश्चात अवधिज्ञान से हमको उन्होंने यहाँ ध्यान करते देखा। मिथ्यात्व के कारण मुनिवाक्य को मिथ्या करने के लिए और हम लोगों के साथ पूर्वभव का जो वैर था उसका प्रतिशोध लेने के लिए यहाँ आकर घोर उपसर्ग करने लगा। हम पर उपसर्ग करते हुए आज चौथा दिन हो गया है। आज वह आप लोगों के भय से भाग गया है और हम लोगों को भी कर्मक्षय हो जाने के कारण केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। वह देव उपसर्ग

करने पर भी हमारे केवलज्ञान प्राप्ति में सहायक हुआ है।'

(श्लोक ३१४-३१७)

उसी समय वहाँ बैठे हुए गरुड़पति महालोचन देव बोले, 'हे राम, तुमने यहाँ आकर अच्छा ही किया है। अब बताओ तुम्हारे उपकार का मैं क्या प्रतिदान दे सकता हूं?' राम ने कहा, 'हमारे लिए कुछ भी नहीं करना है; किन्तु वह देव यह कहकर कि, 'मैं किसी समय तुम्हारा कोई उपकार करूँगा' अन्तर्धान हो गया। (श्लोक ३१८-३१९)

यह संवाद सुनकर वंशस्थल के राजा सुरप्रभ भी वहाँ आए। उन्होंने राम को नमस्कार कर उनकी पूजा की। राम के आदेश से उन्होंने उस पर्वत पर अर्हत् चैत्य का निर्माण करवाया। उसी दिन से उस पर्वत का नाम रामगिरि प्रसिद्ध हो गया। तदुपरान्त राम सुरप्रभ राजा से विदा लेकर निर्भीकतापूर्वक भयानक दण्डकारण्य में प्रविष्ट हुए और वहाँ एक बृहद् पर्वत की गुफा में घर पर जिस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक रहा जाता है उसी प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक रहने लगे। (श्लोक ३२०-३२३)

एक दिन आहार के समय त्रिगुप्त और सुगुप्त नामक दो चारण मुनि वहाँ अवतरित हुए। वे दो मास के उपवासी थे और पारने के लिए वहाँ आए थे। राम, लक्ष्मण, सीता ने भक्तिभाव से उनकी वन्दना की, तदुपरान्त सीता ने यथायोग्य अन्न-जल देकर उनका पारणा करवाया। उसी समय देवों ने रत्न और सुगन्धित जल की वर्षा की और कम्बुग्रीव के विद्याधरपति रत्नजटि एवं दो देव वहाँ आए, उन्होंने प्रसन्न होकर अश्व सहित राम को एक रथ दिया। (श्लोक ३२४-३२७)

सुगन्धित जल की सुगन्ध से गन्ध नामक रुग्ण पक्षी जो कि वहीं रहता था एक वृक्ष से नीचे उतरा। मुनिद्वय को देखकर उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। अतः वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। सीता के जल छिड़कने पर कुछ समय पश्चात् उसकी चेतना लौटी तो वह दोनों मुनियों के चरणों में जा गिरा। मुनियों को स्पर्शौषध नामक लब्धि प्राप्त थी। इसीलिए उनके चरण स्पर्श से वह नीरोग हो गया। उसके डैने स्वर्णतुल्य हो गए, चोंच प्रवाल-सी, पैर पद्मराग मणि-से और समस्त देह ने नाना प्रकार के रत्नों की प्रभा धारण

कर ली। उसके माथे पर रत्नांकुर श्रेणी की तरह जटा दिखाई देने लगी। अतः उस दिन से उस पक्षी का नाम जटायु हो गया।

(श्लोक ३२८-३३२)

राम ने मुनियों से पूछा, 'गिद्ध पक्षी मांसाहारी और स्थूल-बुद्धि होते हैं; पर यह गिद्ध आपके चरणों में गिरकर शान्त कैसे हो गया ?'

(श्लोक ३३३)

सुगुप्त मुनि कहने लगे, 'बहुत दिनों पहले कुम्भकारकट नामक एक नगर था। वहाँ यह पक्षी दण्डक नामक राजा था। उस समय श्रावस्ती नगरी में जितशत्रु नामक राजा राज्य करते थे। उनके धारिणी नामक रानी से दो सन्तान पैदा हुई। एक पुत्र, एक कन्या। पुत्र का नाम स्कन्दक और कन्या का नाम पुरन्दरयशा था। पुरन्दरयशा का विवाह कुम्भकारकट नगर के राजा दण्डक के साथ हुआ। एक बार राजा दण्डक ने किसी कार्यवश पालक नामक एक ब्राह्मण दूत को जितशत्रु के पास भेजा। उस समय जितशत्रु अर्हत् की उपासना में मग्न थे। सुयोग पाकर दुष्टबुद्धि पालक वहाँ जैन-धर्म को दूषित करने लगा। यह देखकर राजपुत्र स्कन्दक ने दुराशय मिथ्यादृष्टि सम्पन्न पालक को सभ्य संवाद, युक्ति और तर्क द्वारा निरुत्तर कर दिया। इससे सभ्य लोगों में पालक उपहास का पात्र बन गया। फलतः पालक स्कन्दक के प्रति विद्वेष भाव रखने लगा। राजा ने जिनोपासना से निवृत्त होकर पालक को विदा किया। पालक पुनः कुम्भकारकट नगर को लौट गया।

(श्लोक ३३४-३४१)

इसके कुछ दिनों बाद स्कन्दक ने संसार से विरक्त होकर पाँच सौ राजपुत्रों के साथ मुनि सुव्रत स्वामी से दीक्षा ग्रहण कर ली। तदुपरान्त एक दिन उन्होंने कुम्भकारकट नगर में जाकर पुरन्दर-यशा और उसके परिवार को उपदेश देने की इच्छा से अपने गुरु की आज्ञा माँगी। मुनि सुव्रत स्वामी बोले, 'वहाँ जाने पर परिवार सहित तुमको मरणान्तक कष्ट होगा।' स्कन्दक मुनि ने पूछा, 'हे भगवन् ! उस समय हम आराधक होंगे या नहीं ?' प्रभु ने प्रत्युत्तर दिया, 'तुम्हें छोड़कर सभी आराधक होंगे।' 'हे भगवन् ! तब मैं समझूँगा मेरा सब कुछ पूर्ण हो गया है।' ऐसा कहकर स्कन्दक मुनि ने उनका आदेश लेकर परिवार सहित वहाँ से विहार किया

और अनुक्रम से कुम्भकारकट नगर के निकट पहुंच गए।

(श्लोक ३४२-३४७)

उन्हें दूर से देखते ही क्रूर पालक को पूर्व वैर स्मरण हो आया। इसलिए उसने उसी समय साधु के निवास योग्य उद्यानों में जमीन के नीचे अस्त्र-शस्त्रादि रख दिए। (श्लोक ३४८)

उन्हीं उद्यानों में से एक उद्यान में स्कन्दकाचार्य जाकर अवस्थित हुए। परिवार सहित राजा दण्डक उन्हें वन्दना करने आए। स्कन्दकाचार्य ने देशना दी। उस देशना को सुनकर लोग आनन्दित हुए। देशना की समाप्ति पर हर्षित चित्त लिए राजा अपने प्रासाद को लौट गए। (श्लोक ३४९-३५०)

उस समय दुष्ट पालक राजा को एकान्त में बोला, 'यह स्कन्दक मुनि बगुलाधर्मी विधर्मी है। हजार-हजार योद्धाओं से युद्ध कर सके ऐसे-ऐसे सहस्रायुधी पुरुषों को मुनिवेश पहनाकर यह महाशठ इनकी सहायता से आपकी हत्या कर आपका राज्य लेने के लिए यहाँ आया है। उस उद्यान में मुनि वेशधारी योद्धागणों ने गुप्त रीति से अपने अस्त्रादि छिपा रखे हैं। आप स्वयं जाकर सत्य-असत्य का निरूपण करें।' (श्लोक ३५१-३५३)

पालक के कथनानुसार राजा ने मुनियों का निवास स्थान खुदवाया। वहाँ उन्होंने विभिन्न विचित्र प्रकार के अस्त्र-शस्त्र दबे हुए देखे। इस पर दण्डक ने बिना विचार किए ही पालक को आदेश दिया, 'मन्त्रीवर! तुम इस षड्यन्त्र की बात जान गए यह अच्छा हुआ। मैं तो तुम्हारे द्वारा नेत्र सम्पन्न हूं। अब इस दुर्मति स्कन्दक को जो भी दण्ड देना चाहो दो। कारण, तुम सब कुछ जानते हो। इस विषय में अब तुम मुझ से दुबारा कुछ नहीं पूछना।'

(श्लोक ३५४-३५६)

ऐसी आज्ञा पाते ही पालक ने मनुष्य को पीसकर मार डालने का एक यन्त्र तैयार करवाया और उसे उद्यान में रखवा दिया। तदुपरान्त वह स्कन्दक के सम्मुख ही उनके एक-एक मुनि को पीसकर मरवाने लगा। (श्लोक ३५७)

प्रत्येक मुनि को पीसकर मारने के समय स्कन्दकाचार्य ने सम्यक् आराधना करवाई। इस प्रकार समस्त मुनियों को पीसकर मार डाला गया। अन्ततः एक बालक मुनि बच गए। उसको जब

यन्त्र के सामने ले जाने लगे तब स्कन्दकाचार्य के मन में करुणा उत्पन्न हो गई। अतः वे पालक को बोले, 'पहले तुम मुझे पीसकर मार डालो ताकि उस बाल-मुनि को पिसकर मरते मैं नहीं देख सकूँ। पालक, तुम मेरा इतना अनुरोध अवश्य मानो।' किन्तु, स्कन्दकाचार्य के सम्मुख उस बालक मुनि को पीसकर मारने से उन्हें अधिक कष्ट होगा, सोचकर पालक ने उनकी बात न मानकर उनके सम्मुख ही उसे भी पीसकर मार डाला। (श्लोक ३५८-३६१)

सारे मुनि केवलज्ञान प्राप्त कर अक्षय पद को प्राप्त हो गए; किन्तु स्कन्दकाचार्य ने अन्त समय यह निदान किया कि 'यदि मेरी तपस्या का कोई फल है तो मैं दण्डक, पालक और उसके समस्त परिवार का नाश करने वाला बनूँ।' ऐसा निदान करते हुए स्कन्दकाचार्य को उसने पीसकर मार डाला। मृत्यु प्राप्त कर वे उन्हें नष्ट करने के लिए कालाग्नि-से वह्निकुमार देव रूप में उत्पन्न हुए। (श्लोक ३६२-३६४)

रक्त-सना स्कन्दकाचार्य का रजोहरण जो रत्न कम्बल के धागों से बनाया गया था और जिसे पुरन्दरयशा ने उन्हें दिया था, एक पक्षी लेकर उड़ गया। पक्षी के दोनों पैरों से पूरी शक्ति से पकड़े हुए होने के बावजूद भी वह रजोहरण दैवयोग से स्खलित होकर देवी पुरन्दरयशा के सम्मुख जा गिरा। (श्लोक ३६५-३६६)

रजोहरण देखते ही वह उद्विग्न हो गई और भाई की खोज करवाने पर ज्ञात हुआ कि यन्त्र में पीसकर मुनियों सहित उनको मार डाला गया है। इससे वह अपने पति पर बहुत क्रोधित होकर बोल उठी, 'पापी! तुम यह कैसा पाप कर बैठे?' ठीक उसी समय शासनदेवी आकर पुरन्दरयशा को मुनि सुव्रत स्वामी के पास ले गई। वहाँ उसने तत्क्षण दीक्षा ग्रहण कर ली। (श्लोक ३६७-३६८)

उधर अग्निकुमार ने निकाय में उत्पन्न होते ही स्कन्दकाचार्य के जीव में अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव का वृत्तान्त ज्ञात कर पालक और दण्डक सहित समस्त नगरी को जलाकर भस्म कर डाला। नगर विनष्ट हो जाने से क्रमशः वह अरण्य में परिणत हो गया। दण्डक के नाम पर उस अरण्य का नाम दण्डकारण्य पड़ा। (श्लोक ३६९-३७०)

'दण्डक राजा संसार के कारण रूप अनेक भवों का भ्रमण कर पाप कर्म के फलस्वरूप गन्ध नामक यह महारोगी पक्षी बना। मुझे देखकर इसे जाति स्मरण-ज्ञान उत्पन्न हो गया। मैं स्पर्शौषध नामक लब्धि प्राप्त हूं, अतः मेरे स्पर्श से इसका समस्त रोग नष्ट हो गया है।' (श्लोक ३७१-३७२)

इस प्रकार अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुनकर पक्षी बहुत प्रसन्न हुआ। वह पुनः मुनि के चरणों में जा गिरा और धर्मश्रवण कर उसने श्रावक धर्म अङ्गीकार कर लिया। महामुनि ने उसकी इच्छा ज्ञात कर उसे जीवघात, मांसाहार और रात्रि भोजन का त्याग करवाया। (श्लोक ३७३-३७४)

तदुपरान्त मुनि राम से बोले, 'यह पक्षी तुम्हारा स्वधर्मी है। स्वधर्मी बन्धु पर वात्सल्य भाव रखना कल्याणकारी है। ऐसा जिनेश्वरों ने कहा है।' मुनि के वचन सुनकर राम ने 'यह मेरा परम मित्र है' कहकर मुनि को प्रणाम किया। मुनि वहाँ से आकाश-पथ द्वारा अन्यत्र चले गए। राम, लक्ष्मण और सीता उसी जटायु पक्षी के साथ दिव्य रथ पर बैठकर क्रीड़ा करते हुए अन्यत्र विचरण करने लगे। (श्लोक ३७५-३७७)

उसी समय पाताल लङ्का में खर और चन्द्रनखा के शम्बूक और सुन्द नामक दो पुत्र यौवनावस्था को प्राप्त हुए। माता-पिता के निषेध करने पर भी शम्बूक सूर्यहास नामक खड्ग प्राप्त करने के लिए दण्डकारण्य गया और वहाँ क्रौंचरेवा नदी के तट पर बाँस के झाड़ के मध्य जाकर अवस्थित हो गया और मन ही मन बोला, 'यहाँ रहते हुए यदि कोई मुझे साधना से च्युत करना चाहेगा तो मैं उसकी हत्या कर दूंगा।' तदुपरान्त वह एकाहारी, विशुद्धात्मा, ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय शम्बूक वटवृक्ष की शाखा से अपने दोनों पाँव बांधकर अधोमुख होकर सूर्यहास खड्ग दानकारिणी विद्या का जप करने लगा। यह विद्या बारह वर्ष एवं सात दिनों तक जप करने से सिद्ध होती है। इस प्रकार उल्लू की भांति अधोमुख होकर साधना करते हुए बारह वर्ष और चार दिन बीत गए। सिद्ध होने की इच्छा से म्यान में रहा हुआ सूर्यहास खड्ग आकाश में आलोक और सुगन्ध बिखेरता हुआ बाँस के झाड़ के पास आया। ठीक उसी समय लक्ष्मण भी इधर-उधर घूमते हुए वहाँ पहुंचे।

वहाँ उन्होंने सूर्य किरण के समूह रूप उज्ज्वल सूर्यहास खड्ग को देखा। कौतूहली लक्ष्मण ने उसे हाथ में लेकर म्यान से बाहर निकाला। अपूर्व शस्त्र देखने का कौतूहल तो क्षत्रिय मात्र को होता है। तदुपरान्त उसकी धार की परीक्षा लेने के लिए पार्श्ववर्ती बाँस झाड़ को कमल नाल की तरह एक बार में ही काट डाला। उसी बाँस झाड़ में रहा हुआ शम्बूक का सिर भी बाँस झाड़ के साथ ही कटकर लक्ष्मण के सम्मुख आ गिरा। यह देखकर लक्ष्मण ने बाँस झाड़ में प्रवेश किया। तब उन्होंने लटकता हुआ धड़ भी देखा। यह देखकर लक्ष्मण स्वनिन्दा करने लगे—'मुझे धिक्कार है जो कि मैं ऐसा कार्य कर बैठा। जो युद्ध नहीं करे, निरस्त्र हो, निरपराध हो, मैंने ऐसे की हत्या कर डाली है।' फिर वे राम के पास गए और सारी बात बताई और उन्हें वह खड्ग दिखाया। खड्ग देखकर राम बोले, 'इस खड्ग का नाम सूर्यहास है। तुमने इसके आराधक को मार डाला। इसका कोई उत्तर साधक भी निकट ही होगा। (श्लोक ३७८-३९२)

उसी समय पाताल लङ्का में रावण की बहिन चन्द्रनखा ने सोचा तपस्या की अवधि आज पूर्ण हो गई है। मेरा पुत्र सूर्यहास खड्ग को अवश्य ही सिद्ध करेगा। अतः उसके लिए पूजा की सामग्री और आहार-पानी लेकर मुझे जाना चाहिए। यह सोचकर वह प्रसन्नचित्त वहाँ पहुंची और पुत्र का कटा हुआ मस्तक जिसमें कुण्डल लटक रहे थे देखा। यह देखकर वह, हां वत्स शम्बूक, हां वत्स शम्बूक, तू कहाँ गया कहती हुई जोर-जोर से चीत्कार करने लगी। उसी समय उसकी दृष्टि मिट्टी पर उभरे लक्ष्मण के मनोहर पदचिह्नों पर पड़ी। जिसने मेरे पुत्र को मारा है यह उसी का पदचिह्न है ऐसा सोचकर वह पदचिह्नों का अनुसरण करती हुई आगे बढ़ी और थोड़ी ही देर में एक वृक्ष के नीचे सीता और लक्ष्मण सहित नयनाभिराम राम को बैठे देखा। राम का सुन्दर रूप देख कर वह तत्काल काम के वशीभूत हो गई। ओह ! महाशोक के समय भी कामिनियाँ किस प्रकार काम के वशीभूत हो जाती है।

(श्लोक ३९३-३९८)

तदुपरान्त नागकन्या का सुन्दर रूप धारण कर काम पीड़िता चन्द्रनखा रोमांचित कलेवर लिए राम के पास गई। उसे देखकर

राम ने पूछा, 'भद्रे, कृतान्त के आवास तुल्य इस भीषण दण्डकारण्य में तुम अकेली कैसे आई ?' उसने प्रत्युत्तर में कहा, 'मैं अवन्ती राजा की कन्या हूं। रात्रि के समय जब प्रासाद में सो रही थी, कोई खेचर मुझे वहाँ से उठाकर यहाँ ले आया। इस बीच अन्य कोई विद्याधर कुमार मुझे देखकर हाथ में खड्ग लेकर उससे बोला, 'ओ दुराचारी, रत्नहार को जिस प्रकार बाज पक्षी ले जाता है उसी भांति इस स्त्री-रत्न को हरण कर तू कहां ले जा रहा है ? मैं यहाँ तेरा काल बनकर आया हूं।' यह सुनकर मेरा अपहृणकर्त्ता खेचर मुझे छोड़कर उसके साथ युद्ध करने लगा। बहुत देर तक उनमें खड्ग युद्ध होता रहा। अन्त में मदमस्त हस्तियों की तरह दोनों की ही मृत्यु हो गई। तभी से 'मैं अब कहाँ जाऊँ' सोचती हुई इधर-उधर घूम रही थी कि मरुभूमि में छायादार वृक्ष की तरह पुण्ययोग से आपको देखा। हे स्वामी, मैं एक कुलीन कुमारी हूं अतः आप मेरा पाणिग्रहण करें। महापुरुषों से की गई याचना कभी व्यर्थ नहीं जाती।' (श्लोक ३९९-४०६)

उसकी बात सुनकर परम बुद्धि सम्पन्न राम और लक्ष्मण एक-दूसरे को देखते हुए सोचने लगे, यह अवश्य ही कोई मायाविनी नट की तरह वेश धारण किए कुछ नाट्य का अभिनय कर हम लोगों को छलने के लिए आई है। राम हास्य ज्योत्स्ना से ओष्ठों को विकसित करते हुए उससे बोले, 'मैं तो यहाँ पत्नी सहित अवस्थित हूं अतः तुम पत्नीविहीन लक्ष्मण के पास जाओ।' तब चन्द्रनखा ने लक्ष्मण से विवाह करने की प्रार्थना की। लक्ष्मण बोले, 'तुम पहले मेरे पूज्य अग्रज के पास गई थी। इसलिए तुम भी मेरे लिए पूज्या बन गई हो। अतः इस विषय में तुम मुझे अधिक मत कहो।' (श्लोक ४०७-४१०)

इस प्रकार अपनी प्रार्थना अस्वीकृत होने एवं पुत्रवध के कारण वह अत्यन्त कुपित हो उठी। वह तत्काल पाताल लङ्का गई और अपने स्वामी खर और अन्यान्य विद्याधरों को पुत्र का निधन वृत्तान्त बता दिया। खर तत्काल चौदह हजार विद्याधरों की सेना लेकर राम को पीड़ित करने के लिए उस प्रकार दण्डकारण्य पहुंचा जिस प्रकार हस्ती पर्वत को पीड़ित करने के लिए पहुंचता है। (श्लोक ४११-४१२)

'मेरे रहते राम युद्ध करने जाएँ यह उचित नहीं है।' ऐसा सोचकर लक्ष्मण ने राम से युद्ध में जाने की आज्ञा मांगी। राम बोले, वत्स, विजयी हो, किन्तु युद्ध में यदि कोई संकट का समय आए तो मुझे पुकारने के लिए सिंहनाद करना। लक्ष्मण ने यह स्वीकार कर लिया। उन्होंने राम की आज्ञा लेकर धनुष-बाण उठाया और युद्ध के लिए चल पड़े। वहाँ जाकर शत्रु सैन्य का उसी प्रकार हनन करने लगे जिस प्रकार गरुड़ सर्प को विनष्ट करता है। (श्लोक ४१३-४१५)

जब युद्ध जोर पकड़ने लगा तो अपने पति के पक्ष को प्रबल करने के लिए चन्द्रनखा रावण के निकट गई और बोली, 'भाई, राम और लक्ष्मण दो अज्ञात पुरुष दण्डकारण्य में आए हैं। उन्होंने तुम्हारे भानजे को मार डाला है। यह सुनकर तुम्हारे बहनोई खर स्व-सैन्य लेकर वहाँ गए हैं और लक्ष्मण के साथ युद्ध कर रहे हैं। राम अनुज और अपने बल के गर्व पर स्वतन्त्र रूप से बैठे अपनी पत्नी सीता के साथ विलास कर रहे हैं। सीता तो स्त्रियों के रूपलावण्य की चरम सीमा है। उसके जैसी तो न कोई देवी, न कोई नागकन्या, न कोई मानवी है। वह तो एकदम अनन्य है। उसका रूप तो सुर-असुरों की स्त्रियों को दासी बनाने लायक है। उसका रूप तीनों लोक में अनुपम और अवर्णनीय है। भाई, इस समुद्र से द्वितीय समुद्र तक तुम्हारा अधिकार है। अतः पृथ्वी के समस्त रत्न तुम्हारे अधिकार में हैं। एतदर्थ रूप सम्पत्ति से सबकी दृष्टि को अनिमेषकारिणी उस स्त्री-रत्न को तुम ग्रहण करो। यदि तुम ग्रहण नहीं कर सके तो तुम रावण नहीं हो।'

(श्लोक ४१६-४२३)

यह सुनकर रावण ने उसी मुहूर्त में पुष्पक विमान में बैठकर आदेश दिया—हे विमानराज! जहाँ सीता है, तुम मुझे शीघ्र वहाँ ले चलो।' सीता के निकट जाने की रावण के मन में जो इच्छा थी, उसी की स्पर्द्धा करता हुआ वह विमान द्रुतवेग से वहाँ पहुंचा जहाँ सीता अवस्थित थी। वहाँ उग्र तेज सम्पन्न राम को देखकर उसी प्रकार दूर जाकर खड़ा हो गया जिस प्रकार अग्नि को देख कर सिंह दूर खड़ा हो जाता है। सोचने लगता है कि सिंह सामने पड़ने पर भी बाढ़ विक्षुब्ध नदी को पार करना जिस प्रकार दुष्कर

है उसी प्रकार उग्र तेजधारी राम के निकट से सीता का हरण करना दुष्कर है। अतः उसने अवलोकिनी विद्या का स्मरण किया। विद्या तत्काल दासी की तरह करबद्ध बनी, उसके सम्मुख उपस्थित हुई। रावण उससे बोला, 'सीताहरण में तुम मेरी सहायक बनो।' विद्या ने जवाब दिया, 'वासुकि नाग के मस्तक से मणि लाना सरल है; किन्तु राम के पास से सीता को ले जाना देवों के लिए भी कठिन है। फिर भी इसका एक उपाय है। युद्ध में जाने के समय राम ने लक्ष्मण से कहा था कि यदि मेरी आवश्यकता आ पड़े तो तुम सिंहनाद करना। इसी संकेतानुसार सिंहनाद करने से यदि राम लक्ष्मण के पास चले जाएँ तो सीता-हरण सहज हो सकता है।' रावण ने वैसा ही करने का आदेश दिया। तब विद्या ने कुछ दूर जाकर ठीक लक्ष्मण की ही भाँति सिंहनाद किया।

(श्लोक ४२४-४३१)

सिंहनाद सुनकर राम सोचने लगे, यद्यपि हस्तीमल्ल-से मेरे अनुज के लिए कोई प्रतिमल्ल नहीं है, जो लक्ष्मण को सङ्कट में डाल सके। पृथ्वी पर ऐसा कोई पुरुष नहीं है, फिर भी उसका सिंहनाद संकेतानुसार क्यों सुना जा रहा है? (श्लोक ४३२-४३४)

इस प्रकार सोच-विचार करते हुए महामनस्वी राम जब व्याकुल हो उठे, उसी समय लक्ष्मण के प्रति सीता का जो वात्सल्य भाव था उसी वात्सल्य भाव को व्यक्त करती हुई सीता बोली—'हे आर्यपुत्र ! वत्स लक्ष्मण निश्चय ही किसी विपद् में पड़ गए हैं। फिर भी आप उनके पास जाने में देर क्यों कर रहे हैं? शीघ्र जाकर उनकी रक्षा कीजिए।' (श्लोक ४३५-४३६)

सीता का यह कथन और सिंहनाद से प्रेरित होकर राम अशुभ शकुनों की भी अवहेलना कर शीघ्र लक्ष्मण के पास चले गए।

(श्लोक ४३७)

अवसर पाकर रावण उसी मुहूर्त में विमान से नीचे उतरा। उसने रोती हुई जानकी को पकड़कर विमान में बैठा लिया। जानकी का क्रन्दन सुनकर 'हे स्वामिनी ! कोई भय नहीं है, मैं आ गया।' 'ओ निशाचर ! ठहर-ठहर' कहते हुए क्रुद्ध बने जटायु पक्षी ने रावण पर आक्रमण कर दिया और अपने तीक्ष्ण नाखूनों द्वारा कृषक जैसे हल द्वारा पृथ्वी को विदीर्ण करता है उसी प्रकार उसके

वक्षदेश को विदीर्ण करने लगा। रावण ने भी क्रुद्ध होकर खड्ग के भयङ्कर वार से जटायु के डैनों को काटकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। तदुपरान्त निःशङ्क होकर सीता को पुष्पक विमान में बैठा कर अपना मनोरथ पूर्ण कर शीघ्रता के साथ आकाश-पथ से उड़ चला। (श्लोक ४३८-४४२)

'शत्रु का मन्थन करने वाले हे नाथ रामचन्द्र! हे वत्स लक्ष्मण! हे पूज्य पिता! हे महावीर भाई भामण्डल! जिस प्रकार पूजा द्रव्यों को काक ले जाता है उसी प्रकार यह रावण बरबस तुम्हारी सीता का हरण कर ले जा रहा है।' इस प्रकार रोती हुई सीता ने आकाश और धरती को रुला दिया।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(श्लोक ४४३-४४४)

राह में अर्कजटि के पुत्र रत्नजटि ने सीता का क्रन्दन सुना। वह सोचने लगा कि यह क्रन्दन अवश्य ही राम की पत्नी सीता का है। यह शब्द समुद्र पर भी सुना जा रहा है। इससे लगता है कि राम-लक्ष्मण को प्रतारित कर रावण सीता का हरण कर लिए जा रहा है। इसलिए मेरे लिए यह उचित है कि इसी समय सीता को मुक्त कर अपने प्रभु भामण्डल का कुछ उपकार करूँ।'

(श्लोक ४४५-४४६)

ऐसा सोचकर हाथ में खड्ग लिए रत्नजटि रावण की ओर दौड़ा। रत्नजटि का युद्ध-आह्वान सुनकर रावण हँसा और अपने विद्याबल से उसका समस्त विद्याबल हरण कर लिया। फलतः डैनेहीन पक्षी की तरह रत्नजटि विद्यारहित होकर कम्बूद्वीप के कम्बुगिरि पर जा गिरा। तब से वहीं रहने लगा।

(श्लोक ४४७-४४९)

रावण जब विमान में बैठकर आकाश-पथ से समुद्र को पार कर रहा था, उसी समय कामातुर बना सीता को अनुनय करता हुआ बोला—'हे जानकी! जो समस्त खेचर और भूलोक का स्वामी है उसकी यह महारानी का पद प्राप्त कर तुम क्यों क्रन्दन कर रही हो? आनन्दित होने के बजाय तुम क्यों शोक कर रही हो? मन्दभागी राम के साथ विधि ने तुम्हारा जो सम्बन्ध किया था वह अनुचित था। अतः जो उचित है मैंने वही कर दिया है। हे देवी! सेवा में दास की भाँति तुम मुझे पति रूप में स्वीकार

करो। जब मैं तुम्हारा दास बनूँगा तो समस्त खेचर और भूचर तुम्हारे दास बन जाएँगे।' (श्लोक ४५०-४५३)

जब रावण इस प्रकार कह रहा था तब सीता मन्त्राक्षरों की भाँति 'राम' शब्द का जप माथा नीचे किए कर रही थी। सीता को प्रत्युत्तर न देते हुए देखकर कामातुर रावण ने उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया। पर-पुरुष के स्पर्श से कातर सीता ने तत्क्षण अपने पैर सरका लिए और क्रुद्ध होकर उससे बोली, 'ओ निर्दय निर्लज्ज, अल्प समय में ही पर-स्त्री-कामना का फल मृत्यु तू प्राप्त करेगा।' (श्लोक ४५४-४५६)

उसी समय सारण आदि मन्त्री और अन्य समस्त राक्षसगण रावण के सम्मुख आए। महाउत्साही और महासाहसिक कार्य के कर्त्ता अत्यन्त बलवान् रावण ने उत्साहपूर्वक लङ्का नगरी में प्रवेश किया। (श्लोक ४५७-४५८)

उस समय सीता ने यह नियम लिया – जब तक राम-लक्ष्मण संवाद नहीं मिलेगा, वह आहार-पानी ग्रहण नहीं करेगी।

(श्लोक ४५९)

तदुपरान्त तेजनिधि रावण सीता को लङ्का की पूर्व दिशा में अवस्थित देवों के क्रीड़ास्थल नन्दन वन-से और खेचरी रमणियों का विलासधाम देवरमन नामक उद्यान में रक्तवर्ण अशोक वृक्ष के नीचे त्रिजटा आदि राक्षसियों की देख-रेख में रखकर हर्षित मन से स्व-प्रासाद चला गया। (श्लोक ४६०)

पंचम सर्ग समाप्त

षष्ठ सर्ग

लक्ष्मण के जैसा सिंहनाद सुनकर राम धनुष लेकर शीघ्र वहाँ पहुँचे जहाँ लक्ष्मण शत्रुओं के साथ युद्ध कर रहे थे। राम को देखकर लक्ष्मण ने पूछा, 'हे आर्य! सीता को अकेला छोड़कर आप यहाँ क्यों आ गए?' राम ने कहा, 'तुमने विपदसूचक सिंहनाद किया था इसलिए मैं यहाँ आया हूं।' लक्ष्मण ने कहा, 'मैंने तो सिंहनाद नहीं किया था; किन्तु जब आपने सुना है इससे लगता है कि कोई हमारी प्रतारणा कर रहा है। आर्या सीता को हरण करने के लिए किसी ने यह कुमन्त्रणा कर आपको वहाँ से हटा

दिया है। सिंहनाद करने का अन्य तो कोई कारण समझ में नहीं आ रहा है। अतः हे आर्य ! आप शीघ्र सीता की रक्षा के लिए जाएँ।' (श्लोक १-६)

लक्ष्मण की बात सुनकर राम शीघ्रतापूर्वक अपने स्व-स्थान को लौट गए; किन्तु वहाँ सीता को न देखकर मूच्छित होकर गिर पड़े। कुछ देर पश्चात् चेतना लौटने पर जब उन्होंने चारों ओर देखा तो उन्हें मरणासन्न जटायु दिखाई पड़ा। उसे देखकर राम सोचने लगे, कोई मायावी छलकर मेरी सीता का हरण कर ले गया है। यह महात्मा पक्षी हरणकर्त्ता के सम्मुखीन हुआ है। इसलिए उसी ने इसके डैनों को काट डाला है। उस पर प्रत्युपकार करने की भावना से राम ने अन्त समय उसे परलोक-यात्रा के पाथेय रूप में नमस्कार महामन्त्र सुनाया। तत्काल ही वह मृत्यु को प्राप्त कर महेन्द्र कल्प में देव रूप में उत्पन्न हुआ। राम सीता के सन्धान में इधर-उधर उस वन में घूमने लगे। (श्लोक ७-११)

उधर लक्ष्मण खर की वृहद सैन्यवाहिनी के साथ अकेले ही युद्ध कर रहे थे। युद्ध में सिंह का सहयोगी कोई नहीं होता। खर का अनुज त्रिशिरा अपने ज्येष्ठ भ्राता से बोला, 'ऐसे तुच्छ व्यक्ति के साथ आप क्यों युद्ध कर रहे हैं?' ऐसा कहकर उसे युद्ध से निवृत्त कर स्वयं लक्ष्मण से युद्ध करने लगा। रामानुज लक्ष्मण ने रथ में बैठकर युद्ध करने को उद्यत त्रिशिरा को पतंग की तरह मार डाला। (श्लोक १२-१४)

उसी समय पाताललङ्काधिपति चन्द्रोदर का पुत्र विराध अपनी समस्त सेना लेकर वहाँ पहुंचा। राम के शत्रु का नाश और उनका आराधक होने की इच्छा से विराध ने लक्ष्मण को नमस्कार कर कहा, 'मैं आपके शत्रु का द्वेषी और वैरी हूं और आपका सेवक। रावण के इन सेवकों ने मेरे पराक्रमी पिता चन्द्रोदर को निर्वासित कर पाताल लङ्का पर स्वयं का अधिकार कर लिया है। हे देव ! अन्धकार को विनष्ट करने में यद्यपि सूर्य का कोई सहायक नहीं होता फिर भी शत्रु का विनाश करने में आपका यह सेवक सामान्य सहायता करने हेतु प्रस्तुत है। अतः मुझे युद्ध करने का आदेश दें।' (श्लोक १५-१८)

लक्ष्मण ने हँसकर उत्तर दिया, 'मैं अभी इन शत्रुओं का

संहार कर देता हूं, तुम खड़े-खड़े देखो। कारण, अन्य की सहायता से विजय पाना पराक्रमी पुरुषों के लिए लज्जास्पद है। आज से मेरे अग्रज राम तुम्हारे स्वामी हैं। मैं यहीं तुम्हें पाताल लङ्का का सिंहासन प्रदान कर रहा हूं।' (श्लोक १९-२०)

अपने विरोधी विराध को लक्ष्मण के पक्ष में जाते देखकर खर ने क्रोधित होकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और लक्ष्मण को सम्बोधित कर बोला, 'ओ विश्वासघातक ! बता मेरा पुत्र शम्बुक कहां है ? मेरे पुत्र की हत्या कर क्या तू इस तुच्छ विराध की सहायता से बचना चाहता है ?' (श्लोक २१-२२)

लक्ष्मण ने हँसकर कहा, 'तुम्हारा भाई त्रिशिरा अपने भतीजे को देखने के लिए बहुत उत्सुक हो उठा था। अतः उसे वहां भेज दिया है। अब यदि तुम अपने पुत्र और अनुज को देखने के लिए उत्सुक हुए हो तो मुझे भी वहां भेज देने के लिए मैं धनुष उठाए प्रस्तुत हूं। (श्लोक २३-२४)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

'ओ मूढ़, मेरे पैरों तले आकर जिस प्रकार चींटी मर जाती है उसी प्रकार प्रमादवश की हुई मेरी क्रीड़ा के प्रहार से तेरा पुत्र मारा गया है। उसमें मेरा कोई पराक्रम नहीं था; किन्तु स्वयं को योद्धा कहने वाले अभिमानी तुम मेरा रण कौतुकपूर्ण करो तो वनवास में भी मैं दानी बनूंगा अर्थात् मैं तुम्हें यमराज को अर्पित करूंगा।' (श्लोक २५-२६)

लक्ष्मण का यह कथन सुनकर खर उन पर हस्ती जैसे गिरिशिखर पर प्रहार करता है उसी प्रकार तीक्ष्ण शरों से प्रहार करने लगा। सूर्य जैसे अपने किरणजाल से आकाश को आच्छादित कर देता है उसी प्रकार लक्ष्मण ने भी सहस्रकंक पत्रों से—कङ्क पक्षी के पङ्ख युक्त तीरों से आकाशमण्डल को आच्छादित कर दिया। इस प्रकार लक्ष्मण और खर में भीषण युद्ध हुआ जो कि खेचरों के लिए भयङ्कर और यमराज के लिए तो महोत्सव तुल्य था। उसी समय आकाश में यह स्वर गूंजा—'वासुदेव के सन्मुख जिसका ऐसा पराक्रम है वह खर प्रतिवासुदेव से भी अधिक वीर है।' आकाश में इस स्वर के गुंजित होने से लक्ष्मण ने इसका वध करने में समय नष्ट करना उचित नहीं समझा। अतः क्षुरप्र अस्त्र से उसका शिरोच्छेद कर डाला। तब खर का भाई दूषण लक्ष्मण

के साथ सैन्य सहित युद्ध को प्रस्तुत हुआ; किन्तु लक्ष्मण ने जिस प्रकार दावानल यूथ सहित गजेन्द्र को विनष्ट कर देता है उसी प्रकार अल्प समय में ही उसे विनष्ट कर डाला। (श्लोक २७-३२)

फिर विराध को लेकर लक्ष्मण लौटे। उसी समय उनका बायां नेत्र फड़कने लगा। अतः आर्या सीता और राम के लिए उनके मन में अशुभ शङ्काएँ उठने लगीं। बहुत दूर जाने पर उन्होंने राम को अकेले एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा। इससे उनके मन में अत्यन्त खेद उत्पन्न हुआ। वे राम के सम्मुख पहुंचे; किन्तु राम उन्हें देख न सके। वे उस समय विरहकातर होकर आकाश की ओर मुख किए बोल रहे थे, हे वन देवता, मैंने समस्त वन का कण-कण छान मारा; किन्तु कहीं मैंने सीता को नहीं पाया। यदि तुमने उसे देखा हो तो बताओ। भूत-प्रेत और शिकारी श्वापदपूर्ण इस भयङ्कर वन में सीता को अकेला छोड़कर मैं लक्ष्मण के पास गया और हजारों राक्षस योद्धाओं के मध्य लक्ष्मण को अकेला छोड़कर पुनः यहां लौट आया। हाय मुझ से दुर्बुद्धि की बुद्धि भी कैसी है? हे वत्स लक्ष्मण, तुम्हें उस रण संकट में अकेला छोड़कर मैं किस प्रकार लौट आया?' ऐसा कहते-कहते राम मूच्छित होकर पुनः गिर पड़े। उस समय उनके दुःख से दुःखी होकर पशु-पक्षी भी रोने लगे और उस महावीर की ओर देखने लगे। (श्लोक ३३-४०)

लक्ष्मण बोले, 'आर्य, यह आप क्या कर रहे हैं? यह रहा आपका अनुज लक्ष्मण जो कि समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर आपके पास लौट आया है। लक्ष्मण की बात सुनकर अमृत सिंचन से जिस प्रकार मरणासन्न की चेतना लौट आती है उसी भांति राम की चेतना लौटी। उन्होंने नेत्र खोले। लक्ष्मण को सामने खड़े देखकर उन्हें आलिंगन में ले लिया। लक्ष्मण अश्रु प्रवाहित करते हुए बोले, 'हे आर्य, जानकी का हरण करने के लिए ही किसी ने सिंहनाद किया था; किन्तु कोई चिन्ता नहीं, मैं उस दुष्ट के प्राणों सहित जानकी को लौटा लाऊंगा। अतः चलिए हम उन्हें खोजने का प्रयास करें; किन्तु उसके पूर्व इस विराध को उसका पाताल लङ्का का राज्य लौटा देना होगा। कारण युद्ध करने के समय मैंने इसे यह वचन दिया था।' (श्लोक ४१-४५)

उन्हें प्रसन्न करने के लिए विराध ने उसी समय सीता की

खोज में चारों ओर विद्याधर योद्धाओं को भेजा। उनके लौट आने तक क्रोधाग्नि में प्रज्वलित होते हुए भी बार-बार निःश्वास फेंकते हुए और ओष्ठ दंशन करते हुए राम और लक्ष्मण उसी वन में अवस्थित रहे। (श्लोक ४६-४७)

विराध द्वारा भेजे हुए विद्याधर बहुत दूर तक गए; किन्तु उन्हें सीता का कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ। अतः वे लौटकर सिर झुकाए राम के सम्मुख खड़े हो गए। (श्लोक ४८)

उन्हें नतमस्तक देखकर राम बोले, 'हे योद्धागण, स्वामी के कार्य को सम्पादन करने में तुम लोगों ने यथाशक्ति प्रयास किया है; किन्तु सीता को नहीं खोज सके, इसमें तुम्हारा क्या दोष है। जब दैव ही विमुख हैं तब तुम या अन्य कोई क्या कर सकता है।

(श्लोक ४९-५०)

विराध बोला, 'प्रभु, आप खेद न करें कारण खेद नहीं करना ही लक्ष्मी का कारण है। आपकी सेवा करने के लिए आपका यह सेवक उपस्थित है। अतः मुझे पाताल लङ्का में प्रवेश करवाने के लिए आप लोग आज ही चलें। वहां से सीता सन्धान सहजता से हो सकेगा।' तब राम-लक्ष्मण विराध और उसके सैन्यदल के साथ पाताल लङ्का में गए। वहां शत्रुहन्ता खर का पुत्र सुन्द बृहद् सेना लेकर युद्ध करने के लिए आया। बहुत देर तक वह विरोधी विराध के साथ युद्ध करता रहा। तदुपरान्त लक्ष्मण को युद्ध करने आते देखकर चन्द्रनखा के कथन पर वह युद्ध का परित्याग कर लङ्का में रावण की शरण में चला गया। राम और लक्ष्मण ने पाताल लङ्का में प्रवेश कर विराध को उसके पितृ सिंहासन पर बैठाया। तदुपरांत राम और लक्ष्मण खर के प्रासाद में और विराध युवराज की भांति सुन्द के प्रासाद में रहने लगा। (श्लोक ५१-५८)

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इधर सुग्रीव की पत्नी तारा का अभिलाषी सहसगति जो कि बहुत दिनों से हिमालय की गुफा में विद्या साधना कर रहा था उसको प्रतारिणी विद्या सिद्ध हो गई। उसी विद्या के द्वारा कामरूपी देवों की तरह इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ वह सुग्रीव का रूप धारण कर आकाश में द्वितीय सूर्य उदय हुआ हो इस प्रकार किष्किन्ध्या नगर में गया। सुग्रीव जब विनोदन के लिए, बाहर उद्यान में गया उसी समय उसने प्रासाद में प्रवेश

किया। थोड़ी देर में ही जब सुग्रीव लौटा तो द्वारपालों ने उसे रोका। बोला, 'राजा सुग्रीव अभी भीतर हैं।' (श्लोक ५९-६२)

एक जैसे दो सुग्रीव देखकर बालिपुत्र चन्द्ररश्मि के मन में कुछ सन्देह हुआ। अतः अन्तःपुर में कोई अघटित घटित न हो जाए इसलिए उसने अन्तःपुर में प्रवेश किया। वहां जाकर उसने उसी प्रकार छद्मवेशी सुग्रीव को तारादेवी के कक्ष में प्रवेश करने के पूर्व ही रोक दिया जिस प्रकार पर्वत नदी-प्रवाह को रोक देता है।
(श्लोक ६३-६४)

तब संसार के समस्त तत्त्व की तरह सब जगह से चौदह अक्षौहिणी सेना एकत्र की गई; किन्तु वे भी सच्चे और झूठे सुग्रीव का पता नहीं लगा सके। अतः दो भागों में विभक्त होकर अपने अपने पक्ष को ले लिया। (श्लोक ६५-६६)

तदुपरान्त भयङ्कर युद्ध आरम्भ हो गया। भालाओं के आघात से अग्नि स्फुलिंग इस प्रकार निकलने लगे कि लगा आकाश में उल्कापात हो रहा है। वाहन के साथ वाहन, आरोही के साथ आरोही, रथी के साथ रथी, पदातिक से पदातिक युद्ध करने लगे। प्रौढ़ पति के समागम से मुग्धा स्त्री जिस प्रकार कम्पित होती है उसी प्रकार चतुरंगिनी सेना के विमर्दन से पृथ्वी कम्पित होने लगी। तब सच्चे सुग्रीव न मस्तक उठाकर छद्मवेशी सुग्रीव को आह्वान कर कहा 'ओ अन्य के घर में प्रवेश करने वाले लम्पट, सामने आ।' उसका आह्वान सुनकर तिरस्कृत हाथी की तरह छद्मवेशी सुग्रीव उग्र गर्जन करते-करते उसके सामने आया।
(श्लोक ६७-७१)

क्रोध से लाल आंख किए यमराज के सहोदर की तरह जगत् को त्रासित करते हुए वे दोनों युद्ध करने लगे। दोनों ही रण-कुशल तो थे ही अतः एक-दूसरे के शस्त्रों को अपने अस्त्र से तृण की भांति छिन्न करने लगे। दो भैंसों की लड़ाई में जैसे वृक्ष के टुकड़े उड़ते हैं उसी प्रकार उन दोनों के युद्ध में अस्त्रों के टुकड़े आकाश में उड़ने लगे। उनको देखकर आकाश की खेचरियां भयभीत होने लगीं। क्रोधियों के शिरोमणि दोनों के अस्त्र जब निःशेष हो गए तब दोनों मल्लयुद्ध करने लगे। उन्हें देखकर लगता था जैसे दो पर्वत युद्ध कर रहे हों। क्षण में आकाश में उड़ते और क्षण में

धरती पर गिरते वे दोनों दो मुर्गों की तरह लग रहे थे। दोनों समान वीर होने के कारण कोई किसी को पराजित नहीं कर सका। अन्ततः क्लान्त होकर वे दोनों दो बलद की भांति दूर जाकर खड़े हो गए। (श्लोक ७२-७७)

सच्चे सुग्रीव ने तब सहायता के लिए हनुमान को पुकारा और फिर से छद्मवेशी सुग्रीव के साथ युद्ध करने लगा; किन्तु हनुमान भी कौन असली, कौन नकली समझ न सकने के कारग चुपचाप खड़े ही रहे और उसी बीच नकली सुग्रीव ने असली सुग्रीव पर खूब जोर से प्रहार किया। इस प्रकार सुग्रीव देह और मन से खिन्न होकर किष्किन्धा त्यागकर अन्यत्र चले गए। अतः नकली सुग्रीव विभ्रान्त मन लिए वहीं रहने लगा; किन्तु बालि-पुत्र के भय से वह अन्तःपुर में प्रवेश न कर सका। (श्लोक ७८-८१)

तब असली सुग्रीव मस्तक नीचा किए सोचने लगा—'मेरी पत्नी पर आसक्त शत्रु कूटकपट में अत्यन्त चतुर है। तभी तो मेरे अपने अनुचर भी इसके वश में हो गए हैं। यह अपने ही अश्व के द्वारा पराभूत होने की तरह है। माया में शक्तिमान् अपने इस शत्रु की मैं कैसे हत्या करूँ? पराक्रम में हीन और बाली के नाम को लज्जित करने वाले मुझ कापुरुष को धिक्कार है। महाबलवान् बाली ही धन्य है जिसने पुरुष व्रत को अखण्ड रख तृण की तरह राज्य-परित्याग कर मोक्ष-गमन किया। (श्लोक ८२-८५)

'बालिपुत्र युवराज चन्द्ररश्मि इस समय समस्त संसार में महाबलवान् है; किन्तु वह क्या कर सकता है? कौन असली कौन नकली, यह समझे बिना वह किसकी सहायता करे, किसे मारे; किन्तु उसने यह ठीक किया कि छद्मवेषी को अन्तःपुर में प्रविष्ट नहीं होने दिया। अब उस बलिष्ठ शत्रु को मारने के लिए किसी सबल पुरुष का आश्रय लेना उचित है। कारण, स्वयं के हाथों हो या अन्य के द्वारा शत्रु का नाश तो होना ही उचित है। इस शत्रु को मारने के लिए तब क्या मैं तीनों लोकों के वीरशिरोमणि मरुत के यज्ञ को नष्ट करने वाले रावण की शरण लूँ? किन्तु, रावण तो स्वयं ही प्रकृति से लम्पट और जगत् के लिए कंटक है। वह तो मुझे और उसे दोनों को ही मारकर तारा को ग्रहण कर लेगा। ऐसी स्थिति में उग्र बलवान् खर राक्षस मेरी सहायता कर सकता

था; किन्तु राम ने उसका वध कर दिया। अतः अब यही उचित है कि मैं पाताल लङ्का में जाकर राम और लक्ष्मण से मित्रता करूँ। कारण, शरणागत विराध को उन्होंने तत्काल ही पाताल लङ्का का राज्य दे दिया और अभी वे पराक्रमी विराध के आग्रह पर वहीं अवस्थित हैं।' (श्लोक ८६-९३)

ऐसा सोचकर सुग्रीव ने अपने एक विश्वासपात्र दूत को एकान्त में बुलाकर सब कुछ समझाया और विराध के पास भेज दिया। दूत ने पाताल लङ्का में जाकर विराध को प्रणाम किया। अपने स्वामी का समस्त कष्ट निवेदित कर बोला, 'मेरे प्रभु सुग्रीव इस समय महान् विपत्ति में हैं। एतदर्थ आपके माध्यम से वे राम-लक्ष्मण की शरण में जाना चाहते हैं।' यह सुनकर विराध ने कहा, 'दूत! तुम शीघ्र जाकर सुग्रीव से कहो कि वे तुरन्त यहाँ चले आएँ क्योंकि सत्पुरुषों का सङ्ग तो पुण्य से ही प्राप्त होता है।' दूत ने शीघ्र जाकर सुग्रीव को विराध की बात सुनाई। तब सुग्रीव अपने अश्व के गले के रत्नहार से दिक्समूह को गुञ्जित करता हुआ तीव्र वेग से दूरी को अदूरी में परिवर्तित कर क्षणमात्र में वहाँ इस प्रकार पहुंचा मानो एक घर से निकलकर दूसरे घर में गया हो। (श्लोक ९४-९९)

विराध ने सहर्ष उसका स्वागत किया। तदुपरान्त सुग्रीव को लेकर राम के निकट गया। सुग्रीव ने राम को प्रणाम किया। विराध ने तब सुग्रीव की समस्त कथा राम को कह सुनाई। सुग्रीव बोले, 'हे प्रभु! जैसे छींक बन्द हो जाने सूर्य ही एक मात्र गति है उसी प्रकार आप ही मेरे गति और शरण हैं।' राम स्वयं स्त्री-वियोग से पीड़ित थे फिर भी सुग्रीव का दुःख दूर करने को सहमत हो गए। महापुरुष अपने कार्य से भी अन्य के कार्य करने में अधिक प्रयत्नवान् होते हैं। (श्लोक १००-१०२)

तदुपरान्त विराध ने सीता-हरण का सारा वृत्तान्त सुग्रीव को सुनाया। सुनकर सुग्रीव करबद्ध होकर बोला, 'हे देव! विश्व की रक्षा करने में समर्थ आपको और जगत् को प्रकाशित करने वाले सूर्य को किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं होती फिर भी मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आपकी कृपा से मेरे शत्रु के विनष्ट हो जाने पर मैं सैन्य सहित आपका अनुचर बनकर अल्प समय में

ही सीता का संवाद ले आऊँगा।' (श्लोक १०३-१०५)

तब राम सुग्रीव सहित किष्किन्धा गए। विराध ने भी उनके साथ जाना चाहा; किन्तु राम ने उसे समझाकर रोक दिया। राम किष्किधा में प्रवेश न कर द्वार के निकट ही अवस्थित हो गए। तदुपरान्त असली सुग्रीव ने नकली सुग्रीव को युद्ध के लिए आह्वान किया। वह उसी समय गर्जन करता हुआ बाहर निकला। भोजन करने में ब्राह्मण जिस प्रकार आलस नहीं करते उसी प्रकार वीर भी युद्ध में आलस नहीं करते। दुर्द्धर चरणों की चोट से पृथ्वी को आहत करते हुए वे दोनों वीर अरण्य के उन्मत्त हस्ती की तरह युद्ध करने लगे। राम दोनों का एक रूप देखकर स्व-सुग्रीव और दूसरे सुग्रीव को नहीं पहचानने के कारण संशयान्वित होकर तटस्थ बने खड़े रहे। तदुपरान्त 'प्रथम यह करना उचित है' समझकर वज्रावर्त्त धनुष पर टंकार किया। उस टंकार से साहसगति को रूपान्तर करने वाली विद्या उसी क्षण हरिणी की भाँति भाग गई। साहसगति स्व-रूप में आ गया। तब राम ने उसका तिरस्कार किया और बोले, 'ओ पापी! माया से सबको मुग्ध कर तू पर-स्त्री को भोगना चाहता था? अब धनुष उठा'—ऐसा कहते हुए एक ही बाण से उसे मार डाला। हरिण को मारने के लिए सिंह को दूसरा थप्पड़ मारने की आवश्यकता नहीं होती। तदुपरान्त विराध की तरह राम ने सुग्रीव को भी सिंहासन पर बैठाया। पुरजन और अनुचरगण पूर्व की भाँति ही उसकी सेवा करने लगे। (श्लोक १०६-११५)

सुग्रीव ने हाथ जोड़कर अपनी तेरह कन्याओं के साथ विवाह करने के लिए राम से अनुरोध किया। प्रत्युत्तर में राम ने कहा, सुग्रीव! उन कन्याओं की या किसी भी अन्य वस्तु की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।' ऐसा कहकर राम बाहर उद्यान में चले गए। सुग्रीव ने राम की आज्ञा से नगर में प्रवेश किया।

(श्लोक ११६-११८)

उधर लङ्का में मन्दोदरी आदि रावण की रानियाँ खर-दूषण आदि की मृत्यु का समाचार सुनकर रोने लगीं। रावण की बहिन चन्द्रनखा भी दोनों हाथों से छाती पीटती हुई सुन्द को संग लेकर रावण के पास गई। रावण को देखकर उसका गला पकड़कर उच्च स्वर में रोती हुई बोलने लगी, 'अरे, देवों द्वारा मैं मारी गई। मेरा

पुत्र, मेरा पति, मेरा देवर और चौदह हजार योद्धा सभी मारे गए। भाई, तुम्हारे जीवित रहते अभिमानी शत्रुओं ने तुम्हारी दी हुई पाताल लङ्का हमसे छीन ली। इसलिए पुत्र सुन्द को लेकर प्राणरक्षा के लिए तुम्हारे पास आई हूं। तुम्हीं बताओ, अब मैं कहाँ जाकर रहूं ?' (श्लोक ११९-१२४)

तब रावण ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, 'तुम्हारे पुत्र और पति की हत्या करने वाले को मैं शीघ्र ही मार डालूंगा।' रावण इस शोक और सीता की विरह-वेदना में शिकारभ्रष्ट बाघ की तरह आर्त होकर बिछौने में लोट रहा था। उसी समय मन्दोदरी ने आकर उससे कहा, 'हे नाथ ! साधारण मनुष्य की भाँति, निश्चेष्ट होकर आप कैसे सोए हुए हैं ?' तब रावण बोला, 'सीता की विरह-वेदना में इतना आकुल हो गया हूं कि मुझ में किसी भी प्रकार की चेष्टा करने का, यहाँ तक कि बोलने-देखने का भी सामर्थ्य नहीं है। अतः हे मानिनी ! तुम यदि मुझे जीवित देखना चाहती हो तो अभिमान त्यागकर सीता के निकट जाओ और उसे शान्त भाव से समझाने की चेष्टा करो ताकि वह मेरे साथ सुख भोगने के लिए सम्मत हो जाए। मैंने गुरु साक्षी में नियम लिया था कि अनिच्छुक पर-स्त्री का भोग मैं नहीं करूंगा। वही नियम आज मेरे सम्मुख अर्गला के रूप में उपस्थित हो गया है।'

(श्लोक १२५-१३०)

रावण की बात सुनकर पति की वेदना से व्यथित होकर कुलीन मन्दोदरी उसी समय देवरमण उद्यान में गई और वहाँ जाकर सीता से बोली, 'मैं रावण की पट्ट महारानी मन्दोदरी हूं। लेकिन अब से मैं ही तुम्हारी दासी बनकर रहूंगी। एतदर्थ तुम रावण की बात मानो। हे सीता, तुम धन्य हो कारण जिसके चरण-कमल की सभी सेवा करते हैं ऐसे बलवान् मेरे पति तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा के लिए उद्यत हो गए हैं। यदि रावण-से पति प्राप्त हों तो उनके सम्मुख प्यादे के समान भूचारी और तपस्वी राम तो रङ्क तुल्य है।' मन्दोदरी की यह बात सुन सीता क्रोधित होकर बोली, 'अरे कहाँ सिंह और कहाँ शृगाल ? कहाँ गरुड़ और कहाँ काक पक्षी ? कहाँ राम और कहाँ तुम्हारे पति रावण ? अहो, तुम्हारा और तुम्हारे पति का दाम्पत्य-जीवन योग्य ही है।

कारण रावण परस्त्री से रमण करने की इच्छा करता है और तुम उसकी पत्नी होकर कुट्टनी का कार्य करने आई हो ? रे पापिन्, जब तुम्हारा मुँह देखना ही अनुचित है तब तुमसे बात क्या करूँ ? अतः तुम तुरन्त इस स्थान का परित्याग करो, मेरी दृष्टि से दूर हो जाओ ।' (श्लोक १३१-१३७)

उसी समय रावण भी वहाँ आ पहुंचा और बोला, 'सीता, तुम उस पर क्यों कुपित हो रही हो, वह तो तुम्हारी दासी है। मैं भी तो तुम्हारा दास हो गया हूं । अब तुम मुझ पर प्रसन्न होओ । सीता तुम मुझे दृष्टि द्वारा ही प्रसन्न क्यों नहीं कर रही हो ?' (श्लोक १३८-१३९)

महासती सीता ने मुँह फिरा लिया और बोली, 'अरे ओ दुष्ट, लगता है तुझ पर यमराज की दृष्टि पड़ गई है । इसीलिए तूने मुझ राम-प्रिया का हरण किया है ? हे हताश, हे अपार्थिव वस्तु का आशा कारी, तेरी इस आशा को धिक्कार ! शत्रुओं के लिए कालरूप अनुज सहित राम के आगे तू कब तक जीवित रहेगा ?' (श्लोक १४०-१४१)

सीता के इस प्रकार तिरस्कार करने पर भी रावण बार-बार पूर्व की भाँति अनुनय-विनय करने लगा । ऐसी बलवती कामावस्था को धिक्कार ! (श्लोक १४२)

उसी समय विपत्ति निमग्ना सीता को मानो देखने में असमर्थ होकर विश्व-प्रकाशक सूर्य पश्चिम समुद्र में जाकर विलीन हो गए अर्थात् अस्त हो गए । घोर रात्रि के प्रवेश करते ही घोर बुद्धि वाला रावण क्रोध और काम से अन्धा होकर सीता को विभिन्न प्रकार से कष्ट देने लगा । उल्लू घूत्कारने लगे, सियार फूँफाड़ने लगे, सिंह गर्जना करने लगे । बिलाव परस्पर झगड़ने लगे । बाघ पूँछ जमीन पर फटकारने लगे, साँप फूत्कारने लगे । भूत, प्रेत, पिशाच और बेताल नङ्गी बरछियाँ हाथ में लिए वहाँ टहलने लगे । ये सब रावण की माया से रचित होकर यमराज के सभासदों की तरह कूदते-फाँदते कुत्सित अङ्गभङ्गी करते-करते सीता को डराने लगे । सीता मन ही मन पंच परमेष्ठी का ध्यान करती हुई चुपचाप बैठी रही । अत्यन्त भयभीत होकर भी रावण की इच्छा नहीं की । (श्लोक १४३-१४८)

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विभीषण ने रात्रि का यह सारा वृत्तान्त सुना। अतः रावण के पास जाने के पूर्व वह सीता के पास गया और पूछा, 'भद्रे, तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? कहाँ से आई हो? यहाँ तुम्हें कौन लाया है? सब कुछ मुझे निडर होकर बताओ? कारण मैं पर-स्त्री के लिए सहोदर तुल्य हूं।' (श्लोक १४९-१५०)

उसे मध्यस्थ समझकर नीचा मुख किए सीता बोली, 'मैं राजा जनक की कन्या हूं और विद्याधर भामण्डल मेरा भाई है। रामचन्द्र मेरे पति हैं। राजा दशरथ की मैं पुत्रवधू हूं, मेरा नाम सीता है। अनुज सहित मेरे पति दण्डकारण्य में आए थे। मैं भी उनके साथ आई थी। वहाँ मेरे देवर ने एक दिन घूमते हुए आकाश स्थित एक खड्ग देखा। कौतुकवश उन्होंने वह खड्ग हाथ में ले लिया और उसकी धार की परीक्षा करने के लिए समीप के वंशजाल को छेद डाला। परिणामतः वंशजाल में स्थित खड्ग के साधक का मस्तक अज्ञानवश कट गया। (श्लोक १५१-१५४)

'युद्ध की इच्छा नहीं रखने वाले निरपराध व्यक्ति की हत्या मेरे हाथों से हो गई, यह बहुत निकृष्ट कार्य हो गया।' इसी प्रकार अनुताप करते हुए वे राम के पास आए। इसके थोड़ी देर बाद ही मेरे देवर के पदचिह्नों का अनुसरण करती हुई उस खड्ग की कोई उत्तर-साधिका क्रुद्ध होकर हमारे पास आई। इन्द्र से अद्भुत रूपवान् मेरे पति को देखकर काम-पीड़ित उसने मेरे पति से क्रीड़ा करने की प्रार्थना की। मेरे पति के अस्वीकार करने पर वह वहाँ से चली गई और एक वृहद् राक्षस सैन्य लेकर लौटी। 'संकट पड़ने पर सिंहनाद करोगे' राम की इस अनुज्ञा को स्वीकार कर लक्ष्मण युद्ध करने चले गए। कोई राक्षस मिथ्या सिंहनाद कर मेरे पति को दूर ले गया। तदुपरान्त निकृष्ट मनोभिलाषी अपनी मृत्यु की इच्छा से रावण मुझे हरण कर यहाँ ले आया।' (श्लोक १५५-१५९)

सीता की बात सुनकर विभीषण रावण के पास गया और प्रणाम कर बोला, 'हे स्वामी, आपने हमारे कुल को कलङ्कित करने वाला कार्य किया है। राम-लक्ष्मण जानकी के लिए यहाँ आएँ उसके पूर्व ही आप जानकी को लौटा दीजिए।' विभीषण की बात सुनकर रक्तिम चक्षु रावण बोला, 'अरे ओ डरपोक, यह क्या कहता है? तू मेरे पराक्रम को भूल गया है क्या? अनुनय-विनय से

सीता अवश्य ही मेरी पत्नी बनेगी। तत्पश्चात् यदि राम और लक्ष्मण यहाँ आये तो मैं उनकी हत्या करूँगा।' विभीषण बोला, 'हे अग्रज, नैमित्तिक ने कहा था, सीता के कारण हमारा कुल नष्ट होगा। नैमित्तिक का वही कथन लगता है सत्य होने वाला है। यदि ऐसा नहीं होता तो आप अपने अनुरक्त भाई के कथन को इस प्रकार नहीं टालते और मेरे द्वारा निहत दशरथ भी पुनः जीवित नहीं हो उठता। हे महाबाहु, जो भावी है वह अन्यथा नहीं होगी फिर भी मेरी आपसे प्रार्थना है, आप इस कुल-विनाशिनी सीता को छोड़ दें।' (श्लोक १६०-१६६)

मानो विभीषण की बात सुनी ही न हो, इस प्रकार रावण वहाँ से उठकर अशोक वृक्ष के नीचे से सीता को पुष्पक विमान में बैठाकर अपना ऐश्वर्य दिखाने लगा और कहने लगा, 'हे हंसगामिनी, रत्नमय शिखरयुक्त व मधुर जलस्रोतों से परिपूरित यह पर्वत मेरा क्रीड़ा पर्वत है। नन्दनवन-से ये सभी उद्यान हैं, इच्छानुसार भोग करने योग्य ये धारागृह हैं, हंस सहित क्रीड़ा करने के लिए ये नदियाँ हैं। हे शुभ्रे, स्वर्ग तुल्य ये रतिगृह हैं इनमें जहाँ भी तुम्हारी इच्छा हो मेरे साथ क्रीड़ा करो; किन्तु सीता हंस की तरह राम के चरणों का ही ध्यान करती रही। रावण के इस कथन को सुनकर भी किंचित् मात्र क्षोभ उसके मन में उत्पन्न नहीं हुआ। समस्त रमणीय स्थानों में भ्रमण कर अन्त में रावण ने पुनः सीता को अशोक वृक्ष के नीचे छोड़ दिया। (श्लोक १६७-१७२)

जब विभीषण ने देखा कि रावण उन्मत्त हो गया है, वह मेरी बात सुनेगा नहीं, उसने उसी विषय की आलोचना के लिए कुल-प्रमुखों की सभा बुलवाई। उनके एकत्र होने पर विभीषण बोला, 'हे कुल-मन्त्रीगण, कामादि आन्तरिक शत्रु भूत की तरह विषम होते हैं। काम किसी भी प्रमादी मनुष्य को विवश कर देता है। हमारे प्रभु रावण अत्यन्त कामातुर हो गए हैं। एक तो काम ऐसे ही दुर्जय है, फिर यदि उसे पर-स्त्री का आश्रय मिल जाए तो फिर कहना ही क्या? उसी काम के कारण लङ्कापति अत्यन्त बलवान् होने पर भी शीघ्र ही अत्यन्त दुःख के समुद्र में डूब जाएँगे।' (श्लोक १७३-१७६)

मन्त्रीगण बोले, 'हम तो केवल नाम के मन्त्री हैं वास्तविक

तो आप ही हैं जो इतनी दूर की दृष्टि रखते हैं। जबकि प्रभु काम के वशीभूत हो गए हैं तब उन पर हमारे कहने का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जिस प्रकार मिथ्या-दृष्टि मनुष्य पर जैन धर्म के उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सुग्रीव और हनुमान जैसे बलवान् पुरुष भी अब राम के साथ हो गए हैं। न्यायी महात्मा का पक्ष भला कौन नहीं लेता ? सीता के कारण हमारे कुलक्षय की बात नैमित्तकों ने कही थी फिर भी जो कुछ पुरुषार्थ के अधीन है, समयानुकूल वही उपाय हमको करना चाहिए।' उनकी बात सुनकर विभीषण ने लङ्का के दुर्ग पर आवश्यक यन्त्र स्थापित किया। मन्त्रीगण विचार रूपी नेत्रों से अनागत को भी देखते हैं। (श्लोक १७७-१८१)

उधर सीता के विरह से पीड़ित राम, सुग्रीव प्रदत्त आश्वासन पर किसी प्रकार दिन व्यतीत कर रहे थे। एक दिन उन्होंने लक्ष्मण को जो कुछ कहना था कहकर सुग्रीव के पास भेजा। लक्ष्मण तूणीर बांधकर एवं हाथ में धनुष और खड्ग लेकर सुग्रीव के निकट गए। अपने पदचाप से पृथ्वी को विदीर्ण, पर्वत को कम्पित और तीव्र वेग के कारण दोनों हाथों के झपाटे से राह के दोनों पार्श्व के वृक्षों को गिराते हुए वे किष्किन्धा नगर पहुंचे। भृकुटि के कारण जिनका ललाट भयङ्कर हो गया है और आंखें लाल हो रही थीं ऐसे लक्ष्मण को देखकर द्वारपालों ने भयभीत होकर राह छोड़ दी। तब लक्ष्मण सीधे सुग्रीव के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए। लक्ष्मण का आना सुनकर कपिराज सुग्रीव तत्काल प्रासाद से बाहर निकले और मारे भय के कांपते-कांपते उनके सन्मुख जा खड़े हुए। तब लक्ष्मण क्रुद्ध कण्ठ से बोले, 'हे कपिराज, क्या तुमने अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर लिया है जो निश्चिन्तमना अन्तःपुरिकाओं से परिवृत होकर सुख भोग रहे हो ? उधर तुम्हारे प्रभु राम वृक्ष के नीचे बैठकर एक-एक दिन एक-एक वर्ष की भांति व्यतीत कर रहे हैं। लगता है तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल बैठे हो। अब भी जागो और सीता को खोजने का प्रयास करो। नहीं तो फिर जाओ साहसगति के पथ पर। वह पथ अभी भी बन्द नहीं हुआ है।' (श्लोक १८२-१८९)

लक्ष्मण की बात सुनकर सुग्रीव उनके चरणों में गिरकर बोला, 'हे आर्य, मेरा प्रमाद सहन कर मुझे क्षमा करें और मुझ पर प्रसन्न हों। कारण आप भी मेरे प्रभु हैं। इस प्रकार लक्ष्मण

को शान्त कर उनके पीछे-पीछे वह राम के पास गया और भक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम किया। तदुपरान्त अपने सैनिकों को आदेश दिया, 'हे सैनिको, तुम सब पराक्रमी और सर्वत्र जाने में पूर्णतः समर्थ हो। अतः चारों ओर जाकर सीता की खोज करो।' ऐसी आज्ञा पाकर सुग्रीव के सैनिक समस्त द्वीप, पर्वत, वन, समुद्र और गुफाओं में सीता का सन्धान करने लगे। (श्लोक १९०-१९३)

सीता-हरण का संवाद सुनकर भामण्डल रामचन्द्र के पास आए और दुःखी मन से वहीं रहने लगे। अपने प्रभु के दुःख में दुःखी विराध भी एक वृहद् सेना लेकर वहाँ आया और पुराने नौकर की तरह उनकी सेवा करते हुए वहीं रहने लगा।

(श्लोक १९४-१९५)

सुग्रीव स्वयं भी सीता के सन्धान में निकला और अनुक्रम से कम्बूद्वीप में जा पहुंचा। उसे दूर से आते देखकर रत्नजटी सोचने लगा—'क्या रावण ने मेरे अपराध का स्मरण कर मुझे मारने के लिए महावीर इस वानरपति सुग्रीव को भेजा है? पराक्रमी रावण ने मेरी समस्त विद्याएँ तो पहले ही हरण कर ली हैं। अब यह वानर-पति मेरा प्राण-हनन करने आया है।'

(श्लोक १९६-१९८)

रत्नजटी ऐसा सोच ही रहा था कि सुग्रीव उसके निकट पहुंचे और उससे बोले, 'रत्नजटी! मुझे देखकर भी तुम खड़े क्यों नहीं हुए? आगे बढ़कर मुझसे मिलने भी नहीं आए। क्या आकाश में उड़ने में आलस आ रहा है?' रत्नजटी बोला, 'कपिराज! ऐसा नहीं है। रावण जब सीता का हरण कर लिए जा रहा था तब मैंने उसे रोका। उसी समय उसने मेरी समस्त विद्याएँ हरण कर ली थीं।' (श्लोक १९९-२००)

यह सुनते ही सुग्रीव तत्काल उसे उठाकर राम के निकट ले आए। राम ने उससे सीता का वृत्तान्त पूछा। तब उसने सीता का वृत्तान्त कहना शुरू किया—'हे देव! क्रूर और दुरात्मा रावण सीता का हरण कर ले गया है। हे राम, हे वत्स लक्ष्मण, हे भाई भामण्डल—इस प्रकार पुकारती-रोती सीता के शब्द सुनकर मुझे रावण पर क्रोध आया। मैं उससे लड़ने गया। क्रुद्ध होकर उसने मेरी समस्त विद्याएँ हरण कर लीं।' (श्लोक २०१-२०२)

सीता का वृत्तान्त सुनकर राम आनन्दित हुए और सुरसंगीतपुर के नरेश रत्नजटी को आलिंगन में ले लिया। फिर राम बार-बार उससे सीता के विषय में पूछने लगे और वह भी राम को प्रसन्न करने के लिए बार-बार सीता की बात बताने लगा। तब राम ने सुग्रीवादि योद्धाओं से पूछा, 'यहाँ से राक्षसपुरी लङ्का कितनी दूर है ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'वह पुरी दूर हो या निकट, उससे क्या फर्क पड़ता है ? उस विश्वविजयी रावण के सम्मुख तो हम तृण तुल्य हैं।' (श्लोक २०४-२०७)

राम बोले, 'मैं युद्ध में विजय प्राप्त कर सकूंगा या नहीं, इस बात को लेकर तुम लोग अभी से क्यों चिन्तित हो ? तुम लोग इच्छित वस्तु दिखाने की तरह मुझे उसे दिखा दो। तदुपरान्त लक्ष्मण के धनुष से निकले तीर जब उसकी कण्ठ नाली से रक्त-पान करेंगे तब समझ लोगे वह कितना वीर और सामर्थ्यवान् है।'

(श्लोक २०८-२०९)

लक्ष्मण बोले, 'वह रावण वीर है, जिसने छल का आश्रय लेकर ऐसा कार्य किया है ? संग्राम रूपी नाटक के दर्शक के रूप तुम लोग देखोगे कि उस कपटाचारी का शिरच्छेद क्षत्रियोचित रूप में मैं किस प्रकार करता हूं ?' (श्लोक २१०-२११)

जामवन्त बोले, 'आर्य ! आप में वह सामर्थ्य है यह तो ठीक है; किन्तु अनलवीर्य नामक एक साधु ने कहा था कि जो व्यक्ति कोटिशिला को उठाएगा वही रावण का वध करेगा। अत: हम लोगों के विश्वास के लिए आप उस शिला को उठाएँ।' 'मैं प्रस्तुत हूं' कहते हुए लक्ष्मण उठ खड़े हुए। तदुपरान्त वे विमान के द्वारा लक्ष्मण को वहाँ ले गए जहाँ कोटिशिला थी। लक्ष्मण ने तुरन्त उस शिला को अपने हाथों से उठा लिया। यह देखकर देव 'साधु-साधु' कहकर उन्हें सम्बोधित करते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे। अब सबको विश्वास हो गया। वे पूर्व की भाँति ही लक्ष्मण को विमान में बैठाकर राम के पास किष्किन्धा में लौट आए।

(श्लोक २१२-२१६)

तब वृद्ध कपिगण बोले, 'आपके द्वारा रावण का वध अवश्य होगा; किन्तु नीतिवान् पुरुषों का प्रथम कर्त्तव्य है दूत भेजना। यदि सन्देश-वाहक दूत द्वारा ही कार्य सम्पन्न हो जाता है तो

राजाओं को किसी अन्य उद्यम की आवश्यकता नहीं होती। अतः किसी वीर पुरुष को दूत के रूप में वहाँ भेजा जाए क्योंकि लङ्कापुरी में प्रवेश और निष्क्रमण उभय ही कठिन है। दूत पहले वहाँ जाकर विभीषण से मिले और सीता को लौटाने के लिए कहे। कारण, राक्षस कुल में वही एक मात्र नीतिज्ञ है। रावण यदि इस बात पर कान न दे तो वह आपके पास लौटकर आ जाएगा।'

(श्लोक २१७-२२१)

उनके कथन पर सहमत होने से सुग्रीव ने श्रीभूति के द्वारा हनुमान को बुलवा भेजा। सूर्य-से तेजसम्पन्न हनुमान ने तुरन्त आकर सभा में उपविष्ट राम को प्रणाम किया। सुग्रीव ने राम से कहा, 'पवनंजय के पुत्र हनुमान विपत्ति के समय हमारे एक मात्र साथी हैं। इनके समान विद्याधरों में कोई नहीं है। अतः सीता का संवाद लाने के लिए आप उनको भेजें।' (श्लोक २२२-२२५)

हनुमान ने कहा, 'विद्याधरों में मुझ से अनेक हैं। राजा सुग्रीव मेरे प्रति स्नेहवश ही ऐसा कह रहे हैं। गय, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, नील, द्विविद, जाम्बवन्त, अंगद, नल आदि अनेक विद्याधर यहाँ हैं, मैं भी उन्हीं में से एक हूं। यदि आप आदेश दें तो राक्षस द्वीप सहित लङ्का को उठाकर यहाँ लाऊँ या बान्धवों सहित रावण को बांधकर यहीं ले आऊँ।' (श्लोक २२६-२२९)

राम बोले, 'हनुमान, तुम में यह सब करने की शक्ति है; किन्तु अभी तुम यही करो कि लङ्का में जाकर सीता से मिलकर स्मारक के रूप में मेरी यह मुद्रिका उसे दे देना और उससे स्मृति-चिह्न रूप चूड़ामणि ले आना। उससे कहना देवी, आपके वियोग में राम अत्यन्त व्याकुल हैं। वे आपका सतत ध्यान करते हैं। आप राम के वियोग में प्राणों का परित्याग मत करिएगा। धैर्य रखें। चन्द दिनों में ही लक्ष्मण रावण को मारकर आपका उद्धार करेगा।' हनुमान बोले, 'प्रभु, आपकी आज्ञा का पालन कर मैं जब तक नहीं लौटूं तब तक आप यहीं रहें।' ऐसा कहकर राम को नमस्कार कर अनुचरों सहित एक द्रुतगामी विमान में बैठकर वे लङ्का की ओर प्रस्थान कर गए। (श्लोक २३०-२३६)

आकाश पथ से जाते हुए हनुमान क्रमशः महेन्द्रगिरि के शिखर पर पहुंचे। वहाँ उन्होंने अपने मामा महेन्द्र का महेन्द्रपुर

देखा। उस नगर को देखकर हनुमान के मन में आया यही नगर है जहां से मेरी निरपराध मां को मामा ने निकाल दिया था। ऐसा सोचते ही वे क्रोधित हो उठे। अतः रणवाद्य बजा दिया। ब्रह्माण्ड को चूर्ण कर सके ऐसी आवाज उस वाद्य से निकल कर दिशाओं में फैल गई। (श्लोक २३७-२३९)

शत्रु की ऐसी शक्ति देखकर इन्द्र-से पराक्रमी राजा महेन्द्र भी सैन्य और पुत्रों को लेकर नगर के बाहर आए। दोनों में आकाश के बीच घनघोर युद्ध हुआ। आहत सैनिकों के कटे हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग जिनसे रक्त प्रवाहित हो रहा था धरती पर आकर गिरने लगे। देखकर लगा मानो प्रलयकाल का मेघ बरस रहा हो। रणक्षेत्र में तीव्र गति से घूमते हुए हनुमान, प्रबल वायु जैसे वृक्ष को भग्न कर देती है उसी प्रकार शत्रु के सैन्य को भङ्ग करने लगे। महेन्द्र राजा के पुत्र प्रसन्नकीर्ति उन्हें रोकने के लिए उनसे अपने

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सम्बन्ध न जानने के कारण निःशङ्क भाव से उन पर अस्त्र प्रहार करने लगे। दोनों समान बलवान् और समान शक्तिसम्पन्न थे। अतः एक-दूसरे को अस्त्रों से क्लान्त करने लगे। युद्ध करते-करते हनुमान ने सोचा, 'हाय, मुझे धिक्कार है? जो प्रभु के कार्य में विलम्बकारी इस युद्ध को छेड़ बैठा। मुहूर्त मात्र में मैं इसे जीत सकता हूं; किन्तु ये मेरे मातृ-कुल के हैं। जो भी कुछ हो इस समय तो मुझे इन पर विजय प्राप्त करनी ही है। कारण युद्ध मैंने ही प्रारम्भ किया है।' (श्लोक २४०-२४६)

इस प्रकार विचार कर हनुमान ने प्रसन्नकीर्ति को शस्त्र प्रहार से अस्त व्यस्त कर उनके शस्त्र, रथ और सारथी को नष्ट कर उन्हें पकड़ लिया। तदुपरान्त राजा महेन्द्र के निकट जाकर उन्हें प्रणाम कर बोले, 'मैं आपका भानजा हूं, सती अञ्जना का पुत्र। मैं राम की आज्ञा से सीता की खोज में लङ्कापुरी जा रहा था, राह में आपके इस नगर को देखा। एक समय आपने मेरी मां को इस नगर से निष्कासित कर दिया था—यह बात मन में आते ही क्रोध में आकर मैं आपसे युद्ध करने को प्रवृत्त हो गया। आप मुझे क्षमा करें। मैं प्रभु राम के काम से जा रहा हूं। आप भी वहां जाएँ।' (श्लोक २४७-२५०)

अपने वीर शिरोमणि भानजे को आलिङ्गन में लेकर राजा

महेन्द्र बोले, 'लोगों के मुँह से इतने दिनों तक तुम्हारे पराक्रमी होने की बात ही सुनता आया हूं। आज भाग्य योग से तुम्हें स्व-नेत्रों से देखा है। अब तुम शीघ्र स्वामी के कार्य को सम्पन्न करने जाओ। तुम्हारा पथ कल्याणमय हो।' तब हनुमान ने लङ्का की ओर प्रस्थान कर दिया और राजा महेन्द्र स्व-सैन्य सहित राम के निकट गए। (श्लोक २५१-२५२)

आकाश-पथ से जाते हुए हनुमान दधिमुख नामक द्वीप पर पहुंचे। वहाँ उन्होंने कायोत्सर्ग ध्यान में निमग्न दो मुनियों को देखा। उनके ही निकट उन्होंने तीन निर्दोष शरीरधारिणी कुमारी कन्याओं को देखा जो विद्या-साधना में तत्पर होकर ध्यान कर रही थीं। उसी समय उस द्वीप में अकस्मात् दावानल प्रज्वलित हुआ। कुमारी कन्याओं तथा मुनियों के इस दावानल में भस्म हो जाने की सम्भावना के कारण स्वधर्मी वात्सल्य से प्रेरित हनुमान ने विद्या द्वारा समुद्र से जल लाकर, जिस प्रकार मेघ जल बरसा कर अग्नि को शान्त करता है उसी प्रकार वारि-वर्षण कर उस दावानल को शान्त कर दिया। उसी समय उन कन्याओं को भी विद्या सिद्ध हो गई। तब उन्होंने ध्यानरत मुनियों को प्रदक्षिणा देकर हनुमान से कहा, 'हे परम अर्हत् भक्त ! आपने हमारी विपत्ति में रक्षा की है इसलिए हम आपकी कृतज्ञ हैं। आपकी सहायता से असमय में ही हमारी विद्या सिद्ध हो गई।' (श्लोक २५३-२५८)

हनुमान ने पूछा, 'आप लोग कौन हैं ?' इसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा, 'इसी दधिमुख द्वीप में दधिमुख नामक एक नगर है। वहाँ गन्धर्वराज नामक एक राजा राज्य करते हैं। उनकी कुसुम-माला नामक रानी के गर्भ से हम तीनों कन्याओं का जन्म हुआ। अनेक खेचरपतियों ने हमारे पिता से हमारे लिए प्रार्थना की। अङ्गारक नामक एक उन्मत्त खेचरपति ने भी हमारे लिए प्रार्थना की; किन्तु हमारे स्वाधीनचेता पिता ने हममें से किसी को भी उसे नहीं दिया और एक मुनि से पूछा कि इन कन्याओं का पति कौन होगा ? मुनि बोले, 'जो साहसगति नामक विद्याधर को मारेगा वही तुम्हारी कन्याओं का पति होगा।' तब मेरे पिता उनकी खोज करने लगे; किन्तु उनका पता नहीं मिला। अतः वह कहाँ है यही जानने के लिए हम इस विद्या की साधना कर रही थीं। हमारी इस विद्या

को नष्ट करने के लिए उस दुष्ट अङ्गारक ने दावानल प्रकट किया, जिसे अकारण बन्धु आपने शान्त कर दिया। जो मनोगामिनी विद्या छह महीने में सिद्ध होती है, आपकी सहायता से मुहूर्त्त मात्र में सिद्ध हो गई।'
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
(श्लोक २५९-२६५)

साहसगति का वध राम ने किया था और वे उनके कार्य-साधन के लिए ही लङ्का जा रहे हैं और क्यों जा रहे हैं, यह समस्त कथा हनुमान ने उन लोगों को बता दी। यह सुनकर वे प्रसन्न हुयीं और हनुमान द्वारा कथित बात पिता को जाकर सुनाई। तब गन्धर्वराज तीनों कन्याओं और बृहद् सेना लेकर राम के निकट पहुंचे।

(श्लोक २६६-२६७)

वहाँ से वीर हनुमान लङ्का पहुंचे। वहाँ उन्होंने काल रात्रि-सी भयानक अशलिका नामक विद्या को देखा। विद्या भी उन्हें देखकर बोली, 'ओ बन्दर! तू कहाँ जा रहा है? अनायास ही तू मेरा भक्ष्य बन गया है।' ऐसा कहकर उसने मुँह फैलाया। हनुमान भी उसी प्रकार हाथ में गदा लिए उसके मुँह में प्रवेश कर गए और उसका पेट चीरकर सूर्य जैसे बादल से बाहर निकलता है उसी प्रकार निकल आए। उसने लङ्का के चारों ओर एक दीवार का निर्माण कर रखा था। हनुमान ने अपने विद्याबल से जिस प्रकार मिट्टी के पात्र को तोड़ दिया जाता है उसी प्रकार उसे तोड़ दिया। वज्रमुख नामक एक राक्षस उस प्राकार का रक्षक था। वह क्रुद्ध होकर हनुमान से युद्ध करने लगा। युद्ध में हनुमान ने उसे मार डाला। उस राक्षस के विद्याबल से बलवती लङ्कासुन्दरी नामक एक कन्या थी। स्व-पिता को निहत होते देख उसने हनुमान को युद्ध के लिए आह्वान किया। जिस प्रकार पर्वत पर बार-बार विद्युत्पात होता है उसी प्रकार वह हनुमान पर बार-बार अस्त्र-प्रहार कर अपनी रण-पटुता प्रदर्शन करने लगी। हनुमान ने अपने अस्त्रों से उसके अस्त्रों को रोककर अन्त में उसे पत्रहीन लता की भाँति निःशस्त्र कर दिया। (श्लोक २६८-२७५)

'कौन है यह वीर?' कहती हुई आश्चर्य सहित जैसे ही उसने हनुमान की ओर देखा वैसे ही काम-शर ने उसे बींध डाला अर्थात् वह काम के वशीभूत हो गई। तब वह हनुमान से बोली, 'हे वीर! आपने मेरे पिता की हत्या कर दी इसलिए क्रोधावेश में बिना कुछ

सोचे-समझे आपसे युद्ध करने लगी। एक साधु ने मुझे बहुत दिन पहले कहा था कि जो तेरे पिता की हत्या करेगा वही तेरा पति होगा। अत: आपके वशीभूत मुझे आप ग्रहण करें। समस्त संसार में आप-सा वीर कोई नहीं है। इसीलिए आप जैसे पुरुष की पत्नी बनकर स्त्रियों में मैं स्वाभिमानपूर्वक रहूंगी।' ऐसा कहकर माथा नीचा किए वह शान्त रूप में खड़ी रही। प्रसन्न होकर सानुराग हनुमान ने भी उस विनयशीला कन्या के साथ गान्धर्व विवाह कर लिया। (श्लोक २७६-२८०)

उसी समय सूर्य पश्चिम समुद्र में जाकर डूब गया। मानो आकाश रूपी अरण्य में विचरण करते-करते क्लान्त होकर वह स्नान करने के लिए समुद्र में उतर गया। पश्चिम दिशा का उपभोग करते हुए सूर्य ने मानो सन्ध्या मेघ के बहाने उसके वस्त्र छीन लिए। पश्चिम दिशा में अरुण मेघ को देखकर लगा मानो अस्त होते समय सूर्य ने अपना तेज वहां छोड़ दिया है। मेरा परित्याग कर नवीन अनुरागी सूर्य अब नवीन अनुरागिनी पश्चिम दिशा के साथ केलि के लिए गया है सोचकर ग्लानि से पूर्व दिशा म्लान हो गई। क्रीड़ा स्थल का परित्याग करने के दु:ख से कोलाहल के रूप में पक्षी क्रन्दन करने लगे। पति के दूर रहने पर रजस्वला स्त्रियां जिस प्रकार दु:खी हो जाती है उसी प्रकार चकवी पति-वियोग में दु:खी हो गई। पति-वियोग में पतिव्रता स्त्री जैसे म्लानमुखी हो जाती है उसी प्रकार सूर्य रूपी पति के अस्त हो जाने से पद्मिनी म्लान हो गई। सान्ध्य समीर में पुलकित और ब्राह्मणों द्वारा पूजित गायें अपने बछड़ों से मिलने की उत्कण्ठा में वन से बस्ती की ओर दौड़ने लगी। सूर्य ने अस्त होते समय राजा जैसे युवराज को राज्य अर्पण करते हैं उसी प्रकार अपना तेज अग्नि को दे दिया। नगर नारियों ने जब दीप जलाए तो लगा मानो तारे और नक्षत्रों की शोभा उन्होंने चुरा ली है या यह कहो कि वे ही नक्षत्र पंक्तियां हैं। सूर्य के अस्त होने पर भी चन्द्रमा उदित नहीं हुआ अत: उसी अवसर पर अन्धकार चारों ओर छा गया। दुष्ट पुरुष छल करने में बड़े चतुर होते हैं। पृथ्वी और आकाश रूपी पात्र अन्धकार से भर गया मानो अंजन गिरि के चूर्ण से अथवा अंजन से उसे भर दिया गया है। उस समय जल-स्थल दिशा और

आकाश कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। यहां तक कि अपना हाथ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। खड्ग-से काले अन्धकारमय आकाश में नक्षत्र पुंज ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो पाशा खेलने के पट्ट पर कौड़ियां बिखेर दी गई हों। काजल-सा श्याम और नक्षत्र-मय आकाश पुण्डरीक कमल से यमुना-दह को स्मरण कराता था। जब अन्धकार चारों ओर व्याप्त हो गया। तब आलोकहीन समस्त चराचर पाताल-से लगने लगे। अन्धकार बढ़ जाने पर दूतियां नागर की सन्धान में निःशङ्क होकर स्वच्छन्द विचरण करने लगीं, जैसे समुद्र में नदियां विचरण करती हैं। अभिसारिकाओं ने नुपुरों को घुटने तक चढ़ा लिया (जिससे शब्द न हों) और कस्तूरी का विलेपन लगा तथा श्याम वस्त्र धारण कर इधर-उधर विचरण करने लगीं। (श्लोक २८१-२९२)

उसी समय उदयगिरि के शिखर पर किरण रूपी अंकुर का महाकन्दभूत चन्द्र उदित हुआ। उसे देखकर लगा मानो किसी भव्य प्रासाद पर स्वर्ण कलश स्थापित किया गया है और अपसृय-मान अन्धकार स्वाभाविक शत्रुताजन्य कलङ्क के बनाने चन्द्र के साथ द्वन्द्वयुद्ध कर रहा है। विस्तृत गोकुल में जैसे वृष विचरण करते हैं उसी प्रकार विस्तृत आकाश में चन्द्र तारिकाओं के मध्य विचरण करने लगा। चन्द्र की देह पर लगा कलङ्क ऐसा लग रहा था मानो रजत पात्र में कस्तूरी रख दी गई है। चन्द्र से निकली किरणें ऐसी लग रही थी मानो विरही जनों ने कामदेव के तीर को हस्त-लाघव से स्खलित कर दिया है। चिरभुक्ता; किन्तु सूर्यास्त के कारण दुर्दशाग्रस्त कमलिनी का परित्याग कर भ्रमरगण अब कुमुद की स्तुति कर रहे हैं। नीचों की मित्रता को धिक्कार! चन्द्र स्व-किरणों को गिराकर शेफाली फूल को झराता हुआ ऐसा लग रहा था मानो अपने मित्र कामदेव के लिए पुष्पशर तैयार कर दिया है। चन्द्रकान्त मणि के जल में नवीन सरोवर निर्माण कर चन्द्र तब ऐसा लग रहा था मानो सरोवर के बहाने अपनी कीर्त्ति स्थापित कर रहा है। दिक्-समूह के मुख को निर्मल करने वाली ज्योत्स्ना ने; किन्तु इधर-उधर विचरण करती कुलटाओं का मुख पद्मिनी की तरह म्लान कर दिया। अतः निःशङ्क होकर हनुमान

ने वह रात्रि लङ्का सुन्दरी के साथ क्रीड़ा करके व्यतीत की।

(श्लोक २९९-३०८)

भोर होते ही इन्द्र की प्रिय (पूर्व) दिशा को मण्डित कर स्वर्णसूत्र-सा किरण युक्त सूर्य उदित हुआ। सूर्य-किरणों ने अविरत गिरकर विकसित कुमुद को मुदित कर दिया। जाग्रत होने पर रमणियों ने अपनी वेणियां खोलीं अतः फूल धरती पर बिखर गए। भ्रमर उन फूलों पर गुंजन करने लगे। लगा मानो फूल केशपाश के वियोग में क्रन्दन कर रहा हो। खण्डिता नायिका के मुख से जिस प्रकार (दुःखार्त) निःश्वास निकलता है उसी प्रकार रात्रि जागरण करने के कारण रक्त-नेत्रा गणिकाएँ कामी जन के घर से निकलने लगीं। उदित सूर्य के तेज ने जिनका कान्ति-वैभव लूट लिया था ऐसा चन्द्रमा लता-तन्तुओं के वस्त्र-सा दिखाई देने लगा। जिस अन्धकार को समस्त ब्रह्माण्ड धारण नहीं कर पा रहा था उस अन्धकार को सूर्य ने उसी प्रकार उड़ा दिया जैसे प्रचंड वायु मेघ को उड़ा देती है। रात्रि की निद्रा दूर हो जाने से नगरवासी अपने-अपने कार्य में लग गए। (श्लोक ३०९-३१६)

भोर होते ही पराक्रमी हनुमान ने लङ्कासुन्दरी से मधुर वचन द्वारा विदा ली और लङ्का में प्रवेश कर गए। तदुपरान्त वीरधाम एवं शत्रु सैन्य के लिए भयङ्कर हनुमान ने विभीषण के घर में प्रवेश किया। विभीषण ने उनका सत्कार कर आने का कारण पूछा। हनुमान ने गम्भीर भाव एवं अल्प शब्दों में उनसे कहा, 'रावण सीता को हरण कर लाया है। आप उसके छोटे भाई हैं। अतः शुभ परिणाम विचार कर राम की पत्नी सीता को उसके हाथ से मुक्त कराएँ। यद्यपि रावण बलवान् है फिर भी उसने रामपत्नी का हरण किया है। एतदर्थ परलोक में ही नहीं इस लोक में भी उसकी दुर्गति होगी।' (श्लोक ३१७-३२१)

विभीषण बोले, 'हे हनुमान, तुम जो कुछ कह रहे हो वह ठीक है। मैंने अपने अग्रज से सीता को छोड़ देने का अनुरोध आगे भी किया था अब फिर आग्रह करूँगा। इस बार यदि वे मेरे कहने से सीता को छोड़ दें तो बहुत अच्छा होगा।'

(श्लोक ३२२-३२३)

तदुपरान्त वहां से उड़कर हनुमान जहां सीता थी उसी

देवरमण उद्यान में गए। वहां उन्होंने अशोक वृक्ष के नीचे सीता को बैठे हुए देखा। देखा, उनके रूक्षकेश उड़-उड़ कर ललाट पर गिर रहे हैं। सतत प्रवाहित नेत्रों के जल से वहां सरिता की सृष्टि हो रही है। हिमपीड़ित कमलिनी की भांति उनका मुखपंकज म्लान है और द्वितीया की चन्द्रकला की तरह देह क्षीण हो गई है। ऊष्ण निःश्वास-पात से उनके अधर-पल्लव परिशुष्क हो गए हैं। स्थिर योगिनी की तरह वे राम के ध्यान में लीन हैं। उनका वस्त्र मलिन हो गया है—स्व-शरीर पर भी उनकी स्पृहा नहीं है।

(श्लोक ३२४-३२७)

उन्हें देखकर हनुमान सोचने लगे, 'ओह ये ही सीता है! ये तो वास्तव में शीलवती हैं। इनको तो देखकर ही मनुष्य पवित्र हो जाता है। सीता का विरह राम को पीड़ित कर रहा है यह तो उचित ही है। कारण, ऐसी रूपवती सुशीला और शुद्ध पत्नी भाग्यशाली को ही प्राप्त होती है। बेचारा रावण राम के ताप और अपने अतुल पाप से शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।' तदुपरान्त हनुमान ने अदृश्य होकर अपने साथ में लाई राम की अंगूठी को सीता की गोद में डाल दिया। उस अंगूठी को देखकर सीता प्रसन्न हुई। उसे प्रसन्न देखकर त्रिजटा रावण के पास जाकर बोली, 'इतने दिनों तक तो सीता दुःखी थी; किन्तु आज वह प्रसन्न हो गई है।' यह सुनकर रावण ने मन्दोदरी से कहा, 'लगता है अब सीता राम को भूल गई है और उसकी इच्छा मेरे साथ रहने की हो गई। अतः तुम जाकर उसे पुनः समझाओ।' अतः मन्दोदरी पति का दौत्य स्वीकार कर सीता को लुब्ध करने के लिए उसके निकट गई और विनीत भाव से बोली, 'रावण अतुल वैभवशाली और अद्वितीय सुन्दर है। तुम भी रूप और लावण्य में उसके योग्य ही हो। यद्यपि विधाता ने योग्य पुरुष के साथ तुम्हारा सम्बन्ध स्थापित नहीं किया; किन्तु अब योग्य सम्बन्ध होना वांछनीय है। हे जानकी, जो रावण सेवा करने योग्य है वही रावण तुम्हारी सेवा करना चाह रहा है। तब तुम उसे क्यों नहीं चाहती? हे शुभ्रे, तुम यदि रावण को चाहोगी तो मैं और अन्य सभी महिषियां तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगी।' (श्लोक ३२८-३३८)

यह सुनकर सीता बोली, 'पति की दौत्यकारिणी दुर्मुखी!

तेरे पति की तरह तेरा मुख भी देखने योग्य नहीं है। हे दुष्टा! खर आदि राक्षसों को मारने की तरह अब तेरे पति और देवरों को मारने के लिए राम लक्ष्मण आ गए हैं। सोच ले, मैं उनके चरणों में पहुंच गई हूं। हे पापिष्ठा! यहां से उठ और तुरन्त यहां से चली जा। मैं तुझसे बात भी नहीं करना चाहती।' सीता द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होकर मन्दोदरी उसी समय वहां से चली गई।

(श्लोक ३३९-३४१)

उसके जाते ही हनुमान प्रकट हुए और करबद्ध होकर सीता को नमस्कार कर बोले—'हे देवी! सौभाग्य से राम, लक्ष्मण सहित कुशल हैं। उनकी आज्ञा से आपको खोजने मैं यहां आया हूं। मेरे लौटने पर राम शत्रु संहार के लिए यहां आएंगे।

(श्लोक ३४२-३४३)

आंखों में अश्रु भरकर सीता बोली, 'हे वीर! तुम कौन हो? इस दुर्लंघ्य समुद्र को पार कर तुम यहां कैसे आए? मेरे प्राणनाथ लक्ष्मण सहित आनन्द में तो हैं? तुमने उन्हें कहां देखा है? वे वहां अपना समय कैसे व्यतीत कर रहे हैं?' (श्लोक ३४४-३४५)

हनुमान बोले, 'मैं पवनञ्जय का पुत्र हूं। अञ्जना मेरी माता हैं। मेरा नाम हनुमान है। आकाशगामिनी विद्या से मैंने समुद्र का अतिक्रम किया है। राम ने सुग्रीव के शत्रु का संहार किया है। इसलिए इस समय वे उनके वश में अवस्थित हैं। दावानल जिस प्रकार पर्वत को तप्त करता है उसी प्रकार राम अन्य को तापित करते हुए आपके विरह में रात-दिन तप्त हो रहे हैं। हे स्वामिनी, गाय के बिना बछड़ा जिस प्रकार व्याकुल हो जाता है उसी प्रकार लक्ष्मण सहित आपके दुःख से कातर हो गए हैं और निरन्तर शून्य दृष्टि से आकाश को देखते रहते हैं। उन्हें लेशमात्र भी दुःख नहीं है। कभी शोक से, कभी क्रोध से राम और लक्ष्मण सर्वदा दुःखी रहते हैं। सुग्रीव उन्हें बहुत आश्वासन देते हैं; किन्तु इससे उन्हें शान्ति नहीं मिलती। जिस प्रकार देवगण इन्द्र की सेवा करते हैं उसी प्रकार भामण्डल, महेन्द्र, विराध आदि खेचर अनुचर की भांति रात-दिन उनकी सेवा करते रहते हैं। हे देवी! आपके अनुसन्धान के लिए सुग्रीव ने मुझे उपयुक्त बताया है। अतः राम ने आपकी मुद्रिका देकर मुझे यहां भेजा है। प्रतिदान में उन्होंने आपसे

आपका चूड़ामणि माँगा है।' (श्लोक ३४६-३५३)

इस प्रकार राम का वृत्तान्त सुनकर सीता आनन्दित हो हो गई। इक्कीस दिन तक उन्होंने आहार ग्रहण नहीं किया था। उस दिन हृदय में सन्तोष हो जाने से और हनुमान के आग्रह पर उन्होंने आहार ग्रहण किया। फिर वे बोलीं, 'हे वत्स मेरे चिह्न स्वरूप यह चूड़ामणि तुम लो और यहाँ से शीघ्र चले जाओ। यहाँ अधिक समय तक रहने पर तुम्हें कष्ट उठाना पड़ेगा। क्रूर राक्षस को यदि तुम्हारे आने की खबर मिल गई तो वे तुम्हें मारने के लिए अवश्य ही यहाँ आ जाएँगे।' (श्लोक ३५४-३५६)

सीता का यह कथन सुनकर हनुमान मुस्कुराए और हाथ जोड़कर बोले, 'माँ! मेरे प्रति वात्सल्य भाव होने के कारण भीत होकर आप ऐसा कह रही हैं। मैं त्रिलोकविजयी राम का दूत हूं। मेरे लिए बेचारा रावण और उसकी सेना क्या है? अर्थात् तुच्छ है। हे स्वामिनी! आज्ञा दें तो रावण को सेना सहित मारकर आपको कन्धे पर बैठाकर राम के पास ले जा सकता हूं।'

(श्लोक ३५७-३५९)

सीता हँसकर बोली, 'हे भद्र! तुम्हारी बात पर विश्वास हो रहा है कि तुम अपने प्रभु राम को लज्जित नहीं करोगे। तुम राम और लक्ष्मण के दूत हो इसलिए तुम में सब प्रकार की शक्ति का होना सम्भव है; किन्तु मैं पर-पुरुष का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं चाहती। अतः तुम राम के पास जाओ। यहाँ तुम्हें जो कुछ करना था वह कर लिया। अब तुम्हारे वहाँ जाने पर जो कुछ करना उचित होगा राम करेंगे।' (श्लोक ३६०-३६२)

हनुमान बोले, 'माँ! अब मैं राम के पास जा रहा हूं; किन्तु इन राक्षसों को अपना सामान्य-सा पराक्रम दिखाकर जाऊँगा। रावण स्वयं को सर्वविजयी समझता है। वह अन्य के बल को स्वीकार करना नहीं चाहता। अतः मैं उसे दिखला देना चाहता हूं कि राम तो क्या उनका दूत भी कितना पराक्रमी है।'

(श्लोक ३६३-३६४)

पराक्रम की बात सुनकर 'तब ठीक है' कहकर सीता ने उन्हें अपनी चूड़ामणि दिया। चूड़ामणि लेकर उन्हें प्रणाम कर अपने पराक्रम से पृथ्वी को कम्पित करते-करते हनुमान वहाँ से चले

गए। (श्लोक ३६५)

तदुपरान्त वन्य हस्ती की भाँति अपने भुजबल से हनुमान ने देवरमण उद्यान को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। रक्त अशोक वृक्षों में निःशोक, वकुल वृक्षों में अनाकुल, आम्र वृक्षों में निष्करुण, चम्पक वृक्षों में निष्कम्प, मन्दार वृक्षों में अविरोधी, कदली वृक्षों में निर्दय और अन्य रमणीय वृक्षों में क्रूर हनुमान उन्हें नष्ट करने लगे। यह देखकर उद्यान के चारों ओर के द्वारपाल राक्षस हाथों में मुद्गर लिए उनकी ओर दौड़े और निकट आकर उन पर प्रहार करने लगे। तट स्थित पर्वत पर समुद्र तरङ्गों का आघात जिस प्रकार निष्फल होता है उसी प्रकार हनुमान पर उनके अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो गए। हनुमान ने क्रुद्ध होकर एक वृक्ष को उखाड़ा और उसी से राक्षसों को मारना आरम्भ कर दिया। जो बलवान् होते हैं उनके लिए सभी कुछ अस्त्र होते हैं। पवन तुल्य अस्खलित हनुमान वृक्षों की तरह उद्यान के रक्षक राक्षसों को भी विनष्ट करने लगे। कुछ राक्षस रावण के पास गए और उसे हनुमान का आगमन, उद्यान और उद्यान-रक्षक राक्षसों को विनष्ट करने की घटना निवेदित की। (श्लोक ३६६-३७३)

यह सुनकर रावण ने हनुमान को मारने के लिए शत्रुघातक अक्षयकुमार को आदेश दिया। युद्ध में उत्साही अक्षयकुमार उद्यान में गया और हनुमान को गाली-गलौज देने लगा। हनुमान ने कहा, 'भोजन पूर्व के फल की तरह युद्ध के पूर्व ही तुम मुझे प्राप्त हो।'

(श्लोक ३७४-३७५)

'अरे, ओ कपि! क्यों वृथा गाल बजा रहा है?' इस भाँति तिरस्कार कर रावणपुत्र अक्षयकुमार नेत्रवेग-रोधकारी तीक्ष्ण शर हनुमान पर बरसाने लगे। हनुमान ने भी बाण-वर्षा कर अक्षयकुमार को इस प्रकार आच्छादित कर दिया जिस प्रकार उद्वेलित समुद्र का जल द्वीप को आच्छादित कर देता है। हनुमान बहुत समय तक अक्षयकुमार से युद्ध करते रहे। तदुपरान्त शीघ्र युद्ध बन्द कर देने की इच्छा से हनुमान ने पशु की तरह अक्षयकुमार की हत्या कर डाली। (श्लोक ३७६-३७८)

अपने भाई का निधन सुनकर इन्द्रजीत क्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्र में आया और 'हे मारुति, खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए उस पर

अस्त्र से प्रहार करने लगा। दोनों महाबाहु वीरों में कल्पान्त काल की तरह दारुण और जगत् को क्षुब्ध करने वाला भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हो गया। शस्त्रवर्षाकारी वे दोनों ऐसे लग रहे थे मानो आकाश से पुष्करावर्त मेघ वारि-वर्षण कर रहा हो। एक के अस्त्र अस्त्र पर अनवरत प्रतिहत हो रहे थे। उससे जल-जन्तुओं में जिस प्रकार समुद्र आच्छादित होता है उसी प्रकार अल्प समय में ही आकाशमण्डल आच्छादित हो गया। (श्लोक ३७८-३८२)

दुर्निवार रावण-पुत्र ने जितने भी अस्त्र निक्षेप किए मारुति-पुत्र हनुमान ने उससे द्विगुणित शर निक्षेप कर उन्हें विफल कर दिया। राक्षस योद्धा भी हनुमान के अस्त्रों से क्षत-विक्षत हुए। उनकी देह से रक्तधारा प्रवाहित होने लगी। उन्हें देखकर लगा मानो जङ्गम पर्वत से रक्त प्रवाहित हो रहा है। (श्लोक ३८३-३८४)

इन्द्रजीत ने स्व-सैनिकों को विनष्ट और अन्य अस्त्रों को विफल होते देखकर उन पर नागपाश अस्त्र निक्षेप कर दिया। चन्दनवृक्ष जिस प्रकार सर्पों द्वारा वेष्टित होता है उसी प्रकार उस दृढ़ अस्त्र में हनुमान पैरों से सिर तक वेष्टित हो गए। यद्यपि नागपाश को काटने एवं शत्रुओं पर जयलाभ करने का सामर्थ्य हनुमान में था फिर भी बन्धक द्वारा कौतुक दिखाने की इच्छा से वे उसी प्रकार वेष्टित रहे। इन्द्रजीत ने आनन्दित होकर उन्हें रावण के सम्मुख उपस्थित किया। विजय की इच्छा रखने वाले राक्षस हर्षित होकर उन्हें देखने लगे। श्लोक ३८५-३८८)

रावण हनुमान से बोला, 'हे दुर्मति! तूने यह क्या किया? बेचारे राम-लक्ष्मण तो जन्म से ही मेरे आश्रित हैं। वनवासी, फलाहारी, मलिनदेही, किरात की तरह अपना जीवन व्यतीत करने वाले वे यदि तुम पर प्रसन्न भी होते हैं तो तुझे क्या दे सकते हैं? हे मन्दबुद्धि, क्या समझ कर तू राम-लक्ष्मण के कहने से यहाँ आया? देख, यहाँ आते ही तेरा जीवन विपन्न हो गया। भूचारी राम-लक्ष्मण बड़े चतुर लगते हैं जो तेरे द्वारा उन्होंने ऐसा कार्य करवाया; किन्तु धूर्त तो वे ही हैं जो अन्य के हाथों अङ्गार बाहर करवाते हैं। अरे, पहले तो तू मेरा सेवक था और अब दूसरे का सेवक बनकर आया है। इसलिए तू अवध्य है; किन्तु तुझे तेरे कृत्यों

की सजा देने के लिए ही तुझे सामान्य विडम्बना दी गई है।'

(श्लोक ३८९-३९३)

हनुमान बोले, 'रावण, मैं कब तुम्हारा सेवक था और तुम मेरे स्वामी? इस प्रकार बोलने में तुम्हें लज्जा नहीं आती? बहुत दिनों पहले की बात है, तुम्हारा सामन्त खर स्वयं को खूब बलवान् समझता था। उसे मेरे पिता ने वरुण के कारागार से मुक्त करवाया। तदुपरान्त तुमने मुझे अपनी रक्षा के लिए पुकारा था और मैंने भी वरुणपुत्रों के हाथों से तुम्हारी रक्षा की थी; किन्तु अब तुम पाप-कार्य में रत हो गए हो। अतः रक्षा के योग्य नहीं हो। इतना ही नहीं, पर-स्त्री का हरण करने वाले तुम जैसे से तो बात करना ही पाप है। हे रावण, अकेले लक्ष्मण के हाथों से ही तुम्हारी रक्षा कर सके ऐसा कोई भी व्यक्ति तुम्हारे परिचय में नहीं है फिर उनके अग्रज राम के हाथों से बच सकते हो ऐसा हो ही नहीं सकता।'

(श्लोक ३९४-३९८)

हनुमान की बातों को सुनकर रावण अत्यन्त क्रोधित हो उठा। वक्र-भृकुटि के कारण वह बड़ा भयङ्कर लगने लगा। वह होठ दबाकर बोला, 'ओ बन्दर! एक तो तूने शत्रु का पक्ष लिया है। फिर मेरे सम्मुख खड़े होकर ऐसे कटुक और उद्धत शब्द बोल रहा है? अतः ऐसी इच्छा हो रही है कि तुझे मार डालूँ; किन्तु तुझे जीवन से इतना वैराग्य क्यों है? कुष्ठ रोग से जिसकी देह विदीर्ण हो गई है, ऐसा व्यक्ति भी यदि मरना चाहे भी हत्या के भय से कोई उसे नहीं मारेगा। इस प्रकार दूत को जो अनन्य है, मार कर हत्या का दोष कौन लेगा? किन्तु, हे अधम! तेरा माथा मुँडवाकर गधे पर चढ़ाकर समस्त नगर में, लङ्का की सभी गलियों में तिरस्कृत करते हुए अवश्य ही घुमाऊँगा।'

(श्लोक ३९९-४०२)

रावण की बात सुनकर हनुमान ने उसी समय नागपाश को काट डाला क्योंकि कमलनाल से हाथी को कितनी देर तक बांध कर रखा जा सकता है? तदुपरान्त हनुमान ने विद्युत् दण्ड की भाँति उछलकर रावण के मुकुट को जमीन पर पटक दिया और पादाघात से उसे चूर्ण कर डाला। क्रुद्ध रावण चिल्लाने लगा– मारो, पकड़ो इस नीच को, इसे जाने मत दो।' किन्तु, कोई भी

उन्हें पकड़ नहीं पाया। वे पादाघात से समस्त लङ्का को कँपाते हुए चले गए। (श्लोक ४०४-४०५)

इस प्रकार गरुड़ की भाँति क्रीड़ा करते हुए हनुमान आकाश-पथ से राम के निकट पहुंच गए। राम को नमस्कार कर सीता का चूड़ामणि उनके सम्मुख रखा। राम ने तत्क्षण उसे उठाया और सीता की तरह उसे बार-बार हृदय से लगाने लगे।

(श्लोक ४०६-४०७)

तदुपरान्त राम ने पुत्र-स्नेह से हनुमान को छाती से लगा लिया और वहाँ की खबरें पूछने लगे। जिनके भुजबल की कथा सुनने को अन्य सभी उत्सुक थे, ऐसे हनुमान ने लङ्का में घटे समस्त वृत्तान्त, निजकृत रावण का अपमान और सीता की यथार्थ स्थिति सुनाई। (श्लोक ४०८)

षष्ठ सर्ग समाप्त

सप्तम सर्ग

सीता का पूर्ण संवाद प्राप्त कर राम-लक्ष्मण ने आकाश पथ से सुग्रीव सहित लङ्का के लिए प्रयाण किया। भामण्डल, नल, नील, महेन्द्र, हनुमान, विराध, सुषेण, जाम्बवान्, अङ्गद और अन्य अनेक विद्याधर राजा अपनी सेना से दिक् समूह को आवृत करते हुए राम के साथ चले। विद्याधरगण अनेक प्रकार के रणवाद्य बजाने लगे। उसके गम्भीर नाद से आकाशमण्डल गूँज उठा। अपने स्वामी का कार्य सिद्ध करने के लिए गर्वित खेचरगण ने विमान में, रथ में, अश्व पर, हस्ती पर एवं अन्य वाहनों पर बैठ-बैठ कर आकाश-पथ से गमन किया। (श्लोक १-५)

समुद्र के ऊपर से जाते हुए वे लोग अल्प समय में ही वेलंधर-पुर नगर के निकट पहुंचे। यह नगर वेलंधर पर्वत के ऊपर ही अवस्थित था। इस नगर में समुद्र से दुर्द्धर समुद्र और सेतु नामक दो राजा थे। उन्हें उद्धत देखकर राम की जो सेना अग्रवर्ती थी उनके साथ युद्ध करने लगी। स्व स्वामी के कार्य में चतुर नल और नील ने समुद्र एवं सेतु को पकड़ कर राम के सन्मुख उपस्थित किया। दयालु राम ने उनका राज्य उन्हें लौटा दिया। महान्

पुरुष पराजित शत्रु पर भी दया करते हैं। राजा समुद्र ने अपनी तीन कन्याओं का विवाह लक्ष्मण के साथ कर दिया। वे देखने में सुन्दर और स्त्रियों में रत्नरूपा थीं। उस दिन राम सैन्य सहित वहीं अवस्थित रहे। दूसरे दिन सुबह समुद्र और सेतु को लेकर वे वहां से रवाना होकर सुवेल गिरि के निकट पहुंचे। वहां के राजा सुवेल को पराजित कर उस दिन वहीं रहे। तदुपरान्त वहां से रवाना होकर तृतीय दिन हंसद्वीप पहुंचे। वहां से लङ्का निकट ही थी। वहां के राजा हंस को भी पराजित कर राम उस दिन वहीं रहे। लङ्का के अधिवासी राम के आगमन को सुनकर उसी प्रकार भयभीत हो गए जिस प्रकार मीन राशि पर शनि के आगमन से लोक भयभीत हो जाते हैं। उन्हें शङ्का होने लगी कि प्रलय काल चारों ओर से बढ़ा आ रहा है। (श्लोक ६-१४)

राम के सन्निकट आने का संवाद सुनकर हस्त, प्रहस्त, मरीच, सारन आदि रावण के हजार-हजार सामन्त युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। शत्रुओं को प्रताड़ित करने के लिए बुद्धिमान् रावण ने सैनिकों द्वारा करोड़ों महा भयङ्कर रणवाद्य बजवाए। उसी समय विभीषण ने रावण के निकट जाकर कहा, 'हे अग्रज, क्षण काल के लिए शान्त होकर शुभ फलदायी मेरे कथन पर विचार कीजिए। आपने इहलोक और परलोक दोनों को नष्ट करने वाला कार्य किया है। आपने पराई स्त्री का अपहरण किया है। इस अविवेक जन्य कार्य के कारण हमारा कुल लज्जित हो गया है। अब राम अपनी पत्नी को लेने के लिए यहां आ गए हैं। अतः सीता उन्हें सौंपकर उनका अतिथि सत्कार कीजिए। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो राम अन्य प्रकार से सीता को ले जाएँगे और आपके साथ आपके समस्त कुल को दोषी ठहराएँगे। साहसगति विद्याधर और खर राक्षस का अन्त करने वाले राम और लक्ष्मण की तो बात ही छोड़िए उनका दूत बनकर आने वाले हनुमान की शक्ति तो आपने देख ही ली है। इन्द्र से भी अधिक आपका वैभव है। यदि आपने सीता का परित्याग नहीं किया तो सीता के साथ-साथ आपका वैभव भी नष्ट हो जाएगा। आप दोनों प्रकार से नष्ट और भ्रष्ट हो जाएँगे। (श्लोक १५-२२)

विभीषण का यह कथन सुनकर इन्द्रजीत बोल उठा, 'तात,

आप तो जन्म से ही भीरु है। आपने समस्त कुल को दूषित किया है। आप मेरे पिता के सहोदर कदापि नहीं हैं। आप मूर्खों की भांति इन्द्रविजयी समस्त वैभव के अधीश्वर मेरे पिता के लिए जिस प्रकार शङ्का प्रकट कर रहे हैं उससे लगता है आप सत्य ही मृत्यु के अभिलाषी हो गए हैं। पहले भी आपने मिथ्या बोलकर मेरे पिताजी को ठगा है। आपने दशरथ को मारने की प्रतिज्ञा करके भी उसे मारा नहीं। अब, जब राम यहां आ गए हैं तब आप निर्लज्ज होकर उस भूचारी का भय दिखा उसे पिताजी के हाथ से बचाना चाहते हैं। इससे लगता है. आप राम के पक्ष के हैं। राम ने आपको वश में कर लिया है। अब आप विचारसभा में सम्मिलित होने योग्य नहीं हैं। कारण आप्त मन्त्रियों के साथ जो विचार किया जाता है वही शुभफलदायी होता है।

(श्लोक २३-२७)

विभीषण बोले, 'मैं तो शत्रु का पक्ष नहीं हूं; किन्तु लगता है तुमने कुल-शत्रु के रूप में जन्म लिया है। जन्मान्ध की भांति तुम्हारे पिता वैभव और काम में अन्धे हो गए हैं। अरे ओ मूर्ख, तुम कल के बालक, क्या समझ सकते हो? अग्रज, इस इन्द्रजीत पुत्र और आपके आचरण के कारण अल्प दिनों में ही निश्चय रूप से आपका पतन होगा। अब मैं आपके लिए और व्यर्थ चिन्ता नहीं करूंगा।' (श्लोक २८-३०)

विभीषण के ऐसे वचन सुनकर भाग्यहीन रावण को अत्यन्त क्रोध आ गया। वह भयङ्कर तलवार निकाल कर विभीषण को मारने के लिए अग्रसर हुआ। विभीषण ने भी भृकुटि तानकर अपने मुख को और अधिक भयङ्कर बना लिया। और हस्ती की तरह एक स्तम्भ को उखाड़ कर रावण के साथ युद्ध के लिए उद्यत हो गया। यह देखकर कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत ने बीच में पड़कर उन्हें युद्ध से रोका और महाव्रत जिस प्रकार दो मतवाले हाथियों को उनके अपने-अपने स्थानों पर ले जाते हैं उसी प्रकार उन दोनों को उनके अपने-अपने स्थानों पर ले गए। जाते-जाते रावण बोला, 'विभीषण, तुम लङ्का छोड़कर चले जाओ, कारण तुम अग्नि की भांति अपने आश्रय को विनष्ट करने वाले हो।' (श्लोक ३१-३४)

रावण की बात सुनकर विभीषण उसी क्षण लङ्का का परि-

त्याग कर राम के पास चले आए। उनके पीछे-पीछे अन्यान्य राक्षस और विद्याधरों की ३० अक्षौहिणी सेना भी रावण का परित्याग कर चली गई। विभीषण को सैन्य सहित आते देखकर सुग्रीव आदि चिन्तित हो गए। कारण डाकिनी की तरह शत्रु पर तत्काल विश्वास नहीं किया जा सकता। विभीषण ने प्रथम एक दूत भेज कर राम को अपने आने की सूचना दी। राम ने अपने विश्वास पात्र सुग्रीव के मुख की ओर देखा। (श्लोक ३५-३७)

सुग्रीव बोले, 'हे देव, यद्यपि सभी राक्षस जन्म से ही मायावी और क्षुद्र प्रकृति के होते हैं फिर भी यदि विभीषण यहां आना चाहते हैं तो आएँ। हम लोग गुप्त रीति से उनका शुभाशुभ भाव जान लेंगे एवं तदुपरान्त उनके भावानुसार योग्य व्यवस्था करेंगे।

(श्लोक ३८-३९)

उसी समय जो कि विभीषण को अच्छी तरह जानता था वह विशाल नामक खेचर बोला, 'हे प्रभु, इन राक्षसों में विभीषण ही एक मात्र धर्मात्मा और महात्मा है! इन्होंने ही रावण से सीता को छोड़ देने के लिए कहा था। रावण ने कुपित होकर इन्हें वहिष्कृत कर दिया। इसीलिए ये आपकी शरण में आए हैं। इसमें जरा भी मिथ्या नहीं है।' (श्लोक ४०-४१)

यह सुनकर राम ने उन्हें अपने शिविर में आने की आज्ञा दी। विभीषण ने आकर राम के चरणों में अपना मस्तक रखा। राम ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया। विभीषण बोले, 'हे प्रभु, मैं अपने अन्यायी अग्रज का परित्याग कर आपकी शरण में आया हूं, अतः मुझे भी सुग्रीव की तरह अपना आज्ञाकारी भक्त समझ कर सेवा की आज्ञा दीजिए!' (श्लोक ४२-४३)

राम ने उसी समय उन्हें आश्वासन देते हुई कहा, 'मैं लङ्का का राज्य आपको दूंगा।' महात्मा को किया हुआ प्रणाम कभी व्यर्थ नहीं जाता। (श्लोक ४४)

हंस द्वीप में आठ दिन अवस्थान कर राम कल्पान्त काल की भांति सैन्य सहित लङ्का की ओर प्रस्थान कर गए। लङ्का (बाह्य) के प्राकार के बाहर २० योजन भूमि को स्व-सेना द्वारा आवृत कर एवं व्यूह रचना कर राम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। राम की सेना के कोलाहल ने समुद्र ध्वनि की तरह समस्त लङ्का को वधिर

कर डाला । वह ध्वनि ऐसी थी कि लगता था ब्रह्माण्ड खण्ड-खण्ड हो जाएगा । (श्लोक ४५-४७)

रावण के असाधारण बलधारी प्रहस्तादि सेनापति और योद्धागण कवच पहन कर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए । कोई हाथी की पीठ पर बैठकर, कोई अश्व पर चढ़कर, कोई सिंह पर, कोई गधे पर, कोई रथारूढ़ होकर, कोई कुबेर की तरह मनुष्य की पीठ पर चढ़कर, कोई अग्नि की तरह भेड़ पर चढ़कर, कोई यम की भांति भैंसे पर चढ़कर, कोई रेवन्तकुमार की तरह अश्वारूढ़ होकर, कोई देवता की तरह विमान में बैठकर, ऐसे एक-एक कर अनेक युद्धकुशल वीर रावण के निकट एकत्रित हो गए । (श्लोक ४८-५१)

रत्नश्रवा का ज्येष्ठ पुत्र रावण क्रोध से लाल आंख किए युद्ध के लिए सज्जित होकर विविध आयुधों से पूर्ण रथ पर जाकर बैठ गया । द्वितीय यम-सा कुम्भकर्ण हाथ में त्रिशूल लेकर रावण के पास पार्श्वरक्षक बनकर खड़ा हो गया । इन्द्रजीत और मेघकुमार भी रावण के दोनों ओर खड़े हो गए—वे ऐसे लग रहे थे मानो वे रावण की दोनों भुजाएँ हों । उसके अन्य पराक्रमी पुत्र, कोटि-कोटि सामन्त और शुक, सारण, मरीच, मय और सुन्द आदि भी वहां उपस्थित हो गए । रण-कौशल में चतुर ऐसी असंख्य सहस्र अक्षौहिणी सेना से दिशाओं को आवृत करता हुआ रावण लङ्का से बाहर निकला । (श्लोक ५२-५६)

रावण की सेना में कोई सिंह-ध्वजा युक्त था, कोई अष्टापद-ध्वजा से युक्त था तो कोई चमरू-ध्वजा से युक्त, कोई हस्ती, कोई मयूर, कोई सर्प, कोई मार्जार तो कोई कुकुर ध्वजा युक्त था । किसी के हाथ में धनुष था, किसी के हाथ में खड्ग, किसी के हाथ में भुशुण्डी, किसी हाथ में मुद्गर, किसी के हाथ में त्रिशूल, किसी के हाथ में परिघ, किसी के हाथ में कुठार तो किसी के हाथ में पाश था । वे प्रतिपक्षियों को बार-बार आह्वान कर रणस्थल में चतुरता के साथ विचरण कर रहे थे । (श्लोक ५७-६१)

रावण की विशाल सेना वैताढ्य गिरि-सी लग रही थी । उसकी सेना ५० योजन भूमि को आवृत कर अवस्थित हो गई । (श्लोक ६२)

उभय पक्ष के सैनिक अपने-अपने नायकों की प्रशंसा कर विपक्ष के नायकों की निन्दा करने लगे और दूसरे को आक्षेप देते हुए गाल बजाकर ताल ठोक कर शस्त्रों को झंकृत कर करताल की तरह एक दूसरे से सम्बद्ध हो गए। 'ठहर-ठहर, भाग क्यों रहा है; अस्त्र धारण कर, भीरु की तरह खड़ा मत रह, यदि भला चाह रहा है तो अस्त्र रखकर शरण ले'—इस प्रकार कहते हुए चीत्कार करने लगे। तीर, शंकु, बर्छा, चक्र, गदा और परिघ अरण्य में उड़ने वाले पक्षियों की तरह उड़ने लगे और दोनों ओर की सेना में आ-आकर गिरने लगे। एक दूसरे के प्रहार से उभय पक्ष के योद्धा आहत होने लगे। उनके शिर कटकर उछलने लगे। वे उड़ते हुए सिर और धड़ ऐसे लगने लगे मानो समस्त आकाश राहु और केतुमय हो गया है। मुद्गर के आघात से हाथियों को धराशायी करने वाले वीर ऐसे लग रहे थे मानो यष्टि से तन्दुक खेल रहे हों। कोई दोनों हाथ, दोनों पैर और मस्तक कट जाने से ऐसे लग रहे थे मानो फल-फूल पत्र शाशा प्रशाखा-हीन वृक्ष खड़ा है। वीर योद्धागण शत्रु का मस्तक काट-काटकर जमीन पर गिराने लगे मानो वे क्षुधातुर यमराज को आहार दे रहे हैं।

(श्लोक ६३-७०)

बहुत देर तक युद्ध चला। पैतृक सम्पत्ति का अंश पाने में जैसे देर लगती है उसी प्रकार जयलक्ष्मी सधने में विलम्ब होने लगा। दीर्घकाल तक युद्ध करने के पश्चात् वानर सेना ने हवा जैसे वन को भग्न कर देती है उसी प्रकार राक्षस सेना को भग्न कर डाला। राक्षस सेना को परास्त होकर पीछे हटते देखकर रावण की जय के जमानत रूप हस्त और प्रहस्त युद्ध के लिए अग्रसर हुए। उनसे युद्ध करने के लिए इस पक्ष के वीर योद्धा नल और नील उनके सम्मुख गए। (श्लोक ७१-७४)

पहले वक्र और अवक्र ग्रहों की तरह रथारूढ़ होकर वे परस्पर मिले। एक-दूसरे को युद्ध के लिए आह्वान करने लगे। दोनों पक्षों से बाण-वर्षा होने लगी। परस्पर की इस बाण-वर्षा में चार व्यक्तियों के रथ विद्ध हो गए। क्षणमात्र में लगता नल विजयी हो रहा है; किन्तु दूसरे ही क्षण लगता हस्त विजयी हो रहा है। इस प्रकार हर क्षण परिवर्तित होने वाली जय-पराज्य को देखकर

निपुण व्यक्ति भी उनकी शक्ति का परिमाप करने में असमर्थ हो गए। अन्त में अपने पक्ष के योद्धाओं को मुख ताकते देखकर नल लज्जित हुए और साथ ही क्रोध से उद्दीप्त होकर तत्काल अव्याकुल रूप में क्षुरप्र तीर द्वारा हस्त का मस्तक काट डाला। ठीक उसी समय नील ने भी प्रहस्त को मार डाला। देवों ने हर्षित होकर आकाश से नल और नील पर पुष्प वृष्टि की। (श्लोक ७५-८०)

हस्त और प्रहस्त की मृत्यु से रावणपक्षीय वीर क्रुद्ध हो उठे। उनमें मारीच, सिंहजघन, स्वयम्भू, सारण, शुक, चन्द्र, अर्क, उद्दाम, वीभत्स, कामाक्ष, मकर, ज्वर, गम्भीर, सिंहरथ और अश्वरथ आदि योद्धा युद्ध के लिए आगे आए। मदनकुमार, संताप, प्रथित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिकर आदि वानर वीर उनके एक-एक व्यक्ति के साथ युद्ध करने लगे। कभी ऊपर उछलकर, कभी जमीन पर गिरकर मुर्गे जिस प्रकार लड़ाई करते हैं उसी प्रकार वे युद्ध करने लगे। इस भांति बहुत देर तक युद्ध होता रहा। मारीच राक्षस सन्ताप बन्दर पर, नन्दन बन्दर ज्वर राक्षस पर, उद्दाम राक्षस विघ्न बन्दर पर, दुरित बन्दर शुक राक्षस पर और सिंहजघन राक्षस प्रथित बन्दर पर प्रहार कर आहत करने लगे। उसी समय सूर्य हस्त हो गया। अतः राम और रावण की सेना ने युद्ध रोक दिया और अपने-अपने पक्ष के मृत और आहतों को खोजने लगे। (श्लोक ८१-८७)

रात व्यतीत हुई। सूर्य उदय हुआ। तब दानव सेना देव सेना के साथ जिस प्रकार युद्ध करने जाती है उसी प्रकार राक्षस योद्धा राम के योद्धाओं के साथ युद्ध करने लगे। राक्षस सेना के मध्य भाग में हाथी के हौदे पर बैठकर रावण स्व-सेना को संचालित करने आया। वह मेरु-सा प्रतीत हो रहा था। क्रोध के कारण उसके नेत्रों से अग्नि स्फुलिंग-से निकल रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो वह दिक् समूहों को भस्म कर देना चाह रहा हो। विविध अस्त्रों से सज्जित रावण यमराज से भी अधिक भयङ्कर लग रहा था। इन्द्र की भांति अपने प्रत्येक सेनापति पर दृष्टि रखकर और शत्रु को तृण समान समझता हुआ रावण युद्धभूमि में आया। उसे देखते ही राम के पराक्रमी सेनापति गण जिन्हें देव आकाश से देख रहे थे, सेना सहित युद्ध के लिए अग्रसर हुए। (श्लोक ८८-९२)

युद्ध आरम्भ हुआ। अल्प समय में ही युद्ध स्थल प्रवाहित रक्त के कारण कहीं नदी-सा, जमीन पर गिरे हुए हाथियों के कारण पर्वत-सा, रथ से टूट पड़ी मकरमुख ध्वजाओं से मकर के निवास स्थान-सा, अर्द्धभग्न बड़े-बड़े रथ से कहीं समुद्र से निकलते दांतों-सा, नृत्यरत कबन्धों से नृत्यभूमि-सा लग रहा था। (श्लोक ९३-९५)

रावण की हुंकार पर राक्षसगण प्रबल वेग से बन्दरों पर आक्रमण कर उन्हें पीछे लौटने को बाध्य करने लगे। अपनी सेना को पीछे हटते देखकर सुग्रीव क्रोधित हो गए। वे धनुष लेकर प्रबल सेना के पास पृथ्वी को कम्पित करते हुए आगे बढ़े। उनको जाते देख हनुमान उनको रोककर स्वयं युद्ध के लिए आगे आया। अगणित सैनिकों से रक्षित दुर्मद राक्षस-व्यूह अत्यन्त दुर्भेद्य था। फिर भी हनुमान ने जिस प्रकार मन्दराचल समुद्र में प्रवेश करता है उसी प्रकार उस व्यूह में प्रवेश किया। (श्लोक ९६-९९)

हनुमान को सेना के मध्य प्रवेश करते देखकर तीर-धनुष लेकर दुर्जय माली नामक राक्षस मेघ की तरह गर्जन करता हुआ उन पर आक्रमण करने लगा। दोनों में युद्ध प्रारम्भ हुआ। धनुष पर टङ्कार करते हुए दोनों वीर ऐसे लग रहे थे मानो दो सिंह अपनी पूंछ को जमीन पर पछाड़ रहे हों। एक-दूसरे पर वे प्रहार कर रहे थे। शस्त्र द्वारा अङ्ग छिन्न कर रहे थे और खूब गर्जना कर रहे थे। बहुत देर तक युद्ध करने के पश्चात् हनुमान ने माली को उसी प्रकार अस्त्रविहीन कर डाला जिस प्रकार ग्रीष्मकालीन सूर्य क्षुद्र सरोवर को शुष्क—जलविहीन कर देता है। तब हनुमान माली से बोले, 'हे बृद्ध राक्षस, तू यहां से चला जा। तुम्हें मारकर क्या लाभ होगा?' (श्लोक १००-१०४)

हनुमान का यह कथन सुनकर वज्रोदर राक्षस सम्मुख आया। बोला, 'रे पापी, दुर्वचनी, इधर आ। अब तेरी मृत्यु आ गई है। मुझसे युद्ध कर, मैं तुझे यमलोक पहुंचा दूं।

(श्लोक १०४-१०५)

बज्रोदर की बात सुनकर हनुमान केशरी सिंह की तरह गरजे और बाणवृष्टि कर उसे आच्छादित कर डाला। उन बाणों को छिन्न कर मेघ जैसे सूर्य को आच्छादित कर देता है उसी प्रकार बज्रोदर ने अपने बाणों से हनुमान को आवृत कर दिया। आकाश

से सौम्य और निरपेक्ष देवगण जो कि युद्ध देख रहे थे बोल उठे, 'अहो, वज्रोदर वीर हनुमान के साथ युद्ध करने में समर्थ और उनके योग्य हैं।' मान के पर्वत रूप हनुमान ने इस देवोक्ति को सहन न करने के कारण क्रुद्ध होकर उत्पात मेघ की तरह विचित्र शस्त्र वृष्टि कर समस्त राक्षस वीरों के सामने वज्रोदर को मार डाला।
(श्लोक १०६-११०)

वज्रोदर की मृत्यु से क्रुद्ध होकर रावण का पुत्र जम्बूमाली सम्मुख आया और महावत जैसे हाथी का आह्वान करता है उसी प्रकार तिरस्कारपूर्वक हनुमान को युद्ध के लिए आह्वान किया। एक-दूसरे का वध करने के लिए वे परस्पर साँप और सपेरे की तरह बाण-युद्ध करने लगे। वे एक-दूसरे पर आए हुए बाणों से द्विगुणित बाण बरसने लगे। उस समय उनकी स्थिति क्रमशः ऋणदाता और ऋण ग्रहण करने वाले जैसी हो गई। हनुमान ने कुपित होकर जम्बूमाली को रथ, अश्व और सारथी विहीन कर डाला। फिर उस पर मुद्गर से कठोर प्रहार किया। फलतः जम्बूमाली मूच्छित होकर गिर पड़ा। (श्लोक १११-११४)

जम्बूमाली को मूच्छित होते देखकर महोदर नामक राक्षस क्रोध से बाण वृष्टि करता हुआ युद्ध के लिए हनुमान के सन्मुख आया। अन्य राक्षसों ने भी हनुमान को मारने के लिए श्वान जैसे सूअर को घेर लेता है उसी भांति उन्हें चारों ओर से घेर लिया। हनुमान के तीव्र बाण शीघ्रतापूर्वक निर्गत होकर शत्रुओं को आहत करने लगे। कोई बाण हाथ में, कोई मुख में, कोई पैर में, कोई हृदय में, कोई उदर में प्रविष्ट हो गया। इस समय हनुमान राक्षसों की सेना में इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे वन में दावानल एवं समुद्र में वड़वानल। अल्प समय में ही हनुमान ने राक्षस सेना को इस प्रकार नष्ट कर डाला जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है। (श्लोक ११५-११९)

राक्षस सेना को इस प्रकार नष्ट होते देखकर कुम्भकर्ण क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए आया। वह इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो ईशानेन्द्र ही पृथ्वी पर उतर आया हो। पद प्रहार से, मुष्टि प्रहार से, कोहनी के प्रहार से थप्पड़ मारकर, मुद्गर के आघात से, टक्कर के आघात से इस प्रकार अनेक प्रकार से वे वानर

सेना को नष्ट करने लगे। (श्लोक १२०-१२२)

कल्पान्त काल के समुद्र की भांति रावण के तपस्वी भाई कुम्भकर्ण को युद्ध में उपस्थित देखकर सुग्रीव, भामण्डल, दधिमुख, महेन्द्र, कुमुद, अङ्गद और अन्यान्य वीर वानर अग्नि की भांति क्रोध से प्रज्वलित होकर युद्धभूमि में उपस्थित हुए। उन श्रेष्ठ बन्दरगणों ने विचित्र प्रकार के शस्त्रों की वर्षा करते हुए शिकारी जिस प्रकार सिंह को घेर लेता है उसी प्रकार कुम्भकर्ण को घेर लिया। (श्लोक १२३-१२५)

तब कुम्भकर्ण ने कालरात्रि-सा मुनि वाक्य की तरह अमोघ प्रस्वापन नामक अस्त्र इन पर निक्षेप किया। फलस्वरूप समस्त वानर सेना जिस प्रकार कुमुद दिन में सो जाता है उसी प्रकार निद्रा के वशीभूत हो गई। यह देखकर विभीषण ने तत्काल प्रबोधिनी नामक महाविद्या को स्मरण किया। उसके प्रभाव से समस्त वानर सेना जाग उठी और 'कुम्भकर्ण कहां है? मारो-मारो' आदि शब्द उच्चारित करने लगी। उनका कोलाहल वैसा ही लग रहा था जैसे पक्षीगण प्रभात होने पर करते हैं।

(श्लोक १२६-१२८)

सुग्रीव अधिष्ठित योद्धागग ने कानों तक खींच-खींच कर बाण बरसा कर कुम्भकर्ण को अस्त-व्यस्त कर दिया। सुग्रीव ने गदा के प्रहार से कुम्भकर्ण के सारथी और अश्वों की हत्या कर रथ को भग्न कर डाला। कुम्भकर्ण हाथ में गदा लेकर नीचे उतर आया। उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानो शिखर युक्त पहाड़ खड़ा हो, कुम्भकर्ण सुग्रीव की ओर दौड़ा। (श्लोक १२९-१३१)

कुम्भकर्ण के गतिवेग से जो वायु प्रवाहित हुई उससे हाथी के स्पर्श से जैसे वृक्ष गिर जाता है उसी प्रकार कितने ही जमीन पर गिर पड़े। नदी जिस प्रकार पाषाण की बाधा हटाकर निर्बाध तेजी से बहती रहती है, उसी प्रकार बानरों की बाधा हटाकर कुम्भकर्ण दौड़ा और सुग्रीव के रथ को चूर्ण कर डाला। सुग्रीव ने आकाश में उड़कर वहीं से इन्द्र जिस प्रकार पर्वत पर वज्र निक्षेप करता है उसी प्रकार कुम्भकर्ण पर एक वृहद शिलाखण्ड फेंका। कुम्भकर्ण ने गदा के प्रहार से उस शिला को चूर-चूर कर दिया। शिला का चूर्ण कुम्भकर्ण के चारों ओर इस भांति उड़ने लगा जैसे

कुम्भकर्ण बानर सेना को ढकने के लिए धूल वृष्टि कर रहा हो। तदुपरान्त बाली के अनुज सुग्रीव ने कुम्भकर्ण पर विद्युदस्त्र निक्षेप किया। उसे विफल करने के लिए कुम्भकर्ण ने भी कितने ही अस्त्र फेंके; किन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। कल्पान्त काल की तरह वह कुम्भकर्ण पर आकर गिरा और उसे जमीन पर गिरा कर मूच्छित कर दिया। (श्लोक १३२-१३८)

अपने भाई कुम्भकर्ण को मूच्छित होते देखकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। भृकुटी ताकने के कारण वह बड़ा भयङ्कर लगने लगा। रणभूमि की ओर उसे जाते देखकर लगा जैसे यमराज चलकर आ रहा हो। उसी समय इन्द्रजीत आकर उससे बोला, 'पिताजी, आपके सम्मुख तो यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र की भी शक्ति नहीं है जो खड़े रह सकें, बेचारे इन बानरों की तो बात ही क्या है? अतः हे देव, आप अभी न जाएँ। मैं जाकर इस बन्दर को जिस प्रकार थप्पड़ से मच्छर को मारा जाता है उसी प्रकार मार डालता हूं।' (श्लोक १३९-१४१)

इस प्रकार रावण को निरस्त कर महामानी इन्द्रजीत महापराक्रम दिखाता हुआ युद्ध क्षेत्र की ओर बढ़ा। उस पराक्रमी वीर के युद्ध क्षेत्र में आते ही बानर सेना उसी प्रकार रणस्थल का परित्याग कर भागने लगी जिस प्रकार सांप के आने पर मेंढक सरोवर को छोड़ जाते हैं। बानरों को भागते देखकर इन्द्रजीत बोला, 'बानरो, खड़े रहो, व्यर्थ में डरो मत। जो युद्ध नहीं करता मैं उसकी हत्या कदापि नहीं करता। मैं रावण का पुत्र हूं। हनुमान और सुग्रीव कहां है? उन्हें भी जाने दो. शत्रुता करने वाले राम-लक्ष्मण कहां है? (श्लोक १४२-१४५)

इस प्रकार गर्व से भरे क्रोध से लाल नेत्र किए इन्द्रजीत ने युद्ध के लिए सुग्रीव का आह्वान किया, जिस प्रकार अष्टापद-अष्टापद में युद्ध होता है उसी प्रकार भामण्डल भी इन्द्रजीत के भाई मेघवाहन के साथ युद्ध करने लगा। त्रिलोक के लिए भयङ्कर परस्पर प्रहारकारी वे ऐसे लग रहे थे मानो चारों दिग्गज या चार समुद्र हों। उनके रथों की तीव्र गति से पृथ्वी कांपने लगी, पर्वत हिलने लगे और महासागर क्षुब्ध हो उठा। अति-हस्तलाघव से और अनाकुलता से वे कब धनुष पर बाण रखते और छोड़ देते

वह जाना ही नहीं जाता था। वे लौहमय शस्त्रों से और देवाधिष्ठित अस्त्रों से बहुत देर तक युद्ध करते रहे; किन्तु कोई भी किसी को पराजित नहीं कर सका। (श्लोक १४६-१५१)

अन्तत: भयङ्कर क्रोधावेश में आकर इन्द्रजीत और मेघवाहन ने सुग्रीव और भामण्डल पर नाग-पाश अस्त्र निक्षेप कर दिया उससे वे लोग इस प्रकार बंध गए कि श्वास लेना भी उनके लिए कठिन हो गया। उसी समय कुम्भकर्ण की चेतना लौटी। उसने हनुमान पर गदा से प्रहार किया। हनुमान मूच्छित होकर गिर पड़े। तब कुम्भकर्ण ने तक्षक नाग-सी अपनी भुजाओं द्वारा हनुमान को उठाकर बगल में दबाया और लङ्का की ओर चल पड़े। यह देखकर विभीषण ने राम से कहा—'हे प्रभु, शरीर में जैसे दो नेत्र होते हैं उसी प्रकार सुग्रीव और भामण्डल आपकी सेना का सार है। उन्हें इन्द्रजीत और मेघवाहन ने नागपाश में बांध रखा है। उन्हें लेकर वे लङ्का जाएँगे उसके पूर्व ही मुझे आज्ञा दें मैं उन्हें बन्धन मुक्त कर ले आऊँ। हे प्रभु, सुग्रीव, भामण्डल एवं हनुमान के बिना हमारी सेना वीरविहीन है।' (श्लोक १५२-१५९)

विभीषण जिस समय राम से यह कह रहे थे उसी समय अङ्गद कुम्भकर्ण पर झपटे और युद्ध करने लगे। क्रोधान्ध कुम्भकर्ण ने ज्योंही अपनी भुजाएँ उठायीं हनुमान उसकी बगल से निकलकर जिस प्रकार पिंजरे का दरवाजा खुला पाते ही पक्षी उड़ जाता है तत्काल आकाश में उड़ गए। इन्द्रजीत और मेघवाहन के साथ युद्ध कर सुग्रीव और भामण्डल को मुक्त कराने के लिए विभीषण रथ पर चढ़कर उनकी ओर बढ़ा। विभीषण को आते देखकर इन्द्रजीत सोचने लगा पिता का छोटा भाई होते हुए भी विभीषण मुझसे युद्ध करने आ रहे हैं। चाहे कुछ भी हो आखिर ये मेरे पितृव्य हैं। उनसे युद्ध करना मेरे लिए उचित नहीं है। कारण ये मेरे पितृतुल्य हैं। अत: मेरा यहां से चले जाना ही उचित है। अपने से बड़े और पूज्यों के सम्मुख से पीछे हटना लज्जास्पद नहीं है। नागपाश में बद्ध शत्रु अवश्य ही मर जाएंगे। अत: उन्हें यहीं पटक कर चला जाऊँ ताकि वे मेरे निकट नहीं आएँ और न ही मुझे उनसे युद्ध करना पड़े। ऐसा सोचकर मेघवाहन के साथ इन्द्रजीत वहां से चला गया। विभीषण भामण्डल और सुग्रीव के पास जाकर खड़े

हो गए, राम और लक्ष्मण भी चिन्ता से म्लान मुख बने हिमाच्छादित सूर्य और चन्द्र की तरह वहां पहुंचे। (श्लोक १६०-१६७)

उसी समय राम ने सम्पूर्ण निकाय के देव महालोचन को स्मरण किया जिन्होंने राम को पहले वरदान दिया था। वह देव अवधि ज्ञान से समस्त वृत्तान्त को जानकर वहां आया और राम को सिंहनिनादा नामक विद्या, मूसल, रथ और हल दिया साथ ही लक्ष्मण को गारुड़ी विद्या, रथ और युद्ध में शत्रु को विनाश करने वाली विदयुद्वदना नामक गदा दी। इसके अतिरिक्त उसने आग्नेय, वायव्य आदि दिव्य अस्त्र और छत्र भी दिए। देव के चले जाने के पश्चात् लक्ष्मण सुग्रीव और भामण्डल के पास गए। उनके वाहन गरुड़ को देखते ही सुग्रीव और भामण्डल से लिपटे नागपाश के नागगण उसी समय भाग छूटे। दोनों वीर मुक्त हो गए। राम की सेना में चारों ओर जय-जयकार होने लगा। राक्षस सेना में सूर्यास्त के साथ-साथ हताशा का अन्धकार छा गया।

(श्लोक १६८-१७३)

तीसरे दिन सुबह राम और वानर-सेना पूर्ण बलपूर्वक युद्ध क्षेत्र में अवतरित हुई। भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हुआ। निक्षिप्त अस्त्र ऐसे लग रहे थे मानो कृतान्त दांत चबाते हुए जा रहा है। उस प्राण-संहार की लीला को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे असमय में ही प्रलयकाल के संवर्त मेघ ने वृष्टि आरम्भ कर दी है। मध्याह्नकाल के ताप से तप्त वराह जिस प्रकार सरसी—जलाशय के जल को मथ डालता है उसी प्रकार राक्षस सेना ने वानर-सेना को मथ डाला। (श्लोक १७४-१७६)

अपनी सेना को भग्नप्राय देखकर सुग्रीवादि वानर वीरों ने योगी जिस प्रकार परकाया में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राक्षस सेना में प्रवेश किया। उससे आक्रान्त होकर गरुड़ के दर्शन से सर्प, जल में कच्चा घड़ा पराभूत हो जाता है (गल जाता है) उसी प्रकार राक्षस सेना भी पराभूत हो गई। (श्लोक १७७-१७८)

राक्षस सेना को पराभूत होते देखकर क्रुद्ध रावण स्वयं युद्ध के लिए अग्रसर हुआ। उसके सुदीर्घकाय रथ के पहिए इस प्रकार घूमने लगे मानो वे पृथ्वी का वक्ष फाड़ देना चाहते हों। दावानल जैसे विध्वंसकारी रावण के सामने कोई भी वानर वीर खड़ा नहीं

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

रह सका। यह देखकर राम स्वयं युद्ध में जाने के लिए प्रस्तुत हुए; किन्तु विभीषण उन्हें रोककर स्वय युद्धस्थल में पहुंचे। उन्हें देखकर रावण बोल उठा, 'अरे विभीषण! तूने किसका आश्रय लिया है? क्रोध से भरे मुझे युद्धस्थल में आते देखकर मेरे मुख के प्रथम ग्रास के रूप में मरने के लिए तुझे भेज दिया। शिकार के समय शिकारी जिस प्रकार वराह के सम्मुख कुत्ता भेज देता है उसी प्रकार अपने जीवन की रक्षा के लिए राम ने तुझे मेरे सामने भेजकर बुद्धिमानी का ही कार्य किया है। हे वत्स! अभी भी तुझ पर मेरा स्नेह है। अतः तू शीघ्र यहाँ से चला जा। आज मैं राम और लक्ष्मण सहित समस्त वानर-सेना को विनष्ट करूँगा। एतदर्थ तू मरने वालों की संख्या में अपना नाम युक्त मत कर। तू सानन्द अपने स्थान को लौट जा। आज भी तेरी पीठ पर मेरा वरद हस्त है।' (श्लोक १७९-१८५)

रावण के ये वचन सुनकर विभीषण बोले, 'हे अग्रज! तुम नहीं जानते राम क्रुद्ध होकर यमराज की भाँति तुम पर आक्रमण करने आ रहे थे। मैंने ही उन्हें बहाना बनाकर रोका है। तुम्हारे साथ युद्ध करने के बहाने मैं तुम्हें समझाने आया हूं। तुम अब भी मेरी बात मानकर सीता को छोड़ दो। हे अग्रज! मैं राम के पास न मृत्यु के भय से आया हूं, न राज्य के लोभ से। मैंने तो अपवाद के भय से उनकी शरण ली है। अतः सीता को छोड़कर—अपवाद और कलङ्क को छोड़ दो तो मैं भी राम का परित्याग कर तुम्हारे पास लौट आऊँगा।' (श्लोक १८६-१८९)

विभीषण की यह बात सुनकर रावण कुपित होकर बोला, 'हे दुर्बुद्धि, हे कायर! तू क्या अब भी मुझे भय दिखा रहा है? मैंने तो मात्र भ्रातृ-हत्या के भय से ऐसा कहा था। दूसरा कोई कारण नहीं था'—कहते हुए रावण ने धनुष पर टङ्कार की। 'मैं भी भ्रातृ-हत्या के भय से ही तुम्हें ऐसा कह रहा था। दूसरा कोई कारण नहीं था'—विभीषण ने भी धनुष पर टङ्कार की। तदुपरांत नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों को निक्षेप कर दोनों भाई उद्धततापूर्वक युद्ध करने लगे। (श्लोक १९०-१९३)

इसी समय कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत एवं अन्य राक्षस भी यमराज के दूतों की तरह स्वामि-भक्ति से प्रेरित होकर वहां उपस्थित हो

गए। उन्हें आते देखकर राम-लक्ष्मण आदि भी युद्ध के लिए अग्रसर हुए। कुम्भकर्ण और राम, लक्ष्मण और इन्द्रजीत, सिंहजघन और नील, घटोदर और दुर्मुख, दुर्मति और स्वयम्भू, शम्भु और नल, मय और अङ्गद, चन्द्रनख और स्कन्द, विघ्न और चन्द्रोदर-पुत्र, केतु और भामण्डल, जम्बूमाली और श्रीदत्त, कुम्भ और हनुमान, सुमाली और सुग्रीव, धूम्राक्ष और कुन्द और सागर एवं चन्द्ररश्मि आदि अन्यान्य राक्षस अन्यान्य वानरों के साथ समुद्र में जिस प्रकार एक मकर अन्य मकर के साथ युद्ध करता है उसी प्रकार युद्ध करने लगे। (श्लोक १९४-१९९)

भयङ्कर युद्ध होने लगा। इन्द्रजीत ने क्रुद्ध होकर लक्ष्मण पर तापस अस्त्र फेंका। शत्रु को ताप देने वाले लक्ष्मण ने पवनास्त्र से अग्नि जिस प्रकार मोम को गला देती है उसी प्रकार उसे गलाकर निष्फल कर दिया। लक्ष्मण ने इन्द्रजीत पर नागपाश अस्त्र चलाया। जल में उतरा हाथी जिस प्रकार रस्सी से बाँधा जाता है उसी प्रकार इन्द्रजीत नागपाश से बँध गया। नागपाश से बँधकर इन्द्रजीत जमीन पर गिर पड़ा मानो पृथ्वी को चीर डालना चाहता हो। लक्ष्मण की आज्ञा से विराध ने उसे उठाकर रथ में डाल दिया और बन्दी की तरह उसे अपने शिविर में ले गया। राम ने भी कुम्भकर्ण को नागपाश में बाँध दिया। राम की आज्ञा से भामण्डल उसे उठाकर अपनी छावनी में ले गया। मेघवाहन आदि वीरों को बाँध-बाँधकर राम के योद्धा अपने-अपने शिविर में ले गए।

(श्लोक २००-२०६)

युद्ध की यह स्थिति देखकर रावण शोक से व्याकुल हो उठा। उसने क्रोधावेश में जयलक्ष्मी के मूल-सा त्रिशूल विभीषण पर फेंका। उस त्रिशूल को लक्ष्मण ने अपने बाणों से मध्य में ही कदलीखण्ड की तरह नष्ट कर डाला। तब विजयार्थी रावण धरणेन्द्र की दी हुई अमोघ विजया नामक शक्ति को आकाश में घुमाने लगा। धग धग, तड़-तड़ करती हुई वह शक्ति प्रलयकाल में चमकने वाली विद्युत् की भाँति दिख रही थी। उसे देखकर देवगण आकाश से हट गए। सैनिकों ने आँखें बन्द कर लीं। कोई भी स्वस्थ रूप से वहाँ खड़ा नहीं रह सका। (श्लोक २०७-२११)

उस अमोघ शक्ति को देखकर राम लक्ष्मण से बोले, 'हमारा

शरणागत विभीषण यदि इस शक्ति से निहत हो गया तो यह ठीक नहीं होगा। लोग हमें आश्रित-घातक कहकर धिक्कारेंगे।' राम की बात सुनकर लक्ष्मण विभीषण के सम्मुख जाकर खड़े हो गए। गरुड़ पर चढ़े लक्ष्मण को आगे आते देखकर रावण बोला—'हे लक्ष्मण! मैंने यह शक्ति तुझे मारने के लिए प्रस्तुत नहीं की है। अतः अन्य की मृत्यु के मध्य आकर स्वयं मत मर—अन्यथा तू स्वयं मर जा। कारण, तुझे तो मैं मारूँगा ही। तेरा आश्रित यह विभीषण, बेचारा भिखारी की भाँति मेरे सम्मुख खड़ा है।'

श्लोक २१२-२१५)

तत्पश्चात् उसने उत्पात वज्रतुल्य उस शक्ति से लक्ष्मण पर प्रहार किया। उस शक्ति को लक्ष्मण की ओर आते देखकर सुग्रीव, हनुमान, भामण्डल आदि वीरों ने अपने विभिन्न प्रकार के अस्त्रों द्वारा उसे रोकना चाहा; किन्तु वह शक्ति सभी की अवज्ञा कर निर्विघ्न रूप में जिस प्रकार उन्मत्त हाथी अंकुश से नहीं रुकता उसी भाँति समुद्र के बड़वानल की तरह प्रज्वलित होकर लक्ष्मण के हृदय पर जा लगी। उसके आघात से लक्ष्मण मूच्छित होकर गिर पड़े। वानर-सेना में चारों ओर हाहाकार मच गया।

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(श्लोक २१६-२१९)

राम क्रुद्ध होकर पंचानन रथ में बैठकर रावण को मारने की इच्छा से युद्ध करने लगे। मुहूर्त भर में उन्होंने रावण के रथ को भग्न कर दिया। तब रावण अन्य रथ पर चढ़ा। जगत् में अद्वितीय वीर राम ने इस प्रकार पाँच-पाँच बार रावण के रथ को भग्न कर डाला। तब रावण ने सोचा—राम तो अनुज वियोग में स्वयं ही मर जाएगा। क्यों व्यर्थ ही मैं युद्ध करूँ। ऐसा सोचकर वह लङ्का लौट गया। तब शोकाकुल राम, लक्ष्मण के पास आए। उसी समय सूर्य अस्त हो गया। मानो राम के शोक से आतुर होकर वह आकाश में रह नहीं पाया। (श्लोक २२०-२२४)

लक्ष्मण को मूच्छित देखकर राम भी व्याकुल बने अचेत होकर गिर पड़े। सुग्रीवादि ने आकर राम पर चन्दन जल के छींटे डाले। फलतः राम की संज्ञा लौटी। राम उठे और लक्ष्मण के पास जाकर बैठ गए और इस प्रकार विलाप करने लगे, 'हे वत्स, बताओ तुम्हें क्या कष्ट हुआ है? तुमने क्यों मौन धारण कर रखा

है ? यदि नहीं बोल पा रहे हो तो इशारे से ही कुछ बताकर अपने अग्रज को प्रसन्न करो। हे प्रियदर्शन वीर, सुग्रीवादि तुम्हारे ये अनुचर तुम्हारा मुख देख रहे हैं, बोलकर या देखकर किसी भी प्रकार तुम उन्हें अनुगृहीत क्यों नहीं करते ? यदि तुम इस लज्जावश नहीं बोल रहे हो कि रावण तुम्हारे सामने से जीवित चला गया तो बोलो तुम्हारे इस मनोरथ को मैं तत्काल पूर्ण करूँगा। अरे ओ दुष्ट रावण, तू भाग कर कहां जा रहा है। मैं तुझे अल्प समय में ही मृत्यु-पथ का पथिक बना दूंगा।' (श्लोक २२५-२३०)

ऐसा कहकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर वे उठ खड़े हुए। उसी समय सुग्रीव उनके सन्मुख आकर विनयपूर्वक बोले, 'हे स्वामी, अभी रात्रि है, रावण लङ्का लौट गया है। हमारे स्वामी लक्ष्मण शक्ति के प्रहार के कारण अचेत हो गए हैं। इसीलिए अभी इनकी चेतना को लौटाने का प्रयत्न करें। अब रावण को मरा ही समझ लें।' (श्लोक २३१-२३३)

राम पुन: विलाप करने लगे, 'ओह ! पत्नी का हरण हो गया। अनुज लक्ष्मण मारा गया; किन्तु यह राम अभी भी जीवित है। यह क्यों नहीं हजार टुकड़े हो गया ? हे मित्र सुग्रीव, हे हनुमान, हे भामण्डल, हे नल, हे अङ्गद, हे विराध और हे अन्यान्य वीरो ! तुम सब अपने-अपने स्थान को लौट जाओ। हे विभीषण ! सीता हरण और लक्ष्मण की मृत्यु से तुम दु:खी हो जिसके कारण तुम अपना अभीष्ट अभी तक प्राप्त नहीं कर सके, उसे हे बन्धु, कल सुबह ही अपने आत्मीय रूपी शत्रु रावण को मेरे आत्मीय लक्ष्मण का अनुगामी होते देखोगे। तुम्हें कृतार्थ करने के पश्चात् मैं भी अपने अनुज का अनुसरण करूँगा। कारण लक्ष्मण के बिना सीता का भी मेरे जीवन में क्या प्रयोजन है ?' (श्लोक २३४-२३८)

विभीषण बोले, 'हे प्रभु, आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ? इस शक्ति से मूच्छित व्यक्ति मात्र एक रात्रि ही जीवित रहता है। अत: रात्रि समाप्त होकर प्रभात होने के पूर्व ही मन्त्र-तन्त्र द्वारा लक्ष्मण के आघात का प्रतिकार करने का प्रयत्न करें।'

(श्लोक २३९-२४०)

राम ने यह स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त सुग्रीव आदि ने विद्या बल से राम और लक्ष्मण के चारों ओर चार-चार द्वार

विशिष्ट सात प्राकार बनाए। पूर्व दिशा के द्वार पर क्रमशः सुग्रीव, हनुमान, तरकुन्द, दधिमुख, गवाक्ष और गवय रहे। उत्तर दिशा के द्वार पर क्रमशः अङ्गद, कूर्म, अङ्ग, महेन्द्र, विहंगम, सुषेण और चन्द्ररश्मि रहे। पश्चिम दिशा के द्वार पर अनुक्रम से नील, दुर्द्धर, मन्मथ, जय, विजय और सम्भव रहे। और दक्षिण दिशा के द्वार पर भामण्डल, विराध, गज, भुवनजित, नल, मैन्द और विभीषण रहे। इस प्रकार राम-लक्ष्मण को घेरकर सुग्रीवादि योगी की तरह जागते रहे। (श्लोक २४१-२४६)

उसी समय कोई आकर सीता को बोला, 'रावण के शक्ति प्रहार से लक्ष्मण की मृत्यु हो गई है और अनुज के स्नेह से दुःखी राम कल सुबह मृत्यु का वरण करेंगे।' वज्र-निर्घोष से इस भयङ्कर संवाद को सुनकर सीता मूच्छित होकर पवन प्रताड़ित लता की भाँति गिर पड़ी। विद्याधरियों ने उनके मुख पर जल के छींटे डालकर उसकी चेतना लौटाई। तब वह करुण क्रन्दन करती हुई विलाप करने लगी—'हां वत्स लक्ष्मण, तुम अपने अग्रज को अकेला छोड़कर कहां चले गए? क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारे बिना उनके लिए एक मुहूर्त भी जीवित रहना मुश्किल है? मुझ जैसी अभागिन को धिक्कार है! हाय, मेरे कारण ही देवतुल्य राम और लक्ष्मण इस स्थिति को प्राप्त हुए। हे धरणी! तुम मुझ पर कृपा कर अपने गर्भ में स्थान दो। तुम दो भागों में विभक्त हो जाओ ताकि मैं तुम्हारे मध्य प्रविष्ट हो जाऊं। हे हृदय! तुम क्यों नहीं अब भी फटकर मेरे प्राणों को निकलने के लिए मार्ग दे रहे हो?'

(श्लोक २४७-२५२)

सीता का ऐसा करुण-क्रन्दन सुनकर एक विद्याधरी के मन में दया उत्पन्न हो गई। वह अवलोकिनी विद्या से भवितव्यता देख कर सीता से बोली, 'हे देवी! कल सुबह ही तुम्हारे देवर लक्ष्मण अक्षताङ्ग होकर ठीक हो जाएँगे। तदुपरान्त वे और राम यहाँ आकर तुम्हें आनन्दित करेंगे।' विद्याधरी का यह कथन सुनकर सीता कुछ आश्वस्त हुई। वह चक्रवाकी की भाँति निर्निमेष नेत्रों से सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगी। (श्लोक २५३-२५५)

आज मैंने लक्ष्मण को मार डाला यह सोचकर कुछ समय के लिए रावण के मन में सन्तोष हुआ; किन्तु थोड़ी देर के बाद ही

उसका वह सन्तोष दुःख में बदल गया। वह अपने भ्राता, पुत्र और मित्रों के बन्धन को स्मरण कर रोने लगा—'हे वत्स कुम्भकर्ण, तुम मेरी दूसरी आत्मा थे। हे पुत्र इन्द्रजीत, हे मेघवाहन ! तुम दोनों मेरी दोनों भुजाओं के तुल्य थे। हे जम्बूमाली आदि वीरो ! हे मित्रो, तुम लोग मुझ से अभिन्न थे। तुम लोग तो गजेन्द्र की तरह बन्धन में आने वाले नहीं थे। फिर तुम कैसे बन्धन में पड़ गए ?' इस प्रकार उन्हें स्मरण कर रोते-रोते रावण बार-बार गिरा जा रहा था, मूर्च्छित हो रहा था। पुनः संज्ञा लौटने पर विलाप करने लगता था और पुनः मूर्च्छित हो जाता था। (श्लोक २५६-२५९)

जी महाराज

राम की सेना के चारों ओर निर्मित प्राकार के दक्षिण द्वार के रक्षक भामण्डल के निकट एक विद्याधर आया और बोला, 'यदि तुम राम का हित चाहते हो तो मुझे इसी क्षण राम के पास ले चलो। मैं लक्ष्मण को बचाने का उपाय बतलाऊँगा क्योंकि मैं तुम्हारा हितैषी हूं।' (श्लोक २६०-२६१)

यह सुनकर भामण्डल हाथ पकड़कर उसे राम के पास ले गया। वह राम को प्रणाम कर बोला—'हे स्वामी ! मैं संगीतपुर के राजा शशिमण्डल का पुत्र हूं। मेरा नाम प्रतिचन्द्र है। सुप्रभा नामक रानी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है। एक बार मैं विमान में बैठकर क्रीड़ा करने के लिए स्व-पत्नी के साथ आकाश-पथ से जा रहा था। सहस्रविजय नामक विद्याधर ने मुझे देखा और मेरे विवाह सम्बन्धी वैर के कारण बहुत देर तक मुझसे युद्ध किया। अन्ततः चण्डरवा शक्ति के प्रहार से मुझे नीचे गिरा दिया। मैं अयोध्या के महेन्द्रोदय नामक उद्यान में जा पड़ा। मुझे नीचे गिरा हुआ देखकर आपके अनुज भरत ने सुगन्धित जल लाकर मेरे क्षत स्थानों पर लगाया। चोर जैसे अन्य के घर से भाग जाता है उसी प्रकार वह शक्ति मेरी देह से निकलकर भाग गई और मेरा घाव भर गया। मैंने आश्चर्य के साथ आपके अनुज से उस जल के माहात्म्य की बात पूछी वे बोले— (श्लोक २६२-२६८)

'एक बार विन्ध्य नामक सार्थवाह गजपुर से यहां आए थे। उनके साथ एक भैंसा था। उस पर अत्यधिक भार लादा हुआ था। उस भार को सहन न कर सकने के कारण वह रास्ते में ही गिर गया। उसमें उठने की भी शक्ति नहीं थी। अतः विन्ध्य उसे यहीं

छोड़कर अपने गन्तव्य स्थल को चला गया। नगर के लोग उसके मस्तक पर पैर रखकर उसे कुचलते हुए जाने लगे। इस प्रकार उपद्रव पीड़ित होने से उसकी मृत्यु हो गई। अकाम निर्जरा के योग से मृत्यु के पश्चात् उसने श्वेतङ्कर नगर के राजा पवनपुत्रक नामक वायुकुमार देव के रूप में जन्म ग्रहण किया। अवधिज्ञान से अपनी कष्टकर मृत्यु को जानकर वह कुपित हो उठा और अयोध्या के निकटवर्ती स्थानों में नाना प्रकार की व्याधि उत्पन्न करने लगा। लोग उस व्याधि से आक्रान्त होकर आकुल-व्याकुल हो गए। द्रोणमेघ नामक मेरे एक मामा हैं। वे हमारे राज्य में ही निवास करते हैं; किन्तु उनके अधिकार में जो भी स्थान थे वहाँ और उनके घर में किसी भी प्रकार की व्याधि का प्रकोप नहीं था। मैंने जब उनसे इसका कारण पूछा तो वे बोले— (श्लोक २६९-२७३)

'मेरी प्रियंकरा नामक रानी पहले अत्यन्त रुग्ण रहा करती थी। कुछ समय बाद उसने गर्भ धारण किया। गर्भ के प्रभाव से वह रोग-मुक्त हो गई। यथासमय उसने एक कन्या को जन्म दिया। उसका नाम विशल्या रखा गया। समस्त देशों की भाँति हमारे प्रान्त में भी रोग उत्पन्न हो गया। मैंने तब कुछ सोचकर विशल्या का स्नान-जल सब पर छिड़क दिया। उससे वे सब रोग-मुक्त हो गए। सत्यभूति नामक मुनि से मैंने इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा यह उसकी पूर्व जन्म की तपस्या का फल है। उसके स्नान-जल से घाव सूख जाता है। अस्त्र-प्रहार और बिंधी हुई शक्ति बाहर निकल जाती है। व्याधि निरामय हो जाती है। राम के अनुज लक्ष्मण इसके पति होंगे।' (श्लोक २७४-२७८)

'मुनि के कथन से, सम्यक् ज्ञान से और अनुभव से मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह बात सत्य है। ऐसा कहकर मेरे मामा ने मुझे विशल्या का स्नान-जल दिया। मैंने समस्त देश में वह छिड़क दिया। उससे सभी रोग-मुक्त हो गए। वही जल मैंने तुम्हारे ऊपर छिड़का है। फलत: तुम्हारी देह से शक्ति निकल गई और तुम नीरोग हो गए हो।' (श्लोक २७९-२८१)

'इस प्रकार मुझे और भरत को जल के प्रभाव पर विश्वास हो गया है। अत: आप प्रभात होने से पूर्व ही विशल्या का स्नान-जल लाया जा सके ऐसी व्यवस्था करिए। सवेरा होने पर आप कुछ

नहीं कर सकेंगे। कारण, गाड़ी ही यदि नष्ट हो जाए तो गणेश क्या करेगा ?' (श्लोक २८२-२८३)

यह सुनकर राम ने विशल्या का स्नान-जल लाने के लिए सुग्रीव, भामण्डल, हनुमान और अङ्गद को तत्काल भरत के निकट भेजा। वे विमान में बैठकर वायुवेग से अयोध्या जा पहुंचे। भरत प्रासाद की छत पर सोये हुए थे। उन्हें जगाने के लिए वे आकाश में स्थित होकर गीत गाने लगे। राज-कार्य के लिए राजा को किसी भी प्रकार जगाना उचित है। गीत के शब्दों को सुनकर भरत जाग गए। भामण्डल आदि ने जाकर उन्हें नमस्कार किया। भरत ने उनसे अकस्मात् रात्रि में आने का कारण पूछा। उन्होंने भी जो सत्य था वह सब कह सुनाया। आप्त-पुरुषों के सम्मुख कुछ भी छिपाना उचित नहीं होता। भरत कुछ देर तक तो चिन्ता करते रहे। तदुपरान्त उनके साथ विमान में बैठकर कौतुक-मङ्गल नगर गए। (श्लोक २८४-२८८)

भरत ने द्रोणमेघ के पास जाकर विशल्या के लिए याचना की। द्रोणमेघ ने अन्य एक हजार कन्याओं को विशल्या के साथ लक्ष्मण से विवाह करने के लिए प्रदान किया। सुग्रीवादि भरत को पुनः अयोध्या पहुंचा कर तत्काल विशल्या सहित लङ्का लौट आए। (श्लोक २८९-२९०)

वे प्रज्वलित दीप युक्त विमान में बैठकर गए थे इसलिए उसके आलोक ने वानर-सैन्य में 'सूर्य उदय हो गया' का भय पैदा कर दिया; किन्तु उनके पहुंचते ही वह क्षोभ आनन्द में परिवर्तित हो गया। (श्लोक २९१)

भामण्डल ने तुरन्त विशल्या को लक्ष्मण के समीप उतारा। विशल्या ने लक्ष्मण का शरीर स्पर्श किया। स्पर्श मात्र से ही लक्ष्मण की देह से शक्ति उसी प्रकार निकल गई जिस प्रकार लकड़ी से सर्पिणी निकल जाती है। शक्ति जब निकल कर आकाश-पथ से जा रही थी तब हनुमान ने बाज जैसे पक्षी को पकड़ लेता है उसी प्रकार लपक कर उसे पकड़ लिया। शक्ति बोली—'मैं तो देव रूप हूं। इसमें मेरा जरा भी दोष नहीं है। मैं प्रज्ञप्ति विद्या की बहिन हूं। धरणेन्द्र ने मुझे रावण को दिया था। विशल्या के पूर्वभव के तपः-तेज को सहन न कर सकने के कारण मैं जा रही

हूं। मैं तो दास की भाँति निरपराध हूं। मुझे छोड़ दें।'

(श्लोक २९२-२९५)

शक्ति की बात सुनकर वीर हनुमान ने उसे छोड़ दिया। छोड़ते ही मानो शक्ति लज्जित हो गई हो इस प्रकार तत्क्षण अन्तर्धान हो गई। विशल्या ने पुनः लक्ष्मण की देह पर हाथ फेरा और धीरे-धीरे गोशीर्ष चन्दन का लेप लगा दिया। क्षत भर गया। लक्ष्मण नींद से जागे व्यक्ति की तरह उठ बैठे। राम ने आनन्द के अश्रु प्रवाहित करते हुए अनुज को आलिङ्गन में ले लिया।

(श्लोक २९६-२९८)

राम ने लक्ष्मण को विशल्या का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और स्वयं पर एवं अन्यान्य आहत सैनिकों पर विशल्या का स्नान जल छिड़कवाया। (श्लोक २९९)

तदुपरान्त राम की आज्ञा से एक हजार कन्याओं के साथ विशल्या का विधिपूर्वक लक्ष्मण से विवाह कर दिया गया। विद्याधरों ने लक्ष्मण के इस आश्चर्यजनक नवजीवन प्राप्ति के लिए महामहोत्सव किया। (श्लोक ३००-३०१)

लक्ष्मण की जीवन प्राप्ति का संवाद पाकर रावण ने अपने उत्तम मन्त्रियों को बुलवाया और कहा 'मैंने सोचा था शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण के साथ-साथ स्नेह के कारण राम भी मृत्यु को प्राप्त होगा। दोनों की मृत्यु से वानर भागकर स्व-स्व स्थान को चले जाएँगे और अनुज कुम्भकर्ण, पुत्र इन्द्रजीत आदि मुक्त होकर मेरे पास लौट आएँगे; किन्तु देव की विचित्रता से लक्ष्मण बच गया। अतः बताओ, कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत आदि को मुक्त कैसे कराएँ?' (श्लोक ३०२-३०५)

मन्त्रीगण बोले, 'सीता को मुक्त किए बिना कुम्भकर्ण आदि को मुक्त करवाना कठिन है। इसके अतिरिक्त कोई भयानक विपत्ति भी आ सकती है। हे स्वामिन्, जो वीर चले गए हैं उन्हें तो लाया नहीं जा सकता; किन्तु जो हमारे कुल में बचे हुए हैं उन्हें मृत्यु से बचा लीजिए। उनकी रक्षा के लिए राम से प्रार्थना करने के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं है।' (श्लोक ३०६-३०७)

मन्त्रियों का यह कथन रावण को अच्छा नहीं लगा। अतः उसने उनकी अवज्ञा कर सामन्त नामक दूत को यह कहकर राम के

पास भेजा कि तुम साम, दाम और दण्ड नीति का आश्रय लेकर राम को समझाओ। दूत राम की छावनी में गया। द्वारपाल ने राम को इसके आने की सूचना दी। राम ने उसे बुलवाया। सुग्रीवादि वीरों के मध्य उपविष्ट राम को उसने आकर नमस्कार किया और गम्भीर भाव से बोला, 'महाराज रावण ने कहलवाया है कि मेरे बन्धुवर्ग को मुक्त कर दो और सीता मुझे अर्पण कर दो। इसके बदले मेरा आधा राज्य ग्रहण करो! मैं तुम्हें तीन हजार कन्याएँ उपहार स्वरूप दूँगा। यदि तुम इससे सहमत नहीं होते हो तो तुम्हारा जीवन और तुम्हारी सेना कुछ भी नहीं बचेगी।'

(श्लोक ३०८-३११)

राम ने प्रत्युत्तर में कहा, 'दूत, मुझे राज्य सम्पत्ति की इच्छा नहीं है, न मुझे अन्य स्त्रियों की भोग की लालसा है। यदि रावण अपने बन्धुबान्धवों को मुक्त करवाना चाहता है तो उसके लिए उचित है कि सीता की पूजा कर उसे मेरे पास भेज दे। अन्यथा कुम्भकर्ण आदि को मुक्त नहीं किया जाएगा।' (श्लोक ३१२-३१३)

सामन्त बोला, 'हे राम, ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। मात्र एक स्त्री के लिए तुम क्यों अपना जीवन संशय में डाल रहे हो। रावण के प्रहार से लक्ष्मण एक बार बच गया है; किन्तु अब वह आशा मत करो। रावण अकेला ही समस्त विश्व को जय कर सकता है, अतः उसकी बात स्वीकार कर लो अन्यथा उसका परिणाम होगा तुम्हारा, लक्ष्मण का व इस वानर सेना का जीवन नाश।' (श्लोक ३१४-३१६)

यह सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे। वे बोले, 'हे अधम दूत, अब भी क्या रावण अपनी और अन्य की शक्ति का परिमाप नहीं कर सका? उसका समस्त परिवार या तो मारा गया है या बन्दी बना लिया गया है। स्त्रियां ही अवशेष हैं। फिर भी वह अपने मुख से अपनी बड़ाई करता है। यह इसकी कैसी धृष्टता है? वृक्ष की समस्त शाखा-प्रशाखाओं के कट जाने पर स्कन्ध रूप वृक्ष जिस प्रकार खड़ा रहता है उसी प्रकार रावण भी परिवार रूपी शाखा-प्रशाखाओं से हीन होकर अकेला रह गया है।'

(श्लोक ३१७-३२०)

इसके प्रत्युत्तर में सामन्त कुछ कहने ही जा रहा था कि

वानर वीरों ने धक्का देकर उसे वहां से निकाल दिया। सामन्त ने राम-लक्ष्मण ने जो कुछ कहा था वह जाकर रावण से निवेदन कर दिया। यह सुनकर रावण मन्त्रियों से बोला, 'अब क्या करना उचित है।' (श्लोक ३२१-३२२)

मन्त्रियों ने पूर्व के अनुसार ही परामर्श दिया – 'अब सीता को लौटा देना ही उचित है। राम के प्रतिकूल जाकर जो परिणाम हुआ वह तो आपने देख ही लिया अब उनके प्रतिकूल जाकर उसका परिणाम भी देख लीजिए। व्यतिरेक प्रतिकूल और अन्वय अनुकूल द्वारा ही समस्त कार्यों की परीक्षा होती है। इसलिए हे राजन्, आप केवल व्यतिरेक के पीछे ही क्यों पड़े रहते हैं? अभी भी आपके अनेक बन्धु-बान्धव पुत्र बचे हुए हैं। अतः सीता राम को लौटाकर उनकी रक्षा करें और उनके साथ राज्य सम्पदा भोग करें। (श्लोक ३२३-३२५)

सीता लौटाने के परामर्श पर रावण मर्माहत हो गया। वह बहुत देर तक बैठा विचार करता रहा। बाद में बहुरूपिणी विद्या की साधना को निश्चय कर मन्त्रियों को विदा दी। रावण वहां से उठकर शान्तिनाथ भगवान के चैत्य में गया। भक्ति-भाव से रावण का मुख प्रफुल्ल हो उठा। उसने इन्द्र की तरह जल कलश से शान्तिनाथ भगवान की मूर्ति को स्नान करवाया, गोशीर्ष चन्दन का विलेपन किया और दिव्य पुष्पों से उनकी पूजा कर शान्तिनाथ प्रभु की स्तुति करने लगा— (श्लोक ३२६-३२९)

'जगत् के त्राता देवादिदेव परमात्मा स्वरूप षोडश तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ प्रभु को मैं नमस्कार करता हूं।

'संसार सागर के त्राणकर्त्ता हे शान्ति नाथ, सर्वार्थसिद्धि के लिए मन्त्र रूप आपके नाम को भी मैं नमस्कार करता हूं।

'हे प्रभो, जो आपकी अष्ट प्रकारी पूजा करते हैं वे अणिमादि अष्टसिद्धियों को प्राप्त करते हैं।

वे नेत्र धन्य हैं जो प्रतिदिन आपका दर्शन करते हैं। नेत्र से भी वे हृदय धन्य हैं जो हृदय में आपको धारण किए रहते हैं।

'हे देव, आपके चरण-स्पर्श मात्र से ही प्राणी निर्मल हो जाते हैं। स्पर्शबोधि रस के स्पर्श से क्या लौह स्वर्ण नहीं हो जाता?

'हे प्रभो, आपके चरण-कमलों में नमस्कार करने से और आपके समक्ष नित्य भूलुण्ठित होने से मेरे ललाट में आपके चरण-नखों की किरण पंक्ति शृङ्गार तिलक रूप हो।

'हे प्रभो, आपको निवेदित पुष्प गन्धादि पदार्थ मेरे राज्य सम्पत्ति रूप लता के फल को मानो प्राप्त हो गए।

'हे जगत्पति, आपसे मेरी बारम्बार यही प्रार्थना है भव-भव में मैं आपकी अत्यन्त भक्ति—पराभक्ति को प्राप्त करूँ'।

(श्लोक ३३०-३३७)

भगवान् की इस प्रकार स्तुति कर हाथ में अक्षमाला लिए रत्नशिला पर बैठकर रावण ने विद्या-साधना प्रारम्भ कर दी। मन्दोदरी ने यमदण्ड नामक द्वारपाल को बुलाकर कहा, लंकापुरी में घोषणा कर दो कि लंकापुरी में आठ दिनों तक सब जैन-धर्म का पालन करें। जो नहीं करेगा उसे प्राण-दण्ड दिया जाएगा।'

(श्लोक ३३८-३४०)

आदेशानुसार द्वारपाल ने यही घोषणा करवा दी। गुप्तचरों ने जाकर यही सूचना सुग्रीव को दी। सुग्रीव ने जाकर राम से निवेदन किया, 'हे प्रभु! रावण के बहुरूपिणी विद्या के सिद्ध हो जाने पर उसे पराजित करना असाध्य हो जाएगा।'

(श्लोक ३४१-३४२)

राम हँसकर बोले, 'शान्त होकर ध्यान करते हुए रावण पर मैं अस्त्राघात कैसे करूँ? मैं उसके जैसा कपटी नहीं हूं।'

(श्लोक ३४३)

राम की बात सुनकर अङ्गदादि वीर लंकापति रावण की साधना नष्ट करने के लिए शान्तिनाथ जिनालय में गए। वे उद्धततापूर्वक रावण को नानाविध कष्ट देने लगे; किन्तु रावण जरा भी विचलित नहीं हुआ। अङ्गद ने मन्दोदरी के केश पकड़कर रावण से कहा, 'रावण, शरणहीन और भयभीत होकर तुम यह कैसा नाटक कर रहे हो? तुमने हमारे प्रभु की अनुपस्थिति में सती सीता का हरण कर लिया था; किन्तु हम तुम्हारे सामने तुम्हारी पत्नी का हरण कर लिए जा रहे हैं। फिर भी रावण कुछ नहीं बोला। तब अङ्गद क्रोध से प्रज्वलित होकर मन्दोदरी को खींचकर ले जाने लगा। वह अनाथा मन्दोदरी कुररी पक्षी की

तरह तब करुण क्रन्दन करने लगी। तब भी ध्यानस्थित रावण ध्यान से विचलित नहीं हुआ। (श्लोक ३४४-३४८)

उसी समय आकाश-मण्डल को प्रकाशित करती हुई बहुरूपिणी विद्या प्रकट हुई। बोली, 'रावण तुमने मुझे सिद्ध कर लिया है। बोलो, मैं तुम्हारा क्या काम कर सकती हूं? मैं समस्त संसार को तुम्हारे वश में कर सकती हूं। राम और लक्ष्मण हैं ही क्या?'

(श्लोक ३४९-३५०)

रावण बोला, 'हे विद्या! सचमुच तुम्हारे लिए सब कुछ साध्य है; किन्तु इस समय मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। अभी तुम जाओ। जब तुम्हें बुलाऊं तब आना।' रावण का यह कथन सुन कर विद्या अन्तर्धान हो गई। समस्त वानर भी उड़कर अपने-अपने स्थान पर आ गए। (श्लोक ३५१-३५२)

रावण ने मन्दोदरी की दुर्दशा की बात सुनी। वह क्रुद्ध होकर दन्तघर्षण करने लगा। तदुपरान्त स्नानाहार कर देवरमण उद्यान में सीता के पास गया और बोला, 'हे सुन्दरी! मैंने बहुत दिनों तक तुमसे अनुनय-विनय किया है; किन्तु तुम उपेक्षा करती रही। किन्तु, अब मैं नियम भंग के भय का भी परित्याग कर राम और लक्ष्मण को मारकर बलपूर्वक तुम्हारे साथ क्रीड़ा करूंगा।'

(श्लोक ३५३-३५५)

रावण के विषमय वचनों को सुनकर रावण की आशा के साथ-साथ सीता मूच्छित होकर गिर पड़ी। कुछ क्षणों पश्चात् ही चेतना लौटने पर उसने नियम लिया—जिस समय राम और लक्ष्मण की मृत्यु का संवाद सुनूंगी उसी समय से अनशन ग्रहण कर लूंगी।

(श्लोक ३५६-३५७)

सीता की प्रतिज्ञा की बात सुनकर रावण चमक उठा। सोचने लगा—राम के साथ इसका प्रेम स्वाभाविक है। अतः इससे अनुराग करने की इच्छा शुष्कभूमि पर कमल विकसित करने जैसी व्यर्थ है। विभीषण के कथन की उपेक्षा कर मैंने ठीक नहीं किया। हाय! मैंने स्व-कुल को कलङ्कित किया है और न्याय-सम्मत परामर्श देने वाले मन्त्रियों का भी अपमान किया है; किन्तु अब मैं क्या करूं? अब यदि सीता को छोड़ देता हूं तो अपयश होगा। लोग कहेंगे कि राम के भय से रावण ने सीता को छोड़ दिया।

ठीक तो यही रहेगा कि राम और लक्ष्मण को बन्दी बनाकर यहाँ ले आऊँ फिर उन्हें सीता देकर छोड़ दूँ। उससे संसार में मेरा यश होगा और मेरी गणना धर्मात्मा में होगी। ऐसा सोचते हुए रावण अपने प्रासाद में चला गया। विभिन्न प्रकार की चिन्ता में उसने वह रात्रि व्यतीत की। (श्लोक ३५८-३६१)

भोर होते ही रावण ने युद्ध के लिए प्रयाण किया। जाने के समय अनेक अपशकुन हुए; किन्तु उसने किसी की भी परवाह नहीं की। राम और रावण की सेना में पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। योद्धाओं की हुंकार व उनके ताल ठोकने की आवाज से दिग्गज भी काँप उठे। (श्लोक ३६२-३६३)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जिस प्रकार रूई को हवा उड़ा देती है उसी प्रकार राक्षस वीरों को पथ से हटाकर लक्ष्मण रावण पर बाण-वर्षा करने लगे। लक्ष्मण का पराक्रम देखकर रावण को स्व-विजय लाभ की चिन्ता होने लगी। अतः उसने जीत के लिए भयङ्कर बहुरूपिणी विद्या को स्मरण किया। स्मरण मात्र से विद्या आकर उपस्थित हो गई। उसके द्वारा रावण ने अत्यन्त भयङ्कर रूप धारण किया। लक्ष्मण धरती पर, आकाश में, दोनों पार्श्व में, पीछे-सामने शस्त्र बरसाते हुए अनेक रावण को देखने लगे। लक्ष्मण तो मात्र एक ही थे। फिर भी गरुड़ पर बैठकर शीघ्रतापूर्वक बाण बरसाते हुए उन्हें देखकर भी लगने लगा कि जितने रावण हैं, उतने ही लक्ष्मण हैं। वे अनेक रावण का संहार करने लगे। वासुदेव लक्ष्मण के बाणों से रावण व्याकुल हो उठा। उसने अर्द्धचक्री के चिह्न स्वरूप जाज्वल्यमान चक्र का स्मरण किया। चक्र प्रकट होते ही क्रोधारक्त नेत्रों वाले रावण ने अपने चक्ररूपी अन्तिम अस्त्र को आकाश में घुमाकर लक्ष्मण पर निक्षेप किया। वह चक्र लक्ष्मण की प्रदक्षिणा करके उदयगिरि शिखर पर जैसे सूर्य उठ जाता है उसी प्रकार उनके दाहिने हाथ में आ गया। श्लोक ३६४-३७१)

यह देखकर रावण दुःखी मन से विचारने लगा—मुनि की बात सत्य हुई। विभीषण आदि का निर्णय भी ठीक था। रावण को दुःखी देखकर विभीषण बोला—'हे अग्रज ! यदि बचना चाहते हो तो अब भी सीता का परित्याग कर दो।' यह सुनकर क्रुद्ध हुए रावण ने प्रत्युत्तर दिया, 'मुझे उस चक्र की क्या आवश्यकता है?

मैं तो एक मुष्ठि-प्रहार से ही चक्र और शत्रुओं को चूर-चूर कर दूँगा।' (श्लोक ३७२-३७४)

ऐसे गर्वित वचन बोलने वाले रावण पर लक्ष्मण ने चक्र-प्रहार किया। चक्र ने कूष्माण्ड पिष्टक की तरह रावण के वक्ष को विदीर्ण कर डाला। उस दिन ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी थी। हृदय विदीर्ण होने पर मृत्यु को प्राप्त कर रावण चतुर्थ नरक में गया। देव जयध्वनि करते हुए लक्ष्मण पर पुष्प वृष्टि करने लगे। वानर-सेना हर्षोन्मत्त होकर नाचने लगी। उनकी किलकारियों से पृथ्वी और आकाश भर उठा। (श्लोक ३७५-३७७)

सप्तम सर्ग समाप्त

अष्टम सर्ग

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

रावण की मृत्यु हुई। समस्त राक्षस व्याकुल होकर सोचने लगे कि अब भागकर कहाँ जाएँ? विभीषण स्नेहवश स्व-जाति भ्राताओं के निकट गए और उनके भयभीत हृदयों को यह कहकर शान्त किया—'हे राक्षस वीरो! ये राम और लक्ष्मण (पद्म और नारायण) अष्टम बलदेव और वासुदेव हैं। ये शरण में आए हुए के लिए शरणदाता भी हैं। अतः निःशङ्क होकर इनकी शरण ग्रहण करो।' (श्लोक १-२)

विभीषण के वचन सुनकर समस्त राक्षस वीर राम की शरण में आए। राम और लक्ष्मण ने उन्हें उदार आश्रय दिया। वीर पुरुष प्रजा पर समान दृष्टि रखते हैं। विभीषण को स्व अग्रज रावण की मृत्यु पर अत्यन्त शोक हुआ। 'हे भाई, हे अग्रज' कहते हुए वे करुण-क्रन्दन करने लगे। अग्रज के वियोग दुःख से तो मृत्यु श्रेष्ठ है। ऐसा सोचकर मरने की इच्छा से विभीषण कमर से कटार निकाल कर उदर-विद्ध करने को उद्यत हो गए। राम उसी क्षण उनका हाथ पकड़ कर समझाने लगे—'हे विभीषण! रणस्थल में वीरोचित वीरगति प्राप्त स्व-अग्रज रावण के लिए व्यर्थ शोक मत करो। जिस वीर से युद्ध करने में देव भी शङ्का करते थे वही वीर आज वीरत्व दिखाकर अपनी कीर्ति को स्थापित कर वीरगति को प्राप्त हुआ है। ऐसे बन्धु के लिए शोक कैसा? अतः

अब क्रन्दन बन्द करो और रावण का दाह-संस्कार करो।'

(श्लोक ३-८)

तदुपरान्त महात्मा राम ने बन्दी कुम्भकर्ण, मेघवाहन आदि को मुक्त कर दिया। (श्लोक ९)

कुम्भकर्ण, विभीषण, इन्द्रजीत, मेघवाहन, मन्दोदरी आदि आत्मीय परिजनों ने रोते-रोते रावण के लिए गोशीर्ष चन्दन की चिता निर्मित की और कर्पूर, अगरु मिश्रित प्रज्वलित अग्नि द्वारा रावण का अग्नि-संस्कार किया। (श्लोक १०-११)

राम एवं अन्य लोगों ने पद्म सरोवर पर जाकर स्नान किया और रावण को जलाञ्जलि दी। श्लोक १२)

तब राम और लक्ष्मण ऐसे मधुर स्वर में मानो अमृत की वर्षा हो रही हो, कुम्भकर्णादि वीरों से बोले, 'हे वीरगण ! पूर्व की भाँति ही आप लोग राज्य करें। आपकी सम्पत्ति का हमें कोई लोभ नहीं है। हम तो आपका कल्याण चाहते हैं।' (श्लोक १३-१४)

राम और लक्ष्मण के ऐसे वचन सुनकर शोक और विस्मय से गद्‌गद् से कुम्भकर्णादि बोले—'हे महाबाहु, हे वीर, इस विशाल पार्थिव राज्य से अब हमें कोई सरोकार नहीं है। अब हम लोग मोक्षराज्यप्रदानकारी दीक्षा ग्रहण करेंगे। (श्लोक १५-१६)

उसी समय कुसुमायुध उद्यान में चार ज्ञान के धारी अप्रमेय कमल नामक मुनि आए हुए थे। जिस दिन रावण की मृत्यु हुई उसी रात्रि को वहीं उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों ने आकर केवलज्ञान महोत्सव मनाया। सुबह होते ही राम, लक्ष्मण, कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत आदि मुनि को वन्दना करने गए। वन्दना के पश्चात् धर्मोपदेश सुना। देशना सुनकर इन्द्रजीत और मेघवाहन को वैराग्य उत्पन्न हो गया। देशना के अन्त में उन्होंने मुनि से अपना पूर्व भव जानना चाहा। (श्लोक १७-२०)

मुनि बोले, 'इसी भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नामक एक नगर है। वहाँ तुम दोनों भाइयों ने भाई रूप में एक गरीब के घर जन्म लिया। तुम्हारे नाम प्रथम और पश्चिम था। एक समय तुम दोनों ने भवदत्त मुनि से दीक्षा ग्रहण की और शान्तकषायी बनकर इधर-उधर विचरण करने लगे। कुछ समय पश्चात् तुम लोग पुनः कौशाम्बी आए और वहाँ वसन्तोत्सव में राजा नन्दीघोष को

स्वपत्नी के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा। उन्हें देखकर पश्चिम मुनि ने यह निदान किया यदि मेरी तपस्या का कोई फल है तो ऐसे ही क्रीड़ा करने वाले राजा के घर मेरा जन्म हो। अन्य साधुओं ने उसे बहुत समझाया; उसने निदान की आलोचना नहीं की। तदुपरान्त यथा समय मृत्यु प्राप्त वह इन्दुमती के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम हुआ रतिवर्द्धन। अनुक्रम से यौवन प्राप्त होने पर रतिवर्द्धन राजा के सिंहासन पर बैठा और अनेक रानियों से परिवेष्टित होकर पिता की भाँति ही क्रीड़ा करने लगा।
(श्लोक २२-२६)

'प्रथम नामक मुनि निदान रहित नानाविध तप करने के फलस्वरूप पंचम देवलोक में परम महर्द्धिक देव रूप में उत्पन्न हुए। अवधि ज्ञान से अपने भाई पश्चिम को कौशाम्बी नगरी में राज्य और क्रीड़ा करते हुए देखा। उसे उपदेश देने के लिए वे मुनि रूप धारण कर उसके पास गए। रतिवर्द्धन ने उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। भातृ स्नेहवश उन्होंने उसे अपना और उसका पूर्व भव सुनाया। सुनकर रतिवर्द्धन को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। अत: उसने संसार से विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर ली और मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म देव लोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर तुम दोनों ने भाई रूप में महाविदेह क्षेत्र के विबुध नगर के राजा के घर जन्म ग्रहण किया। वहाँ भी दीक्षा लेकर तपस्या करते हुए मृत्यु के पश्चात् अच्युत देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होकर प्रतिवासुदेव रावण के दोनों पुत्र इन्द्रजीत और मेघ-वाहन के रूप में जन्मग्रहण किया। रतिवर्द्धन की माँ भव-भ्रमण करती हुई तुम्हारी माँ मन्दोदरी बनी।' यह सुनकर कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, मेघवाहन, मन्दोदरी आदि ने दीक्षा ग्रहण कर ली।
(श्लोक २७-३४)

फिर राम ने मुनि को नमस्कार किया और धूमधाम के साथ लक्ष्मण और सुग्रीव सहित लङ्का में प्रवेश किया। विभीषण छड़ीदार की भाँति आगे चलते हुए उन्हें राह दिखा रहा था। विद्याधरों की स्त्रियाँ उनकी मङ्गल वन्दना कर रही थी। अनुक्रम से वे पुष्पगिरि के शिखर स्थित उद्यान में जा पहुंचे। वहाँ राम ने सीता को उसी अवस्था में देखा जिसका वर्णन हनुमान ने किया

था । मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसाग(श्लोक ३५-३७)

उस समय राम के मन में हुआ कि उनकी आत्मा अभी जीवित है । राम ने सीता को द्वितीय जीवन की तरह अपनी गोद में बैठाया । देव और गन्धर्व हर्षित होकर आकाश में हर्षनाद करने लगे–'महासती सीता की जय हो ।' हर्ष के अश्रुओं से चरण धोते हुए लक्ष्मण ने सीता के चरणों में प्रणाम किया । सीता ने लक्ष्मण के मस्तक को सूँघा आशीर्वाद दिया, 'चिरंजीवी होओ, चिरानन्दी होओ, सदैव विजयी होओ ।' तदुपरान्त भामण्डल ने सीता को नमस्कार किया । उसे भी उन्होंने मुनि वचनों की भाँति अनिष्फल आशीर्वाद देकर सन्तुष्ट किया । तदुपरान्त सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद आदि ने भी अपने-अपने नाम बताकर क्रमशः सीता को नमस्कार किया । दीर्घ दिनों के पश्चात् चन्द्रप्रकाश से विकसित कमलिनी की तरह सीता राम के सान्निध्य में सुशोभित हुई ।

(श्लोक ३८-४४)

राम सीता सहित भुवनालङ्कार हाथी पर बैठकर रावण के महल में गए । सुग्रीवादि वानर वीर और विभीषणादि राक्षस वीर भी उनके साथ गए । राम हजार मणिस्तम्भयुक्त शांतिनाथ जिनालय में वन्दना की इच्छा से प्रविष्ट हुए । विभीषण ने पुष्पादि सामग्री दी । उसी से राम, सीता और लक्ष्मण ने उनकी पूजा की ।

(श्लोक ४५-४७)

विभीषण की प्रार्थना पर राम, सीता और लक्ष्मण सुग्रीवादि वानर वीरों सहित विभीषण के घर गए । विभीषण को सम्मान देने के लिए उन्होंने वहाँ परिवार सहित स्नान देवार्चन और भोजन किया । (श्लोक ४८-४९)

तदुपरान्त विभीषण ने राम को सिंहासन पर बैठाया और दो वस्त्र धारण कर हाथ जोड़कर बोले, 'हे स्वामिन्, यह रत्न सुवर्णादि का भण्डार, यह चतुरङ्गिणी सेना और इस राक्षस द्वीप को आप ग्रहण करें । मैं आपका सेवक हूं । आपकी आज्ञा से मैं आपका राज्याभिषेक करना चाहता हूं । अतः मुझे आज्ञा देकर लङ्कापुरी को पवित्र और मुझे अनुगृहीत करें ।' (श्लोक ५०-५२)

राम ने उत्तर दिया, 'हे महात्मा, लङ्का का राज्य तो मैंने तुम्हें पहले ही दे दिया था । तुम भक्तिवश वह कैसे भूल गए ?

इस प्रकार विभीषण की बात न मानकर राम ने उसी समय प्रसन्नतापूर्वक विभीषण को सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। तदुपरान्त इन्द्र जैसे सुधर्मा सभा में जाते हैं उसी प्रकार राम, सीता, लक्ष्मण और सुग्रीवादि सहित रावण के प्रासाद में गए।

(श्लोक ५३-५५)

राम और लक्ष्मण ने सिंहोदर आदि की जिन कन्याओं से विवाह करना स्वीकार किया था उन्हें विद्याधरों द्वारा लङ्का में बुलवाया और अपनी अपनी प्रतिश्रुति के अनुसार दोनों ने उन कन्याओं के साथ विवाह किया। खेचरियों ने मङ्गल गीत गाए। सुग्रीव और विभीषणादि सेवित राम-लक्ष्मण छह वर्षों तक सुखोपभोग करते हुए लङ्का में सानन्द रहे। उसी समय विंध्यस्थली में इन्द्रजीत और मेघवाहन ने सिद्धि पद प्राप्त किया। अतः वहाँ मेघरथ नामक तीर्थ स्थापित हुआ। कुम्भकर्ण ने नर्मदा नदी के तट पर मोक्ष प्राप्त किया। वहाँ पृष्ठरक्षित नामक तीर्थ स्थापित हुआ। (श्लोक ५६-६०)

उधर अयोध्या में राम और लक्ष्मण की माताएँ इनका कोई संवाद न पाने से चिन्तित हो रही थी। एक दिन धातकी खण्ड से नारद मुनि वहाँ पहुंचे। रानियों ने भक्तिपूर्वक उनका आदर सत्कार किया। कौशल्या ने कहा, 'मेरा पुत्र राम और लक्ष्मण पुत्रवधू सीता सहित पिता से आदेश लेकर वन गए थे। वहाँ रावण सीता को हरण कर ले गया। एतदर्थ राम-लक्ष्मण लङ्का गए। वहाँ लक्ष्मण युद्ध में शक्ति के आघात से मूच्छित हो गये। शक्ति-शल्य को दूर करने के लिए राम के योद्धागण विशल्या को लङ्का ले गए थे। इसके बाद क्या हुआ हम नहीं जानते। नहीं मालूम लक्ष्मण जीवित हुए या नहीं।' (श्लोक ६१-६५)

ऐसा कहकर कौशल्या 'हा वत्स ! हा वत्स !' कहती हुई क्रन्दन करने लगी। नारद ने उन्हें सान्त्वना देकर कहा, आप दुःखी मत होइए। मैं राम के पास जाकर उन्हें लेकर यहाँ आऊँगा।'

(श्लोक ६६-६७)

इस प्रकार उन्हें सान्त्वना देकर नारद आकाश-पथ से राम के निकट लंका पहुंचे। राम ने सत्कारपूर्वक उन्हें बैठाया और आने का कारण पूछा। नारद ने उन्हें उनकी माँ का दुःख सुनाया।

सुनकर राम-लक्ष्मण भी दुःखी हो गए। वे विभीषण से बोले, 'हम लोग तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर बहुत दिनों तक तुम्हारे अतिथि रहे; किन्तु अब तुम हमें विदा दो ताकि हम पुत्र-वियोग से व्याकुल माताओं के प्राण वियोग के पूर्व ही उनके निकट जाकर उनकी चरण-धूलि मस्तक पर धारण कर उनके हृदय को शान्त करें।' (श्लोक ६८-७१)

तब विभीषण सविनय बोले—'हे स्वामिन्! आप पन्द्रह दिनों तक यहाँ रहें ताकि इस समय के मध्य यहाँ के कारीगरों को भेजकर अयोध्या को रमणीय करवा दें। राम ने यह स्वीकार कर लिया। विभीषण ने अपने विद्याधर कारीगरों को भेजकर अयोध्या को स्वर्गपुरी-सा सुन्दर बनवा दिया। नारद भी राम से विदा लेकर अयोध्या गए और कौशल्या आदि को राम के शीघ्र ही आने का संवाद दिया। तदुपरान्त सोलहवें दिन राम और लक्ष्मण स्व अन्तःपुर सहित पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या लौट गए। विमान में बैठे राम और लक्ष्मण इस भाँति सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र सुशोभित होते हैं। विभीषण, सुग्रीव, भामण्डल आदि राजाओं सहित राम अल्प समय में ही अयोध्या के निकट जा पहुँचे। अपने अग्रज को पुष्पक विमान में बैठकर आते देख भरत, शत्रुघ्न आदि हाथी पर चढ़कर उनका स्वागत करने के लिए सम्मुख गए। भरत के निकट आते ही राम की आज्ञा से पुष्पक विमान धरती पर उसी प्रकार उतर गया जैसे इन्द्र की आज्ञा से पालक विमान उतर जाता है। भरत और शत्रुघ्न भी तब हाथी से उतर कर पैदल चलते हुए राम के पास पहुँचे। अनुजों से मिलने को उत्सुक राम और लक्ष्मण भी विमान से उतर गए। भरत शत्रुघ्न ने राम के चरणों में अष्टांग प्रणाम किया। दोनों के नेत्र प्रेमाश्रु से भर गए। राम ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया और मस्तक चूमकर उनकी देह की धूल झाड़ दी। फिर उन दोनों ने लक्ष्मण के चरणों में प्रणाम किया। लक्ष्मण ने बाहें फैलाकर उनका आलिगन किया। (श्लोक ७२-८२)

तदुपरान्त राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न पुष्पक विमान में बैठे। राम ने पुष्पक विमान को शीघ्रतापूर्वक अयोध्या-प्रवेश की आज्ञा दी। आदेश मिलते ही पुष्पक विमान राम की अनुजों सहित

अयोध्या ले चला। धरती और आकाश में वाद्ययन्त्र बज उठे। मयूर जिस प्रकार मेघ को देखता है उसी प्रकार पुरवासी अनिमेष नेत्रों से राम और लक्ष्मण को देखने लगे और उनकी स्तुति करने लगे। प्रसन्न बदन राम और लक्ष्मण को लोग सूर्य की भांति अर्घ्य देने लगे। वे भी उसे स्वीकार करते हुए क्रमशः प्रासाद के निकट जा पहुंचे। (श्लोक ८३-८६)

सुहृदजनों के हृदय को आनन्दकारी राम-लक्ष्मण सहित पुष्पक विमान से उतर कर माताओं के महल में गए। माताओं ने उन्हें आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त सीता, विशल्या आदि ने भी सासुओं के चरण स्पर्श किए। उन्होंने भी आशीर्वाद दिया कि तुम भी हम लोगों की तरह वीरपुत्रों की जन्मदात्री बनो।

(श्लोक ८७-९०)

कौशल्या बार-बार लक्ष्मण का मस्तक सहलाकर कहने लगी, 'हे तात ! मैंने सौभाग्य से ही आज तुम्हें देखा है। मैं तो यही समझ रही हूं कि तुमने नवीन जन्म प्राप्त किया है। कारण, विदेश में तुम मृत्यु के मुख में जाकर पुनः विजय प्राप्त कर यहां लौटे हो। राम और सीता तुम्हारी सेवा के लिए ही वन में उस प्रकार का कष्ट सहन कर सके थे।' (श्लोक ९१-९३)

लक्ष्मण सविनय बोले, 'मां, वन में अग्रज राम पिता की भांति और सीता आपकी ही तरह मेरा लालन-पालन करते थे। अतः मैंने तो वन में सुखपूर्वक ही दिन व्यतीत किए; किन्तु मुझसे स्वेच्छाचारी और दुर्ललित दुष्टाचार के लिए राम की अन्य से शत्रुता हुई और देवी सीता का हरण हुआ। इस विषय में मैं अधिक क्या कहूं ? राम और सीता पर जो विपत्ति आई उसका कारण मैं ही हूं। किन्तु मां, आपके आशीर्वाद से भद्र राम अब शत्रुरूपी समुद्र का उल्लंघन कर परिवार सहित यहां सकुशल पहुंच गए हैं।' (श्लोक ९४-९६)

एक सेवक की तरह राम के निकट रहने की इच्छा वाले भरत ने नगर में वृहद उत्सव किया। (श्लोक ९७)

एक दिन भरत ने राम को प्रणाम कर कहा, 'हे आर्य, आप की आज्ञा से मैंने इतने दिनों तक राज्य किया है, अब आप उसे ग्रहण करें। इस राज्य को करने के लिए यदि मैं आप द्वारा विवश

नहीं कर दिया जाता तो उसी समय पिताजी के साथ दीक्षा ग्रहण कर लेता। मेरा हृदय संसार से विरक्त हो गया है। अब जबकि आप आ ही गए हैं तो उस राज्य को ग्रहण करें। अब मेरी राज्य करने की इच्छा नहीं है।' (श्लोक ९८-१००)

तब राम आँखों में पानी भरकर बोले, 'हे वत्स, तुम यह क्या कह रहे हो? हम तो यहाँ तुम्हारे आमन्त्रण पर आए हैं। तुम आज तक जिस प्रकार राज्य कर रहे थे उसी प्रकार करते रहो। राज्य सहित हम लोगों का परित्याग कर अकारण क्यों हमें विरह व्यथा देना चाह रहे हो? पूर्व की तरह मेरी आज्ञा का पालन कर राज्य करो।' राम को इस प्रकार आग्रह करते देखकर भरत वहाँ से उठकर जाने लगे। लक्ष्मण ने उनका हाथ पकड़कर बैठा दिया। भरत ने व्रत ग्रहण करने का निश्चय किया है यह जानकर सीता विशल्या आदि ससम्भ्रम वहाँ आई और भरत को व्रत का आग्रह भुलाने के लिए जलक्रीड़ा के लिए चलने का अनुरोध किया। उनका अत्यन्त आग्रह देखकर भरत को उनका आग्रह स्वीकार करना पड़ा। (श्लोक १०१-१०५)

इच्छा नहीं होते हुए भी भरत अपने अन्त:पुर सहित जल-क्रीड़ा करने गए। विरक्त हृदय भरत ने एक मुहूर्त तक क्रीड़ा की। तदुपरान्त राजहंस की तरह सरोवर से निकल कर तट पर आए। उसी समय आलान स्तम्भ को उखाड़ कर भुवनालङ्कार हाथी वहाँ आया। मदान्ध होते हुए भी भरत को देखने मात्र से ही वह मदरहित अर्थात् शान्त हो गया। भरत भी उसे देखकर आनन्दित हो गए। (श्लोक १०६-१०८)

उपद्रवकारी हाथी के बन्धन मुक्त होने की बात सुनकर राम और लक्ष्मण भी स्व सामन्तों सहित उसे पकड़ने के लिए तत्काल वहाँ उपस्थित हुए। हाथी पकड़ा गया। राम की आज्ञा से महावत उसे बाँधने के लिए स्व स्थान पर ले गए। उसी समय उन्हें देशभूषण और कुलभूषण नामक दो केवलियों के उद्यान में समवसरण लगाने का संवाद मिला। राम, लक्ष्मण और भरत सपरिवार उन्हें वन्दना करने गए। (श्लोक १०९-१११)

वन्दना के पश्चात् राम ने पूछा, 'हे महात्मन्, मेरा भुवना-लङ्कार नामक हाथी भरत को देखते ही मदरहित क्यों हो गया?'

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

देशभूषण केवली बोले, 'भगवान् ऋषभ ने चार हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की थी। बाद में जब वे मौन और निराहार रहकर (शुद्ध आहार पानी न मिलने से) विहार करने लगे। तब सब राजा क्लिनष्ट होकर वनवासी हो गए। उनमें प्रह्लादन और सुप्रभ राजा के चन्द्रोदय और सुरोदय नामक दो पुत्र थे। वे बहुत दिनों तक भवभ्रमण करते हुए अनुक्रम से चन्द्रोदय गजपुर में हरिमती राजा की रानी चन्द्रलेखा के गर्भ से कुलङ्कर नामक पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया। सुरोदय भी उसी नगर में विश्वभूति नामक ब्राह्मण की पत्नी अग्निकुण्डा के गर्भ से जन्म ग्रहण किया और श्रुतिरति नाम से प्रसिद्ध हुआ।' (श्लोक ११२-११७)

'कुलङ्कर राजा हो गए। एक दिन वे एक तापस के आश्रम में जा रहे थे। उन्हें अभिनन्दन नामक अवधिज्ञानी मुनि बोले, 'हे राजन्, तुम जिसके पास जा रहे हो वह तापस पंचाग्नि तप कर रहा है। तप के लिए लाए काष्ठ में एक सर्प है। वह सर्प पूर्वभव में क्षेमङ्कर नामक तुम्हारे पितामह थे। इसलिए उस काष्ठ को सावधानीपूर्वक चीरकर उस सर्प की रक्षा करो।' मुनि की बात सुनकर राजा व्याकुल हो उठे। वे तत्काल वहाँ गए और काष्ठ चीर कर मुनि के कथनानुसार वहाँ सर्प देखकर विस्मित हो उठे। कुलङ्कर राजा की इच्छा दीक्षा लेने की हो गई। उसी समय श्रुतिरति ब्राह्मण भी वहाँ आया और कहने लगा, 'तुम्हारा यह धर्म आम्नाय रहित नहीं है फिर भी यदि दीक्षा लेनी है तो अन्तिम समय में लेना। इस समय क्यों दुःख वरण कर रहे हो?'

(श्लोक ११८-१२३)

'श्रुतिरति की बात सुनकर राजा की दीक्षा लेने की इच्छा नष्ट हो गई। वह किंकर्तव्यविमूढ़ सा विचार करते हुए संसार में ही रह गया। उसकी श्रीदामा नामक एक रानी थी। वह श्रुतिरति पुरोहित पर आसक्त थी। एक दिन उस दुर्मति रानी के मन में भय उत्पन्न हुआ कि उसके और श्रुतिरति का अवैध सम्बन्ध राजा को ज्ञात हो गया है। उसने इस भय को सत्य समझा। उसने सोचा, राजा असन्तुष्ट होकर उसे मार डालेंगे। इसलिए वे मुझे मारें उसके पूर्व ही उन्हें मार देना उचित होगा। तदुपरान्त श्रीदामा ने श्रुतिरति से परामर्श कर अपने पति कुलङ्कर को मार डाला।

कुछ दिन पश्चात् श्रुतिरति भी मर गया। बहुत दिनों तक वे दोनों विभिन्न प्रकार की योनियों में पतित होकर संसार भ्रमण करने लगे।' (श्लोक १२४-१२७)

'कितना ही समय व्यतीत हो गया। तदुपरान्त वे राजगृह नगर में कपिल नामक ब्राह्मण की पत्नी सावित्री के गर्भ से युग्म रूप में उत्पन्न हुए। उनके नाम विनोद और रमण थे। रमण वेदाध्ययन के लिए विदेश गया। वहाँ वेदाध्ययन कर वह राजगृह लौट आया। जब वह राजगृह प्रवेश करने लगा तो रात बहुत हो गई थी। उसे असमय आया देखकर द्वारपालों ने द्वार नहीं खोला। अतः सर्व साधारण के व्यवहार के लिए जो यक्षायतन था वह वहाँ जाकर रात्रि व्यतीत करने के लिए अवस्थित हो गया।' (श्लोक १२८-१३०)

'उसी समय विनोद की पत्नी शाखा दत्त नामक व्यक्ति के साथ व्यभिचार का संकेत पाकर वहाँ यक्षायतन में आई। दत्त तब तक आया नहीं था। उसने रमण को ही दत्त समझकर उसे जागृत किया और व्यभिचार में लिप्त हो गई। उसका अनुसरण कर उसका पति विनोद वहाँ आया और रमण को मार डाला। शाखा ने रमण की छुरी बाहर निकाल कर उसी से विनोद को मार डाला।' (श्लोक १३१-१३२)

'वे दोनों पुनः दीर्घ काल तक भव-भ्रमण करते रहे। तत्पश्चात् विनोद ने एक धनाढ्य व्यक्ति के घर धन नामक पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया। रमण भी उसी श्रेष्ठी की पत्नी लक्ष्मी के गर्भ से भूषण नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। भूषण के साथ बत्तीस श्रेष्ठी कन्याओं का विवाह हुआ। वह उनके साथ सुखोपभोग करने लगा। एक दिन रात्रि के चतुर्थ प्रहर में जब वह अपने घर की छत पर बैठा था उसी समय श्रीधर नामक मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों ने केवल ज्ञान उत्सव मनाया। उसने उस महोत्सव को देखा। यह देखकर भूषण के मन में धर्म-भाव उत्पन्न हुआ। वह उसी समय प्रासाद से उतर कर मुनि को वन्दना करने गया। जाते समय राह में सर्प ने उसे डस लिया शुभ परिमाण में मृत्यु होने के कारण वह दीर्घकाल तक शुभ गति में भ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् वह जम्बूद्वीप के अपर विदेह के रत्नपुर नामक नगर में

अचल नामक चक्रवर्ती की पत्नी हरिणी के गर्भ से पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया। उसका नाम प्रियदर्शन रखा गया। उसकी धर्म में अभिरुचि थी। फलतः वह बाल्यकाल में ही दीक्षा लेना चाहता था; किन्तु पिता की आज्ञा से तीन हजार कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। सुखोपभोग करते समय भी वह संवेग से रहता था। उसने गृहवास में चौसठ हजार वर्षों तक धर्माचरण में रत रहकर मृत्यु प्राप्त की और ब्रह्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ।'

(श्लोक १३३-१४१)

'धन संसार भ्रमण कर पोतनपुर में अग्निमुख नामक ब्राह्मण की पत्नी शकुन्त के गर्भ से मृदुमति नामक पुत्र रूप में जन्मा। वह अत्यन्त अविनीत था इसलिए पिता ने उसे घर से निकाल दिया। वह इधर-उधर घूमने लगा और सुयोग के अनुसार कला की शिक्षा लेने लगा। इस प्रकार समस्त कलाओं मे पूर्ण और धूर्त होकर वह घर लौट आया। द्युत क्रीड़ा में वह कभी किसी से हारता नहीं था। अतः उसने इस क्रीड़ा से प्रचुर धन प्राप्त कर लिया। फिर वसन्तसेना वेश्या के साथ भोग विलास कर अन्त में दीक्षित हुआ। मृत्यु के पश्चात् वह भी ब्रह्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर पूर्व भव के कपट के लिए वैताढ्य पर्वत पर हाथी रूप में जन्म ग्रहण किया। वही हाथी यह भुवनालङ्कार है। प्रियदर्शन का जीव ब्रह्म देवलोक से च्युत होकर तुम्हारा पराक्रमी भाई भरत हुआ है। भरत को देखकर भुवनालङ्कार को जाति स्मरण ज्ञान हो गया अतः वह उसी समय मदरहित हो गया कारण विवेक उत्पन्न होने पर रुद्रता-उग्रता नहीं रहती।' (श्लोक १४२-१४७)

इस प्रकार अपना पूर्व भव सुनकर भरत का हृदय और अधिक वैराग्यमय हो गया। उन्होंने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली और तपस्या कर मोक्ष गए। अन्यान्य राजागण भी दीर्घकाल तक व्रत का पालन कर नाना प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त कीं और अन्त में भरत की तरह परम पद प्राप्त किया अर्थात् मोक्ष गए। भुवनालङ्कार हस्ती भी बहुविध तपकर अन्त में अनशन मृत्यु वरण कर ब्रह्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ। भरतकी माँ कैकेयी ने भी व्रत ग्रहण कर एवं उसका निष्कलंक पालन कर मोक्ष प्राप्त की। (श्लोक १४८-१५२)

भरत के दीक्षा लेने के पश्चात् अनेक राजा, खेचर और प्रजाजनों ने भक्ति भाव से राम को राज्यासन ग्रहण करने को कहा। राम बोले, 'लक्ष्मण वासुदेव हैं, इसलिए उसका राज्याभिषेक करो।' वैसा ही किया गया। अष्टम वासुदेव और बलदेव तीन खण्ड भरत पर राज्य करने लगे। (श्लोक १५३-१५५)

राम ने विभीषण को राक्षसद्वीप, सुग्रीव को कपि द्वीप, हनुमान को श्रीपुर, विराध को पाताल लङ्का, नील को ऋक्षपुर, प्रतिसूर्य को हनुपुर, रत्नजटी को देवोपगीत नगर और भामण्डल को वैताढ्य पर्वत का रथुनुपुर नगर जहाँ उसकी पूर्व राजधानी थी प्रदान किया। अन्य को भी भिन्न-भिन्न राज्य दिए।

(श्लोक १५६-१५९)

तदुपरान्त राम शत्रुघ्न को बोले, 'वत्स, जो देश तुम्हें पसन्द हो ग्रहण करो।' शत्रुघ्न बोले, 'हे आर्य, मुझे मथुरा का राज्य दें।' राम बोले, 'वत्स, मथुरा का राज्य लेना दुष्कर है। कारण वहाँ मधु नामक एक राजा राज्य करते हैं। उसे चमरेन्द्र ने पहले एक त्रिशूल दिया था, उसका यह गुण है कि वह दूर से ही शत्रु का संहार कर पुनः मधु के हाथों में लौट जाता है।' (श्लोक १५९-१६०)

शत्रुघ्न बोले, 'हे देव, आप यदि राक्षस कुल का नाश कर सकते हैं तो क्या मैं आपका छोटा भाई होकर मधु को परास्त नहीं कर सकूँगा? निश्चय ही कर सकूँगा। अतः आप मुझे मथुरा का राज्य दें। मैं स्वयं मधुराजा का उपाय कर लूँगा।'

(श्लोक १६१-१६२)

राम ने शत्रुघ्न का अत्यन्त आग्रह देखकर उसे मथुरा जाने की आज्ञा दे दी। बोले, 'भाई, मधु जब त्रिशूल रहित प्रमाद में पड़ा हो, उसी समय उससे युद्ध करना।' तदुपरान्त राम ने शत्रुघ्न को अक्षय बाण युक्त दो तूणीर दिए और कृतान्त बदन नामक सेनापति को उनके साथ कर दिया। परम विजय की आशा वाले लक्ष्मण ने भी उन्हें अग्निमुख बाण और अपना अर्णवावर्त्त धनुष दिया। (श्लोक १६३-१६६)

शत्रुघ्न यात्रा करते हुए कुछ दिनों के मध्य ही मथुरा के निकट पहुँच गए और नदी तट पर छावनी डाली। उन्होंने जानकारी के लिए गुप्तचरों को भेजा। वे लौटकर आए और बोले,

'मथुरा के पूर्व में कुबेरोद्यान नामक एक उद्यान है। मधुराजा अभी वहां गए हैं और अपनी पत्नी जयन्ती के साथ विहार कर रहे हैं। उनके साथ युद्ध करने का यही उपयुक्त समय है।'

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(श्लोक १६७-१६९)

छल के विज्ञाता शत्रुघ्न ने रात्रि के समय मथुरा में प्रवेश किया और अपनी सेना द्वारा मधु के आने के पथ को अवरुद्ध कर दिया। युद्ध आरम्भ हुआ। राम-रावण के युद्ध में लक्ष्मण ने जिस प्रकार खर को मारा उसी प्रकार शत्रुघ्न ने मधु के पुत्र लवण को मार डाला। महारथी मधु पुत्र निधन पर क्रोधित होकर धनुष उठाए शत्रुघ्न से युद्ध करने के लिए अग्रसर हुए। दोनों में युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों ही शस्त्र चला रहे थे और दोनों ही एक-दूसरे के अस्त्र काट रहे थे। दोनों में देव और दानव की भाँति बहुत देर तक शस्त्र युद्ध चलता रहा। दशरथ पुत्र शत्रुघ्न ने तब लक्ष्मण द्वारा प्रदत्त अर्णवावर्त्त धनुष और अग्निमुख बाण को स्मरण किया। स्मरण मात्र से वे उनके हाथ में आ गए। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर अग्निमुख बाण द्वारा शिकारी जैसे सिंह पर आक्रमण करता है, उसी प्रकार शत्रुघ्न शत्रु पर प्रहार करने लगे। बाण के आघात से व्याकुल होकर मधु सोचने लगा—इस समय मेरे हाथ में त्रिशूल नहीं है। इसीलिए मैं शत्रु को मार नहीं सका। मैंने कभी जैनेन्द्र पूजा भी नहीं की और नहीं चैत्य निर्माण और दान-पुण्य किया फलतः मेरा जीवन व्यर्थ चला गया। ऐसा विचार कर मधु ने भाव चारित्र ग्रहण किया और नमस्कार महामन्त्र का स्मरण करते हुए मृत्यु प्राप्त कर सनत्कुमार देवलोक में महर्द्धिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ। उसी समय मधु की देह पर विमान-वासी देवों ने पुष्प वृष्टि की और 'मधु देव की जय हो' कहकर जय घोषणा की। (श्लोक १७०-१७९)

देवता रूपी त्रिशूल चमरेन्द्र के पास लौट गया और शत्रुघ्न ने मधु की हत्या किस प्रकार छल से की पूरा वृतान्त सुनाया। अपने मित्र वध की बात सुनकर चमरेन्द्र ने शत्रु को मारने के लिए प्रस्थान किया, वेणुदारी नामक गरुड़ पति ने उनसे पूछा, 'आप कहाँ जा रहे हैं?' उन्होंने प्रत्युत्तर दिया 'मेरे मित्र की हत्या करने

वाला शत्रुघ्न इस समय मथुरा में है, मैं उसे मारने जा रहा हूं।'

(श्लोक १८०-१८२)

वेणुदारी इन्द्र बोले, 'रावण ने धरणेन्द्र से अमोघ विजया शक्ति प्राप्त की थी। उस शक्ति को भी पुण्यवान् लक्ष्मण ने जीत लिया और रावण का वध कर दिया। उसके सामने रावण का सेवक मधु तो है ही क्या? उसी लक्ष्मण की आज्ञा से शत्रुघ्न ने मधु को युद्ध में मारा है?'

(श्लोक १८३-१८४)

चमरेन्द्र बोले, 'उस अमोघ शक्ति को लक्ष्मण ने विशल्या के प्रभाव से जीता था; किन्तु अब विशल्या विवाहित है अतः अब उसका प्रभाव नहीं है। अब वह कुछ नहीं कर सकती। अतः मैं जाकर उसकी हत्या अवश्य करूँगा।'

(श्लोक १८५-१८६)

ऐसा उत्तर देकर क्रोध से भरे चमरेन्द्र शत्रुघ्न के देश मथुरा गए। उन्होंने शत्रुघ्न के सुशासन में सबको स्वस्थ देखा। चमरेन्द्र ने यही सोचकर कि स्वस्थ प्रजा में नाना प्रकार के उपद्रव कर शत्रु को विचलित करना ही उत्तम है। अतः उन्होंने मथुरा की प्रजा में विभिन्न प्रकार की व्याधियां फैलाईं। कुल देवों ने आकर शत्रुघ्न को व्याधियों का कारण बताया। तब शत्रुघ्न राम और लक्ष्मण के पास गए।

(श्लोक १८७-१८९)

उसी समय देशभूषण और कुलभूषण मुनि विहार करते हुए अयोध्या आए। राम-लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने उनके निकट जाकर चरण वन्दना की। तब राम ने मुनि से पूछा, 'शत्रुघ्न ने मथुरा लेने का आग्रह क्यों किया?'

(श्लोक १९०-१९५)

देशभूषण बोले, शत्रुघ्न का जीव अनेक बार मथुरा में उत्पन्न हुआ था। एक बार उसने श्रीधर ब्राह्मण के रूप में जन्म ग्रहण किया था। वह रूपवान् और साधुओं का सेवक था। एक समय जब वह राह से गुजर रहा था उसी समय राजा की मुख्य रानी ललिता ने उसे देखा। उसके मन में विकार उत्पन्न हुआ। अतः उसने उसे काम-केलि के लिए बुलवाया था। उसी समय राजा भी सहसा वहां उपस्थित हो गए। राजा को देखकर ललिता क्षुब्ध हो गई; किन्तु वह तुरन्त चोर-चोर कहकर चिल्लाने लगी। राजा ने भी इस प्रकार श्रीधर को पकड़कर सेवकों द्वारा वध्यभूमि में भिजवा दिया। उसने उसी समय दीक्षा ग्रहण करने की प्रतिज्ञा

की। अतः कल्याण नामक मुनि ने उसे छुड़वा लिया। मुक्त होकर उसने दीक्षा ग्रहण की और तपस्या कर देवलोक में गया। वहाँ से च्युत होकर मथुरा में चन्द्रप्रभ राजा की रानी कंचनप्रभा के गर्भ से अचल नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। राजा चन्द्रप्रभ उसे बहुत प्यार करते थे। उसके भानुप्रभ आदि आठ अग्रज सहोदर थे। पिता इसे सबसे अधिक प्यार करते हैं अतः वे इसे ही राज्य देंगे सोचकर उसकी हत्या के विषय में वे सोचने लगे। मन्त्रियों को यह बात मालूम होने पर उन्होंने अचल को सतर्क कर दिया। अचल वहाँ से भाग कर वन में चला गया। वन में चलते समय एक बड़ा कांटा उसके पैर में चुभ गया। उस पीड़ा से अचल चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। (श्लोक १९२-२००)

'उसी समय श्रावस्ती नगरी का अधिवासी अङ्क जिसको उसके पिता ने घर से निकाल दिया था, माथे पर लकड़ी का गट्ठर लिए उधर ही से जा रहा था। उसने अचल को देखा। दया उमड़ने के कारण उसने लकड़ी का गट्ठर नीचे उतारा और उसके पाँव का काँटा निकाल दिया। अचल ने खुश होकर उसके हाथ पर काँटा रखा और बोला, 'भद्र, तुमने बहुत अच्छा कार्य किया है। तुम मेरे परम उपकारी हो। जिस दिन तुम सुनो कि अचल मथुरा का राजा हो गया है, उस दिन तुम मथुरा चले आना।'
(श्लोक २००-२०२)

वहाँ से अचल कौशाम्बी चला गया। वहाँ उसने राजा इन्द्रदत्त को सिंहगुरु से धनुष का अभ्यास करते देखा। उसने भी सिंहाचार्य और इन्द्रदत्त को अपना धनुष संचालन चातुर्य दिखाया। इससे प्रसन्न होकर इन्द्रदत्त ने अपनी कन्या दत्ता का विवाह उसके साथ कर दिया। कुछ भूमि भी दी। सैन्य-बल पाकर अचल ने अङ्ग आदि कई देश को जीत लिया। (श्लोक २०३-२०४)

'तदुपरान्त उसने सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण किया। वहाँ उसने स्व अग्रज भानुप्रभ आदि को युद्ध में बन्दी बना लिया। राजा चन्द्रप्रभ ने उन्हें छुड़ाने के लिए मन्त्रियों को भेजा। अचल ने मन्त्रियों को सारी बात बताई। मन्त्रियों ने लौटकर राजा को सब कुछ बताया। यह सुनकर चन्द्रप्रभ बहुत प्रसन्न हुए एवं खब

महोत्सव एवं धूमधाम के साथ अचल को नगर में प्रवेश करवाया।'
(श्लोक २०५-२०८)

'तत्पश्चात् राजा चन्द्रप्रभ ने छोटा होने पर भी अचल को सिंहासन पर बैठाया और भानुप्रभ आदि को निर्वासित करना चाहा। अचल ने आग्रहपूर्वक पिता को रोककर उन्हें अपना देह-रक्षक बना लिया। (श्लोक २०८-२०९)

'एक दिन अचल ने नाट्यशाला में अङ्क को देखा—देखा प्रतिहारीगण ने उसे धक्का देकर बाहर निकाल दिया। अचल ने उसे पुकारा और उसे उसकी जन्मभूमि श्रावस्ती का राजा बना दिया। अद्वितीय मैत्री सम्पन्न वे दोनों एक साथ राज्य करने लगे। अन्त में दोनों ने समुद्राचार्य से दीक्षा ग्रहण की और मृत्यु को प्राप्त कर ब्रह्म देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से चलकर अचल के जीव ने तुम्हारे अनुज शत्रुघ्न के रूप में जन्म लिया। पूर्वजन्म के मोह के कारण उसने मथुरा जाने का आग्रह किया। अङ्क का जीव भी वहाँ से च्युत होकर तुम्हारा सेनापति कृतान्तवदन बना।' ऐसा कहकर मुनि वहाँ से विहार कर गए। रामचन्द्र आदि भी अयोध्या लौट आए। (श्लोक २१०-२१४)

प्रभापुर के राजा श्रीनन्दी की रानी धमणी के गर्भ से सात पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया। उनके नाम क्रमशः सुरनन्द, श्रीनन्द, श्रीतिलक, सर्वसुन्दर, जयन्त, चामर और जयमित्र रखा गया। फिर उनके आठवाँ पुत्र हुआ। वह जब एक मास का हुआ तभी श्रीनन्दी ने उसे राज्य देकर अपने सातों पुत्रों सहित दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रीनन्दी तपस्या कर मोक्ष को प्राप्त हो गए और सुरनन्दादि सातों मुनियों ने जङ्घाचरणलब्धि प्राप्त की। वे महर्षि एक बार विहार करते हुए मथुरा आए। उस समय वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई थी। अतः वे एक पर्वत की गुफा में चातुर्मास व्यतीत करने के लिए अवस्थित हो गए। वे अट्ठाई आदि अनेक प्रकार की तपस्या करने लगे। पारणे के दिन वे वहाँ से उड़कर दूर चले जाते और पारणा कर पुनः वहीं आ जाते। उनके प्रभाव से चमरेन्द्र ने जो व्याधि मथुरा में उत्पन्न की थी वह नष्ट हो गई।

(श्लोक २१५-२२१)

एक बार वे मुनिगण पारणा करने अयोध्या गए। वे अर्हद्दत्त

श्रेष्ठी के घर भिक्षा के लिए पहुंचे । श्रेष्ठी ने अश्रद्धा सहित उन्हें वन्दन किया और मन ही मन सोचा—ये कैसे साधु हैं जो वर्षाकाल में भी विहार करते हैं ? मैं इनसे इसका कारण पूछूँ । फिर सोचा, नहीं, ऐसे पाखण्डियों के साथ बात करना समय नष्ट करना है ।

(श्लोक २२२-२२४)

श्रेष्ठी की पत्नी ने उन्हें आहार-पानी दिया । वे आहार-पानी लेकर द्युति नामक आचार्य के उपाश्रय में गए । आचार्य ने ससम्मान उनकी वन्दना की; किन्तु उनके शिष्य साधुओं ने उन्हें अकाल विहारी समझकर वन्दना नहीं की । द्युति आचार्य ने उन्हें बैठने के लिए आसन दिया । उन्होंने आसन पर बैठकर पारणा किया । फिर बोले, 'हम मथुरा से आए हैं पुनः वहीं चले जाएँगे ।' ऐसा कहकर वे उड़कर स्व-स्थान पहुंच गए । उनके जाने के पश्चात् आचार्य ने जङ्घाचरण मुनियों के गुणों की प्रशंसा की । यह सुनकर उन अवज्ञा करने वाले साधुओं के मन में पश्चात्ताप हुआ । अर्हद्दत्त श्रेष्ठी को भी पश्चात्ताप हुआ । श्रेष्ठी कार्तिक शुक्ला सप्तमी को मथुरा गए । वहाँ चैत्य पूजा कर गुफास्थित मुनियों के निकट गए । उन्होंने अपनी अवज्ञा के प्रति मुनियों से माफी माँगी ।

(श्लोक २२५-२२८)

सप्तर्षियों के प्रभाव से मथुरा नगर रोग मुक्त हो गया यह सुन कर शत्रुघ्न कार्तिक पूर्णिमा के दिन मथुरा पहुंचे । उन्होंने मुनियों को वन्दना कर निवेदन किया—'हे महात्मागण ! आप मेरे घर पधार कर अन्न-जल ग्रहण करें ।' प्रत्युत्तर में वे बोले—'साधु के लिए राजपिण्ड ग्रहण योग्य नहीं होता ।' (श्लोक २२९-२३२)

शत्रुघ्न ने पुनः निवेदन किया, 'हे स्वामिन् ! आपने हम लोगों का बृहद् उपकार किया है । मेरे राज्य में जो दैनिक रोग फैला था, वह आप लोगों के प्रभाव से शान्त हो गया । अतः मुझ पर समस्त प्रजा का अनुग्रह कर कुछ दिन यहाँ और अवस्थान करें । कारण, आप लोगों की तो समस्त प्रवृत्ति ही परोपकार के लिए होती है ।' (श्लोक २३३-२३४)

मुनियों ने उत्तर दिया, 'वर्षाकाल व्यतीत हो गया है इसलिए अब हम यहाँ से विहार कर तीर्थयात्रा करने जाएँगे । कारण, मुनि एक स्थान पर अवस्थित नहीं रहते । तुम इस नगरी के घर-घर में

जिन-बिम्ब स्थापित करवाओ ताकि इस नगर में कभी भी व्याधि न हो।' (श्लोक २३५-२३६)

तदुपरान्त सप्तर्षि वहाँ से उड़कर अन्यत्र चले गए। शत्रुघ्न ने प्रत्येक घर में जिन-बिम्ब स्थापित करवाया। (श्लोक २३७)

उस समय वैताढय गिरि की दक्षिण श्रेणी की अलङ्कार रूपा रत्नपुर नामक नगरी में रत्नरथ नामक राजा राज्य करते थे। उनके चन्द्रमुखी नामक एक रानी थी। उसके गर्भ से मनोरमा नामक एक पुत्री का जन्म हुआ। उसका रूप भी उसके नामानुसार मनोरम और सुन्दर था। वह कन्या क्रमशः यौवन को प्राप्त हुई। एक दिन राजा जब यह चिन्ता कर रहे थे कि कन्या किसे दें? उसी समय अकस्मात् नारद वहा उपस्थित हुए। उन्होंने कहा कि कन्या लक्ष्मण के योग्य है। यह सुनकर गोत्र-बैर के कारण रत्नरथ का पुत्र क्रुद्ध हो गया और नेत्रों के संकेत से अपने सेवकों को नारद मुनि को मारने की आज्ञा दी। बुद्धिमान नारद सेवकों को उठते देख उनका अभिप्राय समझ गए और तत्काल उड़कर लक्ष्मण के पास पहुंचे। उस कन्या का रूप एक पट पर अङ्कित कर लक्ष्मण को दिखाया और अपने साथ घटी घटना उन्हें सुना दी। कन्या का रूप देखकर लक्ष्मण उस पर आसक्त हो गए। अतः वे राम सहित स्व और राक्षस एवं वानरों की सेना लेकर रत्नपुर में उपस्थित हुए। अल्प समय में ही लक्ष्मण ने रत्नपुर को जीत लिया। रत्नरथ ने राम को श्रीदामा और लक्ष्मण को अपनी मनोरमा नामक कन्या दी। (श्लोक २३८-२४६)

तदुपरान्त राम और लक्ष्मण वैताढय गिरि की समस्त दक्षिण श्रेणी जयकर अयोध्या लौट आए और सुखपूर्वक राज्य करने लगे। (श्लोक २४७)

लक्ष्मण के सब मिलाकर सोलह हजार रानियाँ और अढ़ाई सौ पुत्र थे। उनमें विशल्या, रूपवती, वनमाला, कल्याणमाला, रत्नमाला, जितपद्मा, अभयवती और मनोरमा—ये आठ पटरानियाँ थीं। इनके जो पुत्र मुख्य हुए उनके नाम हैं—विशल्या के श्रीधर, रूपवती के पृथ्वीतिलक, वनमाला के अर्जुन, जितपद्मा के श्रीकेशी, कल्याणमाला के मङ्गल, मनोरमा के सुपार्श्वकीर्ति, रत्नमाला के विमल और अभयवती के सत्यकार्तिक। (श्लोक २४८-२५२)

राम के चार पत्नी थीं। उनके नाम हैं—सीता, प्रभावती, रतिनिभा और श्रीदामा। (श्लोक २५३)

एक समय सीता ऋतुस्नाता थी। सोते हुए रात्रि के शेष भाग में उसने स्वप्न देखा। देखा कि देव विमान से च्युत होकर दो अष्टापद जीव उसके मुख में प्रवेश कर रहे हैं। उसने अपना वह स्वप्न राम को सुनाया। राम बोले, 'हे देवी ! तुम्हारे दो वीर पुत्र होंगे; किन्तु यह सुनकर मुझे आनन्द नहीं हुआ कि देव-विमान से च्युत होकर दो अष्टापद जीव तुम्हारे मुख में प्रवेश कर गए।

(श्लोक २५४-२५५)

सीता बोली, 'हे देव ! धर्म और आपके प्रभाव से सब कुछ अच्छा ही होगा।' उसी दिन सीता ने गर्भ धारण किया। सीता प्रारम्भ से ही राम को प्रिय थी। गर्भ धारण के पश्चात् वह प्रेम और बढ़ गया। वह राम के नेत्रों को तृप्त करने में चन्द्रिका के समान थी। (श्लोक २५६-२५७)

सीता गर्भवती हो गई यह सुनकर उसकी सौतिनों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। वे सीता को प्रतारित करने के लिए उससे बोली, 'रावण कैसा था, हमें अङ्कित कर बताओ ?' सीता बोली, मैंने उसका शरीर नहीं देखा केवल पाँव देखे थे। अत: शरीर कैसे अङ्कित कर दिखाऊँ ?' वे बोलीं, 'तब पाँव ही अङ्कित कर दिखाओ। उसे देखने की हमारी बहुत इच्छा है।'

(श्लोक २५८-२६०)

सौतिनों के आग्रह से सरलमति सीता ने रावण के चरण चित्रित कर दिए। अकस्मात् राम उसी समय वहाँ आए। उन्हें आते देखकर सौतिनें बोल उठीं—'स्वामिन् ! देखिए, आपकी प्रिय सीता अभी भी रावण को याद करती है। देखिए ना सीता ने रावण के दोनों चरण अङ्कित किए हैं। सीता तो अभी भी रावण की इच्छा रखती है। आप यह बात ध्यान में रखें।' किन्तु, राम ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। गम्भीर होकर वहाँ से चले गए। सीता को पता भी नहीं चला कि वहाँ राम आए थे। सीता को दोषी कहकर उसकी सौतिनों ने अपनी दासियों द्वारा यह बात नगर में प्रचारित करवा दी। इससे नगर के लोग सीता को सदोष कहने लगे। (श्लोक २६०-२६४)

वसन्त ऋतु आई। राम सीता के निकट गए और बोले, 'भद्रे, तुम गर्भ के कारण खिन्न हो। अतः तुम्हारे विनोद के लिए वसन्त ऋतु आ गई है। बकुल आदि वृक्ष स्त्रियों के दोहद से ही विकसित होते हैं। अतः चलो हम महेन्द्र उद्यान में क्रीड़ा करने चलें।' सीता बोली, 'हे नाथ मुझे तो देवार्चन करने का दोहद उत्पन्न हुआ है। अतः उस उद्यान के विविध सुगन्धित पुष्पों द्वारा मेरे इस दोहद को पूर्ण करें।' (श्लोक २६५-२६७)

राम ने अति श्रेष्ठ देवार्चन करवाया। फिर वे सीता को लेकर सपरिवार महेन्द्र उद्यान में गए। वहाँ आनन्दपूर्वक बैठकर राम ने वसन्तोत्सव देखा। वहाँ एक ओर नगरवासी क्रीड़ा कर रहे थे और अन्य ओर अर्हतपूजा का व्यापक आयोजन भी हो रहा था। उसी समय हठात् सीता का दाहिना नेत्र फड़का। वह शङ्का ग्रस्त होकर राम से बोली। राम ने इसे अशुभ कहा। तब सीता बोली, 'मुझे राक्षस द्वीप में रखकर भी क्या दैव अभी तक तृप्त नहीं हुए? निर्दय दैव क्या पुनः मुझे आपके वियोग से भी अधिक कोई दुःख देना चाह रहा है? यदि ऐसा नहीं है तो अशुभकारी संकेत क्यों हो रहा है?' (श्लोक २६८-२७२)

राम बोले, 'देवी दुःख मत करो कारण सुख और दुःख तो मनुष्य के कर्माधीन हैं। प्राणी मात्र को उसे अवश्य भोगना होता है। अतः घर जाकर देवताओं की पूजा करो और सत्पात्र को दान दो। कारण विपत्ति में धर्म ही एकमात्र शरण है।' सीता निज गृह लौट गई और प्रभु पूजा एवं सत्पात्रों को दान देने में रत हो गई। (श्लोक २७३-२७६)

विजय, सुरदेव, मधुमान, पिंगल, शूलधर, काश्यप, काल और क्षेम नामक राजधानी के बड़े-बड़े अधिकारी जो कि नगरी का यथार्थ वृत्तान्त जानने के लिए नियुक्त थे एक दिन राम के पास आए और वृक्ष की तरह थर-थर काँपने लगे। वे राम से कुछ कह ही नहीं सके। कारण राजतेज बड़ा दुःसह होता है। तब राम उनसे बोले, 'हे नगरी के महान् अधिकारीगण, आप लोगों को जो कुछ कहना है कहो। कारण आप लोग एकान्त हितकारी हो इसलिए निर्भय हो।' (श्लोक २७७-२७९)

राम का कथन सुनकर वे कुछ स्थिर हुए। उनमें विजय

नामक अधिकारी जो कि सबका प्रमुख था अत्यन्त सावधानीपूर्वक इस प्रकार कहने लगा, 'हे स्वामिन्! एक बात है जिसे कहने को एकान्त की आवश्यकता है। यदि नहीं कहते हैं तो हम स्वामी की प्रवंचना करेंगे; किन्तु वह अत्यन्त कटु है। हे देव, देवी सीता पर एक कलङ्क लगा है। जिसका होना सम्भव नहीं है पर लोग सीता के लिए वही सब कह रहे हैं। नीति वाक्य यही कहता है कि जो बात युक्तिसंगत होती है पण्डित उस पर अविश्वास नहीं करते। लोग कह रहे हैं रतिक्रीड़ा की इच्छा से रावण ने सीता का हरण किया था, उसे अपने घर में अकेला रखा था। सीता बहुत दिनों तक उसके घर में रही। सीता रावण पर आसक्त थी या विरक्त इसमें क्या जानी-जानी है? रावण स्त्री-लम्पट था। अतः बिना भोगे सीता को छोड़ा नहीं होगा। भोग चाहे सीता को समझाकर करे या जबरदस्ती करे। लोग जो कुछ कह रहे हैं हमने उसे आपके सम्मुख निवेदन कर दिया। इस युक्तिसंगत कलङ्क को आप सहन नहीं करेंगे। हे देव, आपने जन्म से ही अपने कुल की भाँति कीर्ति अर्जित की है। अतः आप उस मलिन कलङ्क को सहकर स्वयश को मलिन न करें।' (श्लोक २८०-२८६)

राम कुछ क्षण चुप रहे। मन ही मन सोचने लगे सीता कलङ्क की अतिथि हो गई है। उसके प्रेम का परित्याग करना भी कठिन है; किन्तु कुछ क्षणों पश्चात् अत्यन्त धैर्यपूर्वक बोले, 'हे महापुरुषगण, आपने यह अच्छा किया जो मुझे सचेत कर दिया। राजभक्त सेवक कभी किसी बात की अपेक्षा नहीं रखते। मात्र स्त्री के लिए मैं ऐसा कलङ्क सहन नहीं करूँगा।' ऐसा कहकर राम ने अधिकारियों को बिदा किया और उस रात्रि खुद अकेले भेष बदल कर प्रासाद के बाहर निकले। नगर भ्रमण करते हुए स्थान-स्थान पर उन्होंने लोगों को यह कहते सुना, 'रावण सीता को ले गया। दीर्घकाल तक सीता रावण के घर रही फिर भी राम उसे ले आए हैं। और अभी भी उसको सती समझते हैं। कैसे हो सकता है यह? स्त्री-लम्पट रावण ने सीता को ले जाकर क्या बिना भोगे छोड़ा है? राम ने बिलकुल सोचा ही नहीं। सच ही कहा है आसक्त व्यक्ति दोष नहीं देखता।' इस प्रकार सीता के कलङ्क की बातें सुनकर राम पुनः प्रासाद को लौट गए। दूसरे

दिन उन्होंने पुनः गुप्तचरों को भेजा। (श्लोक २८७-२९३)

राम सोचने लगे सीता के लिए मैंने राक्षस कुल को भयङ्कर रूप में नष्ट किया है, उसी सीता पर यह कैसा लांछन ? मैं जानता हूं सीता महासती है। रावण स्त्रीलोलुप था; किन्तु हमारा कुल निष्कलङ्क है। अतः मुझे क्या करना चाहिए ? (श्लोक २९४-२९५)

राम के पास लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि बैठे थे। उसी समय गुप्तचर आए। लोग सीता के विषय में जो बातें कहते हैं वह सुनाई। सुनकर लक्ष्मण क्रोधित हो गए। वे भृकुटि चढ़ाकर बोले, 'जो मिथ्या कारण से दोष की कल्पना करते हैं, सती सीता की निन्दा करते हैं, मैं उनके लिए कालस्वरूप हूं।'

(श्लोक २९६-२९७)

राम बोले, 'शान्त हो जाओ भाई, मैंने नगर का समाचार लाने के लिए इन लोगों को नियुक्त किया था। उन्होंने पहले भी मुझे यह बात कही थी। मैं स्वयं भी यह सुनकर आया हूं और ये लोग भी मेरे कहने से ही यह समाचार लाए हैं। अतः सीता को मैंने जैसे स्वीकार किया था उसी प्रकार अब उसका परित्याग करूंगा ताकि लोग मुझे कलङ्कित न करें।' (श्लोक २९८-२९९)

लक्ष्मण बोले, 'आर्य, लोगों के कहने से सीता का परित्याग न करें क्योंकि लोग जो मन में आता है वही कह देते हैं। उनका मुंह कोई बन्द नहीं कर सकता। वे राज्य में सुव्यवस्था होते हुए भी राजा को दोषी ठहराते हैं। अतः राजा को ऐसे लोगों को दण्ड देना चाहिए या फिर उनकी उपेक्षा करनी चाहिए।

(श्लोक ३००-३०१)

राम बोले, 'यह ठीक है, लोग ऐसे ही होते हैं। फिर भी जो बात सबके विरुद्ध है, जिसे कोई पसन्द नहीं करता, यशस्वी पुरुषों के लिए उसका त्याग करना उचित है।' (श्लोक ३०२)

तदुपरान्त राम ने कृतान्तवदन नामक सेनापति को बुलवाया और बोले, 'यद्यपि सीता गर्भवती है फिर भी उसे अरण्य में ले जाकर छोड़ आओ।' यह सुनकर लक्ष्मण रो पड़े और राम के चरणों को पकड़ कर बोले, 'आर्य, महासती सीता का परित्याग अच्छा नहीं है।' राम ने कहा, 'अब तुम इस विषय में मुझे और कुछ मत कहो।' ऐसा सुनकर लक्ष्मण वस्त्र से मुंह दबाए रोते

हुए अपने प्रासाद में चले गए। राम कृतान्तवदन से बोले, 'सम्मेत शिखर की यात्रा के बहाने तुम सीता को वन में ले जाओ। सीता की ऐसी इच्छा भी है।' (श्लोक ३०३-३०६)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री

कृतान्तवदन ने सम्मेत शिखर की यात्रा की बात जाकर सीता से कही। सीता सहमत हो गई। कृतान्तवदन उन्हें रथ में बैठाकर ले गया। (श्लोक ३०८)

जाते समय सीता ने बहुत से अपशकुन देखे। फिर भी सरलता के कारण वह शान्त रूप से बैठी रही। वे बहुत दूर चले गए। चलते-चलते वे गङ्गासागर उतरकर सिंहनिनाद नामक वन में गए। रथ को वहां रखकर कृतान्तवदन कुछ सोचने लगा। सोचते-सोचते उसका मुँह उतर गया। आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। श्लोक ३०८-३१०)

यह देखकर सीता बोली, 'हे सेनापति! हृदय में क्या भयानक शोक का आघात लगा है जो तुम इस प्रकार दुःखी होकर स्थिर हो गए हो?' (श्लोक ३११)

कृतान्तवदन ने कहा, 'माँ! मैं दुर्वचन किस प्रकार बोलूँ? मैं सेवकत्व से दूषित हूं। इसीलिए मुझे यह अकृत्य करना पड़ता है। देवी, आप राक्षस के घर रही लोग इसके लिए आपको कलङ्कित कर रहे हैं। गुप्तचरों ने देव राम को लोग आप पर जो कलङ्क लगा रहे हैं वह सुनाया। सुनकर राम आपका परित्याग करने के लिए प्रस्तुत हो गए हैं। लक्ष्मण लोगों पर कुपित हुए। उन्होंने राम को ऐसा करने से बहुत रोका; किन्तु राम ने उन्हें आज्ञा देकर ऐसा करने से रोक दिया। लक्ष्मण रोते-रोते वहाँ से चले गए। तब प्रभु ने मुझे यह कार्य करने की आज्ञा दी। हे देवि, मैं महापापी हूं, इसीलिए मैं आपको हिंस्र श्वापद युक्त मृत्यु के गृह रूप इस अरण्य में छोड़कर जा रहा हूं। आप केवल अपने प्रभाव से ही इस अरण्य में बच सकेंगी।' (श्लोक ३१२-३१५)

सेनापति की बात सुनकर सीता मूर्च्छित होकर रथ से नीचे गिर पड़ी। सेनापति उसे मृत समझकर एवं स्वयं को पापी समझ कर करुण स्वर में क्रन्दन करने लगा। (श्लोक ३१६)

कुछ क्षणों पश्चात् वन की शीतल हवा से सीता की चेतना लौटी; किन्तु वह पुनः मूर्च्छित हो गई। इस प्रकार बार-बार

अचेत और सचेत होती हुई फिर कुछ स्वस्थ होकर बोली, 'अयोध्या यहाँ से कितनी दूर है ? राम कहाँ हैं ?' (श्लोक ३१७-३१८)

सेनापति बोला, 'हे देवी ! अयोध्या यहाँ से बहुत दूर है। आप अयोध्या के विषय में क्यों पूछ रही हैं और ऐसी उग्र आज्ञा प्रदान करने वाले राम के विषय में भी आप क्यों पूछ रही हैं ?' (श्लोक ३१९)

सेनापति की बात सुनकर रामभक्त सीता बोली, 'हे भद्र ! तुम राम को मेरा सन्देश देना—'आप यदि लोकपवाद से इतने भयभीत हो गए हैं तो मेरी परीक्षा क्यों नहीं ली ? लोक में शङ्का होने पर दिव्यादि द्वारा परीक्षा ली जाती है। मैं अभागिन हूं। अतः इस वन में स्व-कर्मों का फल भोग करूँगी; किन्तु आपने जो कार्य किया है वह आपके विवेक और कुल के सर्वथा अयोग्य है। जिस प्रकार दुर्जनों की बात सुनकर आपने मेरा परित्याग किया है उसी प्रकार दुर्जन लोगों के कहने से आप जिन धर्म का परित्याग मत कर दीजिएगा।' (श्लोक ३२०-२२३)

ऐसा कहकर सीता पुनः मूच्छित हो गई। स्वस्थ होने पर फिर बोली—'हाय, राम मेरे बिना कैसे जीवित रहेंगे ? हा हन्त ! मैं मारी गई ! हे वत्स कृतान्त, तुम राम को मेरा कल्याण और लक्ष्मण को मेरा आशीर्वाद देना। तुम्हारा पथ विघ्न रहित हो ? अब तुम शीघ्र राम के पास लौट जाओ।' (श्लोक ३२४-३२५)

सेनापति कृतान्त ने बड़े कष्ट से अपने मन को समझाया और सीता को वन में छोड़कर अयोध्या की ओर चल पड़े। जाते-जाते सोचने लगे—राम का विचार सीता के एकदम विपरीत है फिर भी सीता राम के प्रति कितनी भक्तिपरायण है। सीता सती शिरोमणि महासती है। (श्लोक ३२६)

अष्टम सर्ग समाप्त

नवम सर्ग

सीता भयावर्त होकर पागलों की तरह इधर-उधर घूमने लगी और पूर्व कर्म दूषित स्व-आत्मा की निन्दा करने लगी। बार-बार वह जोर से रोने लगी और गिर-गिर कर पड़ने लगी।

इसी प्रकार वह एक दिशा में जा गिरी थी। उसी समय उसने सामने से एक सैन्य-दल को आते देखा। वह वहीं खड़ी हो गई और स्थिरमना होकर नमस्कार महामन्त्र का जाप करने लगी।
(श्लोक १-३)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सैनिकों ने सीता को देखा। उन्हें देखकर वे डर गए। वे सोचने लगे—यह अपूर्व दिव्यरूपसम्पन्ना सुन्दरी कौन है जो इस प्रकार अकेली अरण्य में घूम रही है? (श्लोक ४)

सीता कुछ क्षण स्थिर रही; किन्तु अपनी अवस्था याद आते ही वह पुनः रो पड़ी। उसके उस करुण-क्रन्दन को उस-सैन्य दल के राजा ने सुना। सीता के मनस्ताप और क्रन्दन को सुनकर राजा को लगा यह कोई गर्भिणी और सती स्त्री है। (श्लोक ५)

वह दयालु राजा सीता के निकट गया। राजा को देखकर सीता शंकित हो गई। उसने अपने अलङ्कार खोलकर राजा के सम्मुख रख दिए। (श्लोक ६-७)

राजा बोले, 'बहन डरो मत। ये अलङ्कार तुम्हारे ही हैं, तुम धारण करो। तुम्हारा पति कौन निर्दयी शिरोमणि है जिसने तुम्हें इस अवस्था में परित्याग कर दिया? सब कुछ स्पष्ट रूप में बताओ। मन में कोई शङ्का मत रखो। तुम्हारे कष्ट को देखकर मुझे भी कष्ट हो रहा है।' (श्लोक ८)

राजा के मन्त्री सुमति बोले, 'ये पुण्डरीकपुर के राजा बज्रजंघ हैं। इनके पिता का नाम गजवाहन है। बन्धुदेवी नामक रानी के गर्भ से इनका जन्म हुआ है। ये महासत्त्वसम्पन्न परनारी सहोदर और परम श्रावक हैं। ये इस वन में हाथी पकड़ने आए थे। अपना कार्य समाप्त कर ये लौट रहे हैं। इसी बीच इन्होंने तुम्हारा क्रन्दन सुना। तुम्हारा क्रन्दन सुनकर इन्हें दुःख हुआ। अतः हमारे निकट आए हैं। तुम्हारा जो दुःख है वह इन्हें बताओ।'
(श्लोक ९-११)

सीता ने उनकी बात पर विश्वास कर रोते-रोते अपनी सारी कथा बताई। यह सुनकर राजा और मन्त्री दोनों ही रो पड़े। तदुपरान्त राजा निष्कपट भाव से बोले, 'तुम मेरी धर्म-बहन हो। कारण, एक धर्मावलम्बी परस्पर बन्धु ही होते हैं। तुम मुझे अपने भाई भामण्डल के समान समझो और मेरे घर चलो। पति

के घर के अतिरिक्त स्त्री का अन्य घर भाई का घर ही होता है। राम ने लोकोपवाद से तुम्हारा परित्याग किया है, स्वेच्छा से नहीं। इसलिए मुझे लगता है वे भी इस कार्य के लिए पश्चात्ताप करते हुए तुम्हारी ही तरह कष्ट पा रहे हैं। विरहातुर राम चक्रवाक पक्षी की तरह व्याकुल होकर कुछ ही दिनों में तुम्हें खोजने निकलेंगे।' (श्लोक १२-१६)

सीता ने वज्रजंघ के साथ पुण्डरीकपुर जाना स्वीकार कर लिया। उस निर्विकारी राजा ने सीता के लिए पालकी मंगवाई। सीता उसमें बैठकर मानो मिथिलापुरी जा रही हो इस प्रकार पुण्डरीकपुर जा रही थी। वज्रजंघ ने उसके निवास के लिए पृथक् घर दिया। वह वहाँ धर्मध्यान कर अपना समय व्यतीत करने लगी। (श्लोक १७-१८)

सेनापति कृतान्तवदन अयोध्या पहुंचकर राम के पास जाकर बोले, 'मैं सीता को सिंहनिनाद नामक वन में छोड़ आया हूं। वहाँ वे बार-बार मूच्छित हो रही थीं। जब भी चेतना लौटती करुण स्वर में रोने लगतीं। अन्त में सामान्य धैर्य धारण कर उन्होंने मुझे आपको यह कहने के लिए कहा है. 'किसी भी नीतिशास्त्र में किसी भी विधान में या किसी भी देश में मात्र एक पक्ष की बात सुनने मात्र से ही बिना खोज-खबर लिए अन्य पक्ष को अपराधी स्थिर कर कभी दण्ड दिया जाता है? आप सर्वदा विवेक पूर्वक कार्य करते हैं फिर भी यह कार्य आपने बिना विचारे ही किया है। मैं तो अपने प्रति होने वाले अविचार को अपने कर्मों का ही कारण मानती हूं। आप तो सर्वदा निर्दोषी ही हैं। फिर भी स्वामी एक बात कहती हूं—मैं निर्दोष हूं। आपने लोगों की बात मानकर मेरा परित्याग कर दिया; किन्तु इस प्रकार मिथ्यादृष्टि लोगों की बात मानकर जैन धर्म का परित्याग मत करिएगा।' ऐसा कहकर वे पुनः मूच्छित हो गई। कुछ क्षणों पश्चात् पुनः संज्ञा लौटने पर वे पुनः बोल उठी—'हाय मेरे बिना राम कैसे जीवित रहेंगे? हाय, मैं मारी गई।' (श्लोक १९-२४)

कृतान्तवदन के मुख से सीता द्वारा भेजा संवाद सुनकर राम मूच्छित हो गए। उसी समय लक्ष्मण ससभ्रम वहाँ आए और उन पर चन्दन-जल के छींटे डाले। ज्ञान आने पर राम बोल उठे, 'वह

महासती सीता कहाँ है ? जिसे मैंने लोगों की बात में आकर वन में छुड़वा दिया।' (श्लोक २५-२६)

लक्ष्मण बोले, 'हे स्वामी ! अब तक महासती सीता अपने प्रभाव से ही श्वापद प्राणियों से बची हुई हैं। अतः आपके विरह-दुःख में मरने के पूर्व ही उन्हें खोजकर ले आएँ।' (श्लोक २७-२८)

लक्ष्मण की बात सुनकर राम सेनापति कृतान्तवदन और अन्य खेचरों को साथ लेकर विमान द्वारा उसी वन में पहुंचे जहाँ कृतान्तवदन सीता को छोड़कर आया था। राम ने प्रत्येक जलाशय, प्रत्येक पर्वत, प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक लता को छान मारा; किन्तु सीता कहीं नहीं मिली। अब राम और दुःखी हो गए। वे सोचने लगे—लग रहा है कि सिंह या अन्य किसी हिंस्र श्वापद ने उसे खा डाला है। बहुत खोजने के पश्चात् भी जब सीता नहीं मिली तो वे निराश होकर अयोध्या लौट आए। सारे नगर में यह बात फैल गई। नगरवासी बार-बार सीता के गुणों की प्रशंसा और राम की निन्दा करने लगे। राम ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से सीता की अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की। राम को समस्त संसार सीतामय लगने लगा। उनका हृदय, उनके नेत्र, उनकी वाणी सीता के सिवाय कुछ नहीं कह रहे थे। सीता कहाँ थी उस समय, राम यह नहीं जान पाए।

(श्लोक २९-३४)

सीता ने वज्रजङ्घ के यहाँ युगल पुत्रों को जन्म दिया। उनका नाम रखा गया—अनङ्गलवण और मदनांकुश। महान् हृदयी राजा वज्रजङ्घ ने अपने पुत्र के जन्मोत्सव से भी ज्यादा उत्सव मनाया। धात्रियाँ उनका लालन-पालन करने लगीं। क्रीड़ा करते हुए दोनों दुर्ललित भ्राता भूचारी अश्विनीकुमारों की तरह बड़े होने लगे। अल्प दिनों में ही दोनों बालक बाल्य-कला ग्रहण और हस्ती-शावक की तरह शिक्षा लाभ के योग्य होकर वज्रजङ्घ के नेत्रों को महामहोत्सव की तरह आनन्दित करने लगे।

(श्लोक ३५-३८)

उसी समय सिद्धार्थ नामक एक अणुव्रतधारी सिद्धपुत्र जो कि विद्याबल की संवृद्धि से सम्पूर्ण कला व शास्त्रों में विचक्षण, आकाशगामी होने के कारण मेरुगिरि स्थित चैत्यों की त्रिकाल वन्दना करते थे, एक दिन भिक्षा के लिए सीता के घर आए।

सीता ने श्रद्धापूर्वक अन्न-जल देकर उनका सत्कार किया और कुशल-क्षेम पूछा। उन्होंने इसका प्रत्युत्तर देकर सीता की कुशलता पूछी। उन्हें अपने भाई के समान समझकर सीता ने आरम्भ से लेकर पुत्रोत्पत्ति तक का सारा वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर अष्टांग निमित्त के ज्ञाता दयानिधि सिद्धार्थ बोले, 'तुम व्यर्थ चिन्ता मत करो। कारण, लवण व अंकुश जैसे तुम्हारे दो पुत्र हैं। श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त ये दूसरे राम और लक्ष्मण हैं। ये तुम्हारा समस्त मनोरथ पूर्ण करेंगे।' इस प्रकार उन्होंने सीता को आश्वासन दिया।
(श्लोक ३९-४४)

सीता ने तब साग्रह प्रार्थना कर अपने पुत्रों को पढ़ाने के लिए उन्हें रख लिया। सिद्धार्थ ने लवण और अंकुश को समस्त कलाओं में इस प्रकार कुशलता से शिक्षा प्रदान की कि वे देवों के लिए भी अजेय हो गए। समस्त कलाओं की शिक्षा प्राप्त करने में उन्हें इतने दिन लगे कि वे युवा हो गए। अब वे दोनों भाई वसन्त और कामदेव की तरह शोभायुक्त बन गए। (श्लोक ४५-४७)

वज्रजङ्घ ने अपनी रानी लक्ष्मीवती के गर्भ से उत्पन्न शशिचूला और अन्य बत्तीस कन्याओं के साथ लवण का विवाह कर दिया। तदुपरान्त अंकुश के लिए पृथ्वीपुर के राजा पृथु से उनकी रानी अमृतवती के गर्भ से उत्पन्न कन्या की माँग की। पराक्रमी पृथु ने उत्तर दिया—'जिसके वंश का कोई ठिकाना नहीं, उसे कन्या किस प्रकार दूँ?' (श्लोक ४८-५०)

यह सुनकर वज्रजङ्घ कुपित हो गया और पृथ्वीपुर पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में वज्रजङ्घ ने पृथु के मित्र व्याघ्ररथ को बन्दी बना लिया। इससे राजा पृथु ने स्वमित्र पोतनपुराधिपति को सहायता के लिए बुला भेजा। कारण, विपत्ति के समय में मन्त्र की तरह मित्र का भी स्मरण किया जाता है। वज्रजङ्घ ने भी अपने पुत्र को बुला लिया। बहुत मना करने पर भी लवण और अंकुश उनके साथ युद्धक्षेत्र में आए। (श्लोक ५१-५३)

द्वितीय दिन उभय सेना में भयानक युद्ध हुआ। इस युद्ध में बलवान् शत्रु ने वज्रजङ्घ को पराजित कर दिया। मामा की सेना की दुर्गति देखकर लवण और अंकुश ने क्रुद्ध होकर निरंकुश हस्ती की तरह अनेक प्रकार के शस्त्रों की वर्षा कर शत्रु पर आक्रमण कर

दिया। वर्षाऋतु के धारापात को जैसे वृक्ष सहन नहीं कर सकते उसी भाँति बलवान् वीरों के प्रहार को शत्रु सहन नहीं कर सका। पृथु राजा सैन्य सहित पीछे हटने लगे और युद्ध छोड़कर भागने लगे। यह देखकर लवण और अंकुश हँसते हुए उससे बोले—'तुम प्रख्यातवंशी होकर भी हमारे जैसे अज्ञात कुल वालों को पीठ दिखा कर क्यों भाग रहे हो?' (श्लोक ५४-५८)

यह सुनकर पृथु राजा पीछे फिरकर नम्रतापूर्वक बोले—'आपका पराक्रम देखकर अब आपके कुल को जान लिया है। राजा वज्रजङ्घ ने अंकुश के लिए मेरी कन्या की माँगकर मेरी भलाई ही की है। कारण, ऐसा वीर पात्र तो खोजने पर भी नहीं मिलता। ऐसा कहकर राजा ने उसी समय अपनी कन्या अंकुश को देने का वचन दिया। स्वकन्या कनकमाला के पति अंकुश ही हों, ऐसी इच्छा कर राजा पृथु ने समस्त राजाओं के सम्मुख वज्रजङ्घ से सन्धि कर ली। राजा वज्रजङ्घ वहीं छावनी डालकर अवस्थित हो गए। (श्लोक ५९-६२)

एक दिन वहाँ नारद मुनि आए। वज्रजङ्घ राजा ने उनका उचित आदर-सत्कार किया। तदुपरान्त वे समस्त राजाओं के सम्मुख नारद मुनि से बोले, 'हे मुनि! पृथु राजा अपनी कन्या अंकुश को देना चाह रहे हैं; किन्तु इनके मन में लवण और अंकुश के कुल के सम्बन्ध में सन्देह है। अतः आप इनके कुल का पृथु राजा को परिचय दें ताकि वे सन्तुष्ट हो जाएँ।' (श्लोक ६३-६५)

नारद हँसकर बोले, 'इनके कुल को कौन नहीं जानता? जिस कुल की उत्पत्ति के प्रथम अंकुर भगवान् ऋषभ हैं। जिस कुल में कथा-प्रसिद्ध भरतादि चक्रवर्ती राजा हुए और इस समय जिस कुल में राम-लक्ष्मण राज्य कर रहे हैं उस कुल को कौन नहीं जानता? ये लोग जिस समय गर्भ में थे उसी समय अयोध्या के अधिवासियों के कलंक लगाने से राम ने भयभीत होकर सीता का त्याग कर दिया।' (श्लोक ६६-६८)

अंकुश हँसकर बोल उठा, 'हे महामुनि! राम ने सीता को परित्याग कर ठीक नहीं किया। कलंक दूसरे रूप में भी दूर किया जा सकता था। राम ने पण्डित होकर भी ऐसा कार्य कैसे किया?' लवण ने पूछा, 'वह अयोध्या यहाँ से कितनी दूर है, जहाँ मेरे पिता

सपरिवार रहते हैं ?' (श्लोक ६९-७१)

नारद बोले, 'समस्त विश्व में निर्मल चरित्र वाले तुम्हारे पिता राम जहाँ रहते हैं वह अयोध्या यहाँ से एक सौ साठ योजन दूर है।' (श्लोक ७२)

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

लवण नमस्कार कर वज्रजङ्घ राजा से बोला, 'हम वहाँ जाकर राम और लक्ष्मण को देखना चाहते हैं।' (श्लोक ७३)

वज्रजङ्घ ने यह बात स्वीकार कर ली। वहीं से अयोध्या जाना निश्चित हुआ। अतः पृथु राजा ने खूब धूमधाम सहित अपनी कन्या कनकमाला का विवाह अंकुश के साथ कर दिया। (श्लोक ७४)

लवण और अंकुश राजा वज्रजंघ और पृथु सहित वहाँ से प्रस्थान कर गए। राह में आए अनेक देशों को जय करते हुए वे लोकपुर नामक नगर के निकट पहुंचे। उस समय वहाँ धैर्य और शौर्य सम्पन्न कुबेरकान्त नामक अभिमानी राजा राज्य करते थे। उसको भी इन्होंने युद्ध में जीत लिया। वहाँ से चलकर उन्होंने विजयस्थली में भ्रातृशत नामक राजा को जीता। वहाँ से गङ्गा नदी अतिक्रम कर वे उत्तर में कैलाश पर्वत की ओर गए। वहाँ उन्होंने नन्दन और चारु राजा के देशों को जीत लिया। तदुपरान्त रुष, कुन्तल, कालाम्बु, नन्दि नन्दन, सिंहल, शलभ, अनल, शूल, भीम, भूतरव आदि देशों के राजाओं को जय करते हुए वे सिन्धु नदी के तट पर उपस्थित हो गए। वहाँ भी वे अनेक आर्य-अनार्य राजाओं को जीतते हुए पुण्डरीकपुर लौट आए। नगरवासियों ने वज्रजंघ को यह कहकर धन्यवाद दिया—धन्य है राजा वज्रजंघ जिनके ऐसे पराक्रमी भानजे हैं। नगर में इनकी शोभायात्रा निकली। अन्यान्य राजाओं से परिवृत्त हुए वीर लवण और अंकुश सुशोभित हो रहे थे। पुरवासी हर्षोत्फुल नेत्रों से उन्हें देख रहे थे। (श्लोक ७५-८२)

प्रासाद में आकर दोनों भाइयों ने विश्व-पवित्रकारी माता सीता के चरणों में प्रणाम किया। सीता ने आनन्दाश्रु से उन्हें अभिसिंचित कर उनके मस्तक को चूमा और आशीर्वाद दिया, 'तुम दोनों राम-लक्ष्मण बनो।' (श्लोक ८३-८४)

तत्पश्चात् लवण और अंकुश ने वज्रजंघ से जाकर कहा,

'मामाजी, आपने हमें अयोध्या जाने की अनुमति तो पहले ही दे दी थी अब उसे कार्यान्वित करें। लम्पाक, रूष, कालाम्बु, कुन्तल, शलभ, अनल, शूल और अन्यान्य देश के राजाओं को भी आदेश दीजिए, प्रयाण वादित्र बजवाइए ताकि सेना द्वारा दिक् समूह को आच्छादित कर हम अपनी माँ का परित्याग करने वाले राम के पराक्रम को देख सकें।' (श्लोक ८५-८४)

यह सुनकर सीता अश्रुसिक्त नेत्रों एवं गद्गद् कण्ठ से बोली, 'वत्स, ऐसा विचार कर तुम लोग अनर्थ की इच्छा क्यों कर रहे हो? तुम्हारे चाचा और पिता तो देवताओं के लिए भी अजेय हैं। उन्होंने त्रिलोक के कण्टक रूप लङ्कापति रावण का भी संहार कर दिया। तुम लोग यदि अपने पिता को देखना चाहते हो तो नम्र बनकर वहाँ जाओ। कारण पूज्य व्यक्तियों से विनयपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।' (श्लोक ८५-९०)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

वे प्रत्युत्तर में बोले, माँ, आपका परित्याग करने वाले राम हमारे शत्रु पद पर हैं। अतः अभी हम उनकी विनय कैसे करें? हम कैसे जाकर उनसे कह सकते हैं कि हम दोनों आपके पुत्र हैं। ऐसा करना उनके लिए भी लज्जा का कारण होगा; किन्तु हम यदि उन्हें युद्ध में परास्त करें तो यह उनके लिए आनन्द का कारण होगा। इसी में उभय कुल की शोभा है।' (श्लोक ९१-९३)

सीता कुछ नहीं बोली, केवल रोने लगी। दोनों भाई एक वृहद् सैन्य लेकर अयोध्या की ओर रवाना हो गए। कुठार और कुदाल लिए दस हजार लोग उनकी सेना के आगे पथ परिष्कृत करते हुए चलने लगे। युद्ध की इच्छा वाले दोनों वीर क्रमशः स्वसैन्य से दिक् समूह को आच्छादित करते हुए अयोध्या के निकट जा पहुंचे। (श्लोक ९४-९६)

अपने नगर के बाहर एक वृहद् सैन्यदल के आने की बात सुनकर राम-लक्ष्मण विस्मित हो गए। दोनों ही मन ही मन हँसे। लक्ष्मण बोले, 'आर्य, अग्रज राम के पराक्रम रूपी अग्नि में जल मरने को कौन आया है?' फिर शत्रुरूपी अन्धकार में सूर्य-से राम-लक्ष्मण सुग्रीवादि वीर सहित युद्ध के लिए नगर से बाहर निकले। (श्लोक ९७-९९)

नारद से भामण्डल को सीता का संवाद मिला। वे तत्काल

विमान में बैठकर सीता के पास पुण्डरीकपुर गए। सीता रोते-रोते बोली, 'भैया, राम ने मेरा त्याग किया है। मेरा त्याग तुम्हारे भानजों को सहन नहीं हुआ। अतः वे राम से युद्ध करने गए हैं।'

(श्लोक १००-१०१)

भामण्डल बोले, 'राम ने रभसवृत्ति से अर्थात् बिना कुछ सोचे तुम्हारा त्याग किया है। अब कहीं स्वपुत्रों को मार डालने का अविवेकपूर्ण कार्य न कर बैठें क्योंकि उन्हें तो ज्ञात ही नहीं है कि वे उनके पुत्र हैं। इसलिए राम उन्हें मार डालें उसके पूर्व ही मैं वहाँ पहुंचता हूं।'

(श्लोक १०२-१०३)

तदुपरान्त भामण्डल सीता को अपने विमान में बैठाकर लवण और अंकुश की छावनी में जा पहुंचे। लवण और अंकुश ने सीता को प्रणाम किया। सीता उनसे बोली, 'ये तुम्हारे मामा हैं, इनका नाम है भामण्डल। तब दोनों भाइयों ने उन्हें प्रणाम किया। भामण्डल ने उनका मस्तक सूँघा। उनका शरीर हर्ष से रोमांचित हो उठा। वे उन दोनों को गोद में बैठाकर गद्गद् कण्ठ से बोले, 'मेरी बहन पहले वीर-पत्नी थी अब सौभाग्य से वीर-माता हो गई है। तुम्हारे जैसे वीर पुत्रों के कारण उसकी निर्मलता चाँद से भी अधिक हो गई है। हे पुत्रो ! यद्यपि तुम लोग वीर-पुत्र हो, स्वयं भी वीर हो, फिर भी तुम लोग अपने पिता और चाचा के साथ युद्ध मत करो। कारण, रावण जैसा योद्धा जो कि अतुल भुजबल के साथ-साथ विद्याबल का भी अधिकारी था वह भी जब युद्ध में उनके सम्मुख खड़ा हो नहीं पाया। उन महाबलवान् वीरों के साथ मात्र स्व भुजबल से युद्ध करने का साहस तुम लोग कैसे कर रहे हो ?'

श्लोक १०४-१०९)

लवण और अंकुश ने उत्तर दिया, 'मामाजी, आप स्नेहवश ऐसी भीरुता मत दिखाइए। माँ ने भी ऐसा कहकर हमें भय दिखाया था। हम जानते हैं कि राम और लक्ष्मण से युद्ध करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है; किन्तु अब युद्ध से विमुख होकर उन्हें लज्जित क्यों करें ?'

(श्लोक ११०-१११)

इधर जब इस प्रकार की बात हो रही थी तभी राम और उनकी सेना में प्रलयकाल के मेघ-सा युद्ध प्रारम्भ हो गया। अतः भामण्डल इसी आशङ्का से युद्धक्षेत्र में गए कि कहीं सुग्रीवादि खेचर

इस स्थल सैन्य को विनष्ट न कर दें। (श्लोक ११२-११३)

तदुपरान्त अत्यन्त रोमांच से जिनके कवच उच्छ्वसित हो गए थे ऐसे महापराक्रमी दोनों राजकुमार युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। निःशङ्क युद्ध करते हुए सुग्रीवादि ने जब भामण्डल को अपने सम्मुख देखा तो उनसे पूछा—'ये दोनों कुमार कौन हैं?' भामण्डल ने कहा, 'ये राम के पुत्र हैं।' यह सुनकर सुग्रीवादि खेचर तुरन्त सीता के पास गए, उन्हें प्रणाम कर नीचे बैठ गए।

(श्लोक ११४-११६)

प्रलयकाल के समुद्र की तरह उद्भ्रान्त दुर्द्धर और महा-पराक्रमी लवण और अंकुश ने क्षण मात्र में राम की सेना को भग्न कर डाला। वन-सिंह की भाँति वे जहाँ भी गए उधर ही रथी, अश्वारोही एवं गजारोही कोई भी हाथ में अस्त्र लिए उनके सम्मुख खड़ा नहीं रह सका। इस प्रकार राम की सेना को छिन्न-भिन्न करते हुए अस्खलित गति से वे राम और लक्ष्मण से युद्ध करने लगे। उन्हें देखकर राम और लक्ष्मण परस्पर कहने लगे, 'हमारे शत्रु रूप में ये दोनों कुमार कौन हैं?' (श्लोक ११७-१२०)

राम बोले, 'इन दोनों कुमारों के प्रति मन में स्वाभाविक स्नेह उत्पन्न हो रहा है। इन्हें गले लगाने की इच्छा हो रही है। मन को विवश कर किस प्रकार इनके प्रति वैर-भाव उत्पन्न करूँ? समझ नहीं पा रहा हूं कि उनके साथ कैसा व्यवहार करूँ?'

(श्लोक १२१)

रथ में बैठे राम जब इस प्रकार लक्ष्मण से कह रहे थे उसी समय लवण और अंकुश उनके रथ के सामने जा खड़े हुए। अंकुश बोला, 'वीरयुद्ध में हमारी बड़ी श्रद्धा है। जगत् के लिए अजेय रावण को आपने पराजित किया है। अतः आपको देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। हे राम और लक्ष्मण! आपकी जिस युद्ध-इच्छा को रावण पूरी नहीं कर सका उसको हम पूर्ण करेंगे।'

(श्लोक १२२-१२४)

तदुपरान्त राम, लक्ष्मण, लवण और अंकुश ने अपने-अपने धनुष पर भयंकर ध्वनियुक्त टङ्कार की। कृतान्त सारथी राम के रथ को और वज्रजङ्घ सारथी लवण के रथ को एक-दूसरे के सम्मुख ले आए। उसी प्रकार विराध सारथी ने लक्ष्मण के रथ को

और सारथी राजा पृथु ने अंकुश के रथ को एक-दूसरे के सामने लाकर खड़ा कर दिया। चारों का युद्ध प्रारम्भ हुआ। चारों चतुर सारथी भी विभिन्न प्रकार से रथ को घुमाने लगे। चारों योद्धा नाना प्रकार के अस्त्रों से एक-दूसरे पर वार करने लगे।

(श्लोक १२५-१२८)

लवण और अंकुश राम-लक्ष्मण के साथ अपने सम्बन्ध को जानते थे। इसलिए वे लोग सापेक्ष विचार रखकर शस्त्र-प्रहार कर रहे थे; किन्तु राम-लक्ष्मण इस सम्बन्ध को जानते नहीं थे। अतः निरंकुश होकर शस्त्र-प्रहार कर रहे थे। (श्लोक १२९)

विविध आयुधों द्वारा युद्ध करने के पश्चात् युद्ध को शीघ्र समाप्त करने की इच्छा से राम ने सारथी को रथ ठीक शत्रु के सम्मुख करने को कहा। कृतान्तवदन बोला, 'मैं क्या करूँ? मेरे रथ के अश्व क्लान्त हो गए हैं। शत्रु ने शराघात से इनकी देह बींध डाली है। मैं चाबुक मारता हूं; किन्तु ये अपनी गति तेज करते ही नहीं हैं। रथ भी जर्जर हो रहा है। इतना ही नहीं, मेरी भुजाएँ भी शराघात से जर्जर हो गई हैं। अतः घोड़े की लगाम और चाबुक पकड़ने की भी अब इनमें शक्ति नहीं है।'

(श्लोक १३०-१३२)

राम बोले, 'मेरा वज्रावर्त धनुष भी चित्रस्थ—चित्र में अङ्कित धनुष सा शिथिल हो गया है। अतः कोई काम नहीं कर रहा है और यह मूसलरत्न भी शत्रु का नाश करने में असमर्थ हो गया है। अब तो इसमें मात्र धान कूटने की योग्यता रह गई है। यह हल-रत्न जो कि दुष्ट राजा रूपी हस्तियों को वशीभूत करने के लिए अंकुश रूप था, वह भी मात्र धरती-कर्षण करने योग्य रह गया है। जिन अस्त्रों की रक्षा देव करते हैं, जो अस्त्र सर्वदा शत्रुओं को विनष्ट करते हैं उन्हीं अस्त्रों की आज यह कैसी दशा हो गई है?' (श्लोक १३३-१३७)

इधर लवण के साथ युद्ध करते-करते राम के अस्त्र जिस प्रकार कार्य नहीं कर रहे थे उसी प्रकार लक्ष्मण के अस्त्र भी कार्य नहीं कर रहे थे। (श्लोक १३८)

अंकुश ने लक्ष्मण के हृदय पर वज्र-सा प्रहार किया। उसके आघात से लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण को मूर्च्छित

देखकर विराध डर गया और रथ को रणभूमि से अयोध्या की ओर ले जाने लगा। राह में ही लक्ष्मण को होश आ गया। वे क्रुद्ध होकर बोले, 'तुमने यह सर्वथा नया कार्य कर डाला? राम के भाई और राजा दशरथ के पुत्र के लिए युद्धभूमि से चला जाना अनुचित है। अतः जहाँ शत्रु है वहीं मुझे शीघ्र ले चलो। मैं अभी चक्र से शत्रु का शिरश्च्छेद कर डालूँगा।' (श्लोक १३९-१४२)

लक्ष्मण का कथन सुनकर विराध रथ को पुनः युद्धभूमि में ले आया। 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए लक्ष्मण चक्र लेकर उसे घुमाने लगे। घूमता हुआ चक्र सूर्य का भ्रम उत्पन्न करने लगा। लक्ष्मण ने उसी अस्खलित गति से चक्र को घुमाकर क्रोधपूर्वक अंकुश पर फेंका। आगत चक्र को काटने के लिए अंकुश ने अनेक तीरों को छोड़ा; किन्तु वह चक्र काटा नहीं गया। पूरे वेग से वह चक्र आया और अंकुश को प्रदक्षिणा देकर उसी प्रकार लक्ष्मण के हाथों में लौट गया जिस प्रकार पक्षी नीड़ में लौट जाते हैं। लक्ष्मण ने द्वितीय बार चक्र निक्षेप किया; किन्तु दूसरी बार भी चक्र अंकुश को प्रदक्षिणा देकर गजशाला से भागा हाथी जिस प्रकार पुनः गजशाला में लौट जाता है उसी प्रकार लक्ष्मण के हाथों में लौट गया। (श्लोक १४३-१४६)

यह देखकर राम-लक्ष्मण खेदपूर्वक सोचने लगे—तब क्या ये दोनों कुमार ही भरतक्षेत्र के वासुदेव और बलदेव हैं, हम नहीं हैं? जब वे लोग इस प्रकार सोच रहे थे उसी समय सिद्धार्थ सहित नारद मुनि आए और खेद भरे राम और लक्ष्मण से बोले, 'हे राम! आनन्दित होने के बदले तुम खेद क्यों कर रहे हो? ये दोनों तुम्हारे पुत्र हैं। सीता के गर्भ से इनका जन्म हुआ है। इनका नाम लवण और अंकुश है। युद्ध के बहाने ये तुम्हें देखने आए हैं। ये तुम्हारे शत्रु नहीं हैं इसीलिए इन पर तुम्हारे चक्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। चक्र मित्र पर कार्यरत नहीं होता। अतीत में बाहुबली पर भी तो भरत द्वारा निक्षिप्त चक्र निष्फल हो गया था।' (श्लोक १४७-१५२)

तदुपरान्त नारदमुनि ने सीता-परित्याग से लेकर युद्ध पर्यन्त जगत्-विस्मयकारी घटनाओं का वर्णन किया उस वृत्तान्त को सुनकर आश्चर्य, लज्जा, आनन्द और शोक से व्याकुल होकर राम

मूच्छित हो गए। उन पर चन्दन जल के छींटे डाले गए जिससे ज्ञान लौट आने पर पुत्र वात्सल्य से अधीर राम अश्रुपूर्ण नेत्रों से लक्ष्मण को साथ लेकर लवण और अंकुश से मिलने गए। उन्हें आते देखकर विजयी लवण और अंकुश शस्त्रों का परित्याग कर रथ से नीचे उतरे और राम-लक्ष्मण के चरणों में गिर पड़े। राम ने उन्हें उठाकर छाती से लगाया। फिर गोद में बैठाकर मस्तक सूँघा। तदुपरान्त शोक और स्नेह से व्याकुल होकर उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगे। राम की गोद से लक्ष्मण ने उन्हें अपने गोद में बैठाकर छाती से लगा लिया और अश्रु-भरे नयनों से उनके मस्तक का आघ्राण किया। शत्रुघ्न को पिता तुल्य समझ कर उन लोगों ने उनके चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। शत्रुघ्न ने भी उन विनीत पुत्रों को आलिंगन में ले लिया। दोनों पक्षों के अन्यान्य राजागण एकत्र होकर इस अपूर्व मिलन के आनन्द को देखकर हर्षित हो गए। (श्लोक १५३-१६०)

पुत्रों का पराक्रम और पिता से उनका मिलन देखकर सीता हर्षित हो गई। वह वहाँ से विमान में बैठकर पुण्डरीकपुर चली गई। उन जैसे बलवान् पुत्रों को प्राप्त कर राम-लक्ष्मण बहुत आनन्दित हुए। समस्त भूचर और खेचर भी प्रसन्न हो उठे। भामण्डल ने वज्रजङ्घ का राम और लक्ष्मण से परिचय करवाया। वज्रजङ्घ ने चिरकाल के सेवक की तरह उन्हें प्रणाम किया। (श्लोक १६१-१६३)

राम वज्रजङ्घ से बोले, 'हे भद्र, आपने मेरे पुत्रों का लालन-पालन कर उन्हें बड़ा किया और उन्हें इस अवस्था में ले आए इसलिए आप मेरे लिए भामण्डल के समान हैं।' (श्लोक १६४)

तदुपरान्त राम-लक्ष्मण अपने पुत्रों के साथ पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या गए। विस्मय भरे लोग एड़ी के बल पर खड़े होकर गर्दन उठा-उठा कर लवण और अंकुश को देखने लगे और उनकी स्तुति करने लगे। राम अपने प्रासाद के निकट पहुंचे। रथ से उतर कर भीतर प्रविष्ट हुए। राम ने पुत्रों के आगमन में महा महोत्सव करवाया। (श्लोक १६५-१६७)

लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अङ्गद आदि सभी ने मिलकर राम से निवेदन किया—

'प्रभो, देवी सीता आपके विरह में व्याकुल विदेश में जीवन व्यतीत कर रही है। अब कुमारों का वियोग हो जाने से वे और अधिक दुःखी हो गई हैं। अतः आप यदि आदेश दें तो हम जाकर उन्हें यहाँ ले आएँ। यदि आप उन्हें नहीं बुलाएँगे तो पति-पुत्र विहीना वे मृत्यु को प्राप्त हो जाएँगी।' (श्लोक १६८-१७०)

राम कुछ सोचकर बोले, 'सीता को यहाँ कैसे बुलाया जा सकता है। लोकोपवाद मिथ्या होने पर भी बहुत बड़ा अन्तराय है। मैं जानता हूं सीता सती है। वह भी अपनी आत्मा को पवित्र समझती है। यदि वह सब लोगों के सामने सतीत्व प्रमाणित करे तो मैं उस शुद्ध सती को ग्रहण कर सकता हूं।' (श्लोक १७१-१७३)

'ऐसा ही होगा' कहकर वे वहाँ से चले गए। फिर उन्होंने नगर के बाहर एक विशाल मण्डप का निर्माण करवाया जिसमें पंक्तिबद्ध बैठने की व्यवस्था थी। उसी में सामने राजा, मन्त्री,

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

नगरवासी, राम-लक्ष्मण और विभीषण, सुग्रीव आदि खेचर आकर बैठ गए। तब राम ने सीता को लाने का आदेश दिया। सुग्रीव विमान में बैठकर पुण्डरीकपुर पहुंचे। वे सीता को नमस्कार कर बोले, 'हे देवी, राम ने आपके लिए पुष्पक विमान भेजा है। अतः इस पर चढ़कर आप अयोध्या चलें?' (श्लोक १७४-१७७)

सीता बोली, 'राम ने मुझे अरण्य में भेज दिया था। उस दुःख की ज्वाला आज भी शान्त नहीं हुई है। अतः द्वितीय दुःख देने के लिए बुलाने वाले राम के पास मैं कैसे जाऊँ?' (श्लोक १७८)

सुग्रीव ने पुनः नमस्कार कर कहा, 'हे देवी, क्रुद्ध न हों, राम ने आपकी शुद्धि का निश्चय किया है। मण्डप तैयार हो गया है। वे अन्यान्य राजा और पुरवासियों के साथ वहाँ बैठे हैं।' (श्लोक १७९)

सीता ने तो शुद्धता की परिचायक परीक्षा पूर्व ही देनी चाही थी। अतः सुग्रीव की यह बात सुनकर वे विमान पर चढ़ गईं। सुग्रीव सहित वे अयोध्या के निकट महेन्द्र उद्यान में उतरीं। वहाँ लक्ष्मण और अन्यान्य राजाओं ने अर्घ्य प्रदान कर उन्हें नमस्कार किया फिर लक्ष्मण और अन्य राजागण उनके सामने बैठकर बोले—'हे देवी, आप नगर और गृह में प्रवेश कर उन्हें पवित्र करें।' (श्लोक १८०-१८२)

सीता बोली, 'हे वत्स, शुद्धि प्राप्त करने के पश्चात् ही मैं नगर में प्रवेश कर सकूँगी क्योंकि ऐसा नहीं होने पर निन्दा कभी शान्त नहीं होगी।' (श्लोक १८३)

सीता का यह दृढ़ निश्चय उन्होंने राम को जाकर सुनाया। राम वहाँ आए और सीता से न्यायनिष्ठुर वचन बोले, 'यदि तुम रावण के वहाँ पवित्र रही, रावण ने तुम्हें अपवित्र नहीं किया तो अपनी शुद्धता के लिए सबके सम्मुख दिव्य करो।'

(श्लोक १८४-१८५)

सीता मृदु हँसती हुई बोली, 'आप जैसा विचक्षण और कौन है जो दोषी है कि नहीं यह जाने बिना ही अभियुक्त को परित्याग कर वन में भेज दिया। यह भी आपकी विचक्षणता है जो दण्ड देकर आप उसकी परीक्षा लेना चाह रहे हैं। खैर, तो भी मैं उसके लिए प्रस्तुत हूं।' (श्लोक १८६-१८७)

सीता की बात सुनकर राम म्लान मुख से बोले, 'हे भद्रे, मैं जानता हूं तुम सर्वथा निर्दोष हो। फिर भी लोगों के मन में जो द्वेषभाव, उत्पन्न हुआ है उसके निराकरण की आवश्यकता है।'

(श्लोक १८८)

सीता बोली, 'मैं पाँचों प्रकार से दिव्य करने को प्रस्तुत हूं। कहें तो अग्नि में प्रवेश करूँ, कहें तो अभिमन्त्रित तन्दुल भक्षण करूँ, कहें तो कच्चे धागे से बँधी तराजू में बैठ जाऊँ, कहें तो पिघलाया हुआ सीसा पान करूँ या जीभ से शस्त्र की धार की ओर से उठाऊँ।' (श्लोक १८९-१९०)

उसी समय अन्तरिक्ष स्थित नारद और सिद्धार्थ और भूमिस्थ लोक समूह कोलाहल कर बोल उठे—'हे राघव, सीता वास्तव में सती, सती, महासती है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह करना उचित नहीं है।' (श्लोक १९१-१९२)

राम लोगों के मुख से यह बात सुनकर उन्हें सम्बोधित करते हुए बोले, 'आप लोग सर्वथा मर्यादाविहीन हैं। मेरे हृदय में सदेह आप लोगों के कारण ही उत्पन्न हुआ। पहले आप लोग ही सीता को दूषित बतला रहे थे और आज उसे सती बतला रहे हैं। हो सकता है यहाँ से जाने के बाद आप लोग अन्य कुछ बोलना प्रारम्भ कर देंगे। बोलिए, पहले सीता किस प्रकार दूषित थी और आज

वह किस प्रकार शीलवती हो गई? आप लोग आगे फिर उसे दूषित कह सकेंगे। इसीलिए मेरी इच्छा है सीता सबकी प्रतीति के लिए अग्नि-दिव्य कर अग्नि में प्रवेश करे।' (श्लोक १९३-१९५)

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तदुपरान्त राम ने तीन सौ हाथ दीर्घ, तीन सौ हाथ प्रस्थ दो पुरुष प्रमाण गम्भीर गर्त खुदवाया और उसे चन्दन काष्ठ से भर दिया। (श्लोक १९६)

वैताढ्य गिरि की उत्तर श्रेणी पर हरिविक्रम राजा का जयभूषण नामक पुत्र था। उसके ८०० विवाहित स्त्रियाँ थीं। एक बार उसने अपनी किरणमण्डला नामक पत्नी को हिमशिख नामक उसके मामा के साथ एक शय्या पर सोते हुए देखा। इससे क्रुद्ध होकर उसने किरणमण्डला को घर से निकाल दिया; किन्तु उसके पश्चात् ही उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतः उसने दीक्षा ले ली। किरणमण्डला मरकर विद्युतद्रंष्टा नामक राक्षसी के रूप में उत्पन्न हुई। जयभूषण सीता के दिव्य होने के पहले दिन रात्रि में अयोध्या के बाहर कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित था। विद्युत-द्रंष्टा वहाँ आकर उपसर्ग करने लगी; किन्तु अविचल रहे। शुभ ध्यान के कारण सीता के दिव्य होने के दिन उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए इन्द्रादि देव वहाँ आए। उसी समय सीता शुद्धि प्रमाणित करने के लिए अग्नि प्रवेश कर रही थी। देवों ने जब यह देखा तो इन्द्र से निवेदन किया 'हे प्रभु, लोगों की मिथ्या निन्दा के कारण सीता आज अग्नि प्रवेश कर रही है। यह सुनकर इन्द्र ने स्वपदातिक सैन्य के सेनापति को सीता की सहायता के लिए प्रेरित किया और स्वयं जयभूषण मुनि के केवलज्ञान महोत्सव में योग देने के लिए चले गए।

(श्लोक १९७-२०३)

उधर राम की आज्ञा से चन्दन काष्ठ पूरित उस गर्त में सेवकों ने अग्नि प्रज्वलित कर दी। अग्नि ने भयंकर रूप धारण कर लिया। उस लपलपाती हुई अग्नि की ओर तो देखना भी असम्भव हो गया था। अग्नि की उस विकट ज्वाला को देखकर राम सोचने लगे—ओफ, यह बड़ा विषम कार्य हो गया। महासती सीता तो अभी निःशंक होकर इस अग्नि में कूद पड़ेगी। प्रायः देव और दिव्यों की गति विषम होती है। सीता मेरे साथ वन गई,

रावण ने उसका हरण किया। तदुपरान्त मैंने उसका त्याग कर वन में भेज दिया। अन्ततः अब अग्नि-प्रवेश का कष्ट उपस्थित हुआ है। यह सब कुछ मैंने ही किया। मेरे द्वारा ही हुआ।

(श्लोक २०४-२०७)

राम जब इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे उसी समय सीता उस प्रज्वलित अग्नि के निकट गई और सर्वज्ञ देवों को स्मरण कर बोल उठी, 'हे लोकपाल, हे जल समूह! सुनो—यदि आज तक मैंने राम के सिवाय किसी पुरुष की इच्छा की हो तो यह अग्नि मुझे दग्ध कर डाले और यदि नहीं की है तो इसका स्पर्श जल की तरह शीतल हो जाए।' (श्लोक २०८-२११)

तत्पश्चात् नमस्कार महामन्त्र का जाप करते हुए सीता उस अग्नि-कुण्ड में कूद पड़ी। उसके कूदते ही गर्त की अग्नि निर्वापित हो गई। उस गर्त में स्वच्छ जल भर गया और उसने एक सरोवर का रूप धारण कर लिया। देवों ने सीता के सतीत्व से सन्तुष्ट होकर उस जल में कमल पर सिंहासन स्थापित किया। सीता जाकर उस सिंहासन पर बैठ गई। उस सरोवर का जल समुद्र-तरंगों की भाँति तरंगायित होने लगा। जल में से कहीं हुंकार ध्वनि, कहीं गुल-गुल शब्द, कहीं भेरीघोष, कहीं कल-कल तो कहीं खल-खल शब्द निकलने लगा। (श्लोक २१२-२१४)

तदुपरान्त ज्वार के समय समुद्र जिस प्रकार स्फीत हो जाता है उसी प्रकार वह जल स्फीत हो गया। वह जल उस गर्त से निकल कर बड़े-बड़े मञ्चों को आच्छादित कर प्रवाहित होने लगा। विद्याधरगण भयभीत होकर आकाश में उड़ गए; किन्तु भूचर मनुष्य आर्तस्वर में बोलने लगे, 'हे महासती सीता! हे देव! हमें बचाओ, हमारी रक्षा करो।' (श्लोक २१५-२१६)

सीता ने उस स्फीत जल को दोनों हाथों से दबा दिया। जल पूर्ववत् हो गया। उस सरोवर की शोभा अत्यन्त मनोहारी हो गई थी। उसमें उत्पन्न कुमुद, पुण्डरीक जाति के कमल प्रस्फुटित हो गए। कमल गन्ध से आकृष्ट होकर उन्मत्त भ्रमर गुन-गुन करने लगे। सरोवर के चारों ओर मणिमय पाषाणों से बँधा घाट परिदृष्ट होने लगा। निर्मल जल की तरंगें आ-आकर किनारों से टकराने लगीं। (श्लोक २१७-२१९)

सीता के शील की प्रशंसा करते हुए नारदादि आकाश में नृत्य करने लगे। सन्तुष्ट हुए देव सीता पर पुष्प-वर्षा करने लगे। 'अहो ! राम-पत्नी सीता कितनी यशस्वी है'—इस ध्वनि से आकाश और पृथ्वी गुञ्जायमान हो गए। अपनी माँ का प्रभाव देखकर लवण और अंकुश अत्यन्त आनन्दित हो गए और हंस की तरह तैरते हुए उसके पास पहुंच गए। सीता ने उनके मस्तक को सूंघ कर अपने पास दोनों ओर बैठाया। वे दोनों कुमार नदी के दोनों तटों पर अवस्थित हो हस्ती-शावक से सुशोभित होने लगे।

(श्लोक २२०-२२३)

उसी समय लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भामण्डल, विभीषण, सुग्रीवादि वीरों ने भक्तिभाव से सीता को प्रणाम किया। तदुपरान्त अति मनोहर कान्तियुक्त राम भी सीता के पास आए। उनका हृदय लज्जा और पश्चात्ताप से भर उठा था। वे करबद्ध होकर बोले—'हे देवि ! स्वभाव से ही पर-दोष देखने वाले नगरवासियों के कहने से मैंने तुम्हारा परित्याग किया, इसके लिए मुझे क्षमा करो। भयंकर हिंसक पशुओं के वन में भी तुम स्वप्रभाव से जीवित थी। वह एक प्रकार से तुम्हारा दिव्य ही था; किन्तु मैं वह समझ नहीं सका। जो कुछ भी हो, अब तुम मुझे मेरे पूर्व कृत्यों के लिए क्षमा करो। इस पुष्पक विमान में बैठकर घर चलो और पूर्व की तरह ही मुझे आनन्दित करो।' (श्लोक २२४-२२८)

सीता बोली, 'इसमें आपका या अयोध्यावासियों का क्या दोष? दोष तो मेरे पूर्व कर्मों का है। अतः दुःख के आवर्त में डालने वाले कर्मों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए, उन्हें नष्ट करने के लिए मैं अब दीक्षा ग्रहण करूँगी।' (श्लोक २२९-२३०)

ऐसा कहकर सीता ने अपने हाथों से केश-उत्पाटन कर जिस प्रकार तीर्थंकर अपने केशों को इन्द्र के हाथों में दे देते हैं उसी प्रकार राम के हाथों में दे दिया। यह देखकर राम मूर्च्छित हो गए। राम की मूर्च्छा टूटने के पूर्व ही सीता जयभूषण मुनि के निकट चली गई। जयभूषण मुनि ने सीता को तत्काल विधिपूर्वक दीक्षा दे दी। फिर तप-परायणा साध्वी सीता को सुप्रभा नामक गणिनी के हाथों में सौंप दिया। (श्लोक २३१-२३३)

नवम सर्ग समाप्त

दशम सर्ग

चन्दन जल के छींटे डालकर राम को होश में लाया गया। कुछ स्वस्थ होते ही राम बोल उठे, 'मनस्विनी सीता कहाँ है? हे भूचरगण, हे खेचरगण! यदि तुम लोग जीवित रहना चाहते हो तो मुझे बताओ मेरी सीता कहाँ है? हे वत्स लक्ष्मण, मुझे तुरन्त धनुष-बाण दो। मैं इतना दुःखी हो रहा हूं और ये सब इतने स्वस्थ और उदासीन क्यों?' (श्लोक १-३)

ऐसा कहकर राम धनुष-बाण उठाने लगे। लक्ष्मण बोले, 'हे आर्य! आप यह क्या कर रहे हैं? ये तो सब आपके सेवक हैं। न्याय के लिए निन्दा के भय से आपने जिस प्रकार सीता का परित्याग किया था उसी प्रकार स्वार्थ के लिए, आत्महित के लिए सीता ने हम सबका परित्याग कर दिया। आपकी प्रिय सीता ने आपके सम्मुख ही केशोत्पाटन कर जयभूषण मुनि के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली है। इन महर्षि को इस समय केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। उनके ज्ञान-प्राप्ति के उपलक्ष में केवलज्ञान-महोत्सव करना हमारा कर्त्तव्य है। हे प्रभो! महाव्रतधारिणी सीता भी वहीं है। वे अब निर्दोष शुद्ध सती मार्ग की भाँति मोक्ष-मार्ग का निर्देश ले रही हैं।' (श्लोक ४-८)

लक्ष्मण की बात सुनकर राम स्थिर हुए और बोले, 'प्रिय सीता ने केवली भगवन्त से दीक्षा ग्रहण कर ली है, यह बहुत अच्छा हुआ।' (श्लोक ९)

तदुपरान्त राम जयभूषण मुनि के पास गए और उन्हें वन्दन कर उनके सम्मुख बैठ गए। उनकी देशना सुनी। देशना की समाप्ति पर बोले, 'मैं आत्मा को नहीं जानता। अतः दया कर बताइए कि मैं भव्य हूं या अभव्य?' केवली भगवान् ने उत्तर दिया, 'हे राम! तुम केवल भव्य ही नहीं, तुम इस जीवन में मोक्ष भी प्राप्त करोगे।' राम ने पुनः पूछा, 'हे भगवन्, मोक्ष तो दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ही मिलती है और सब कुछ परित्याग करने के पश्चात् ही ली जाती है। किन्तु, भाई लक्ष्मण का परित्याग मेरे लिए सम्भव नहीं है। अतः मोक्ष किस प्रकार पाऊँगा?' केवली बोले, 'अभी तक तुम्हारा समय वैभव भोग करने का था। उस भोग के पूर्ण होने पर तुम निःसंग वैरागी होकर दीक्षा लोगे और

मोक्ष को जाओगे। शिव-सुख प्राप्त करोगे।' (श्लोक १०-१४)

विभीषण ने मुनि को नमस्कार कर कहा, 'हे प्रभु, रावण ने पूर्व जन्म के किन कर्मों के कारण सीता का हरण किया? किस कर्म के कारण लक्ष्मण ने उनका वध किया एवं सुग्रीव, भामण्डल, लवण, अंकुश और मैं किस कर्म के कारण राम के इतने स्नेहशील हैं?' (श्लोक १५-१६)

मुनि बोले, 'दक्षिण भरतार्द्ध में क्षेमपुर नामक एक नगर था। उस नगर में नयदत्त नामक एक वणिक रहता था। उसकी पत्नी सुनन्दा के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम था धनदत्त, दूसरे का नाव था वसुदत्त। उन दोनों की याज्ञवल्क्य नामक एक ब्राह्मण से मित्रता हो गई। उसी नगर में सागरदत्त नामक एक अन्य वणिक रहता था। उसकी दो सन्तानें थीं—गुणधर नामक एक पुत्र और गुणवती नामक एक कन्या। सागरदत्त ने नयदत्त के गुणवान् पुत्र धनदत्त के साथ अपनी कन्या का विवाह करने का वचन दिया। कन्या की माँ रत्नप्रभा ने धन के लोभ में श्रीकान्त नामक एक अन्य धनाढ्य व्यक्ति के साथ गुप्त रीति से कन्या का सम्बन्ध तय कर लिया। याज्ञवल्क्य को जब यह ज्ञात हुआ तो वह अपने मित्र के इस प्रकार के वचन सहन करने में असमर्थ होकर उसे जाकर सब कुछ बता दिया। यह सुनकर वसुदत्त श्रीकान्त को मारने के लिए दौड़ा। दोनों ही एक-दूसरे की तलवार से घायल होकर मृत्यु को प्राप्त हो गए। मृत्यु के पश्चात् दोनों ने ही विन्ध्य अटवी में मृग रूप में जन्म ग्रहण किया। गुणवती भी कुमारी अवस्था में ही मृत्यु प्राप्त कर विन्ध्य अटवी में ही मृगी रूप में उत्पन्न हुई। वहाँ भी इन दोनों ने इस मृगी के लिए लड़कर प्राण गँवाए। इस भाँति परस्पर बैर के कारण दोनों भव अटवी में भटकने लगे।' (श्लोक १७-२५)

'धनदत्त अपने भाई की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी होकर उद्भ्रान्त-सा इधर-उधर घूमने लगा। एक रात क्षुधातुर धनदत्त ने कुछ साधुओं को देखकर खाने को माँगा। प्रत्युत्तर में एक साधु ने कहा, 'हे भाई! मुनिगण दिन में अन्न-संग्रह कर नहीं रखते तो रात में उनके पास अन्न कहाँ से आएगा? हे भद्र, तुम लोगों को भी रात को खाना उचित नहीं है। कारण, ऐसे अन्धकार में अन्नादि

में रहा जीव दिखलाई नहीं पड़ता।' (श्लोक २६-२८)

'मुनि के उपदेश उसे हृदय को अमृत से सींचने की भाँति सुखकारी लगे। वह श्रावक बन गया। आयु पूर्ण होने पर मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म देवलोक में देव रूप में जन्म ग्रहण किया। वहाँ से च्युत होकर वह महापुर नगर के मेरुश्रेष्ठी के घर उसकी पत्नी धारणी के गर्भ से पद्मरुचि नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। वह पूर्ण श्रावक बन गया। एक बार पद्मरुचि घोड़े पर चढ़कर गोकुल जा रहा था। दैव योग से उसने राह में एक मरणासन्न वृद्ध बैल को पड़े हुए देखा। दयालु पद्मरुचि अश्व से उतरकर उसके पास गया और उसे नमस्कार-मन्त्र सुनाया। नमस्कार-मन्त्र के प्रभाव से वह बैल मरकर उस नगर के राजा छत्रछाया के घर श्रीदत्ता रानी के गर्भ से पुत्र रूप में पैदा हुआ। उसका नाम रखा गया वृषभध्वज। एक बार वृषभध्वज घूमते हुए उसी वृद्ध बैल के मृत्यु-स्थान पर पहुंच गया। पूर्वजन्म का मृत्यु-स्थान देखकर उसे जाति स्मरण-ज्ञान उत्पन्न हो गया। अतः उसने वहाँ एक चैत्य का निर्माण करवाया। चैत्य की एक ओर की दीवार पर उसने एक चित्र अङ्कित करवाया। जिसका विषय था—एक वृद्ध मरणासन्न बैल को एक व्यक्ति नमस्कार-मन्त्र सुना रहा है और उसके पास एक जीन कसा हुआ अश्व खड़ा है। तदुपरान्त उसने चैत्य के रक्षक को यह निर्देश दिया कि 'जो व्यक्ति इस चित्र के गूढ़ अर्थ को समझ सके उसकी खबर मुझे तुरन्त देना।' ऐसा कहकर कुमार अपने प्रासाद को लौट गया। (श्लोक २९-३७)

'एक बार पद्मरुचि श्रेष्ठी वन्दना करने उसमें आए और अर्हत् वन्दना कर दीवाल पर अङ्कित चित्र को देखा। वह देखकर विस्मित बने वे बोल उठे, 'इस चित्र में अङ्कित विषय तो मेरे जीवन का है।' रक्षकों ने तत्क्षण जाकर राजकुमार वृषभध्वज को यह सूचना दी। राजकुमार तुरन्त मन्दिर आए और श्रेष्ठी से पूछा—'आप चित्र में अङ्कित विषय के सम्बन्ध में क्या जानते हैं?' श्रेष्ठी बोले, 'मुझे मरणासन्न बैल को नमस्कार मन्त्र सुनाते देखकर किसी ने यह चित्र अङ्कित कर दिया है।' सुनकर श्रेष्ठी को राजकुमार ने नमस्कार किया और कहा, 'हे भद्र, वह वृद्ध बैल मैं ही हूं। नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से अब मैं राजकुमार बना हूं।

आप यदि मुझे उस समय नमस्कार मन्त्र नहीं सुनाते तो मैं मरकर तिर्यंच योनि या अन्य किसी नीच योनि में उत्पन्न होता। इसलिए आप मेरे प्रभु, गुरु, देव सब कुछ हैं। अत: आपका दिया हुआ यह राज्य ग्रहण करिए।' तत्पश्चात् वृषभध्वज और पद्मरुचि एक साथ रहने लगे। वृषभध्वज पूर्णत: श्रावक धर्म का पालन करने लगा। वे दोनों बहुत दिनों तक श्रावक धर्म का पालन कर मृत्यु के पश्चात् ईशान देवलोक में परम महर्द्धिक देव रूप में उत्पन्न हुए। पद्मरुचि वहाँ से च्युत होकर मेरु पर्वत का जो वैताढ्य गिरि है वहाँ के नन्दावर्त नामक नगर में नन्दीश्वर नामक राजा के घर में कनकाभा नामक रानी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम नयनानन्द रखा गया। वहाँ राज्य सुख भोगकर उसने दीक्षा ली और मृत्यु के पश्चात् महेन्द्र नामक चतुर्थ देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्यवकर पूर्व विदेह की क्षेमपुरी के राजा विपुल-वाहन की रानी पद्मावती के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम श्रीचन्द रखा गया। वहाँ भी राज्य भोग के पश्चात् समाधिगुप्त मुनि से दीक्षा ग्रहण कर तपस्या करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ। मृत्यु के पश्चात् वह ब्रह्म नामक पंचम देवलोक में इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर वही अब महा-बलवान् रामभद्र रूप में तुम हुए हो। वृषभध्वज का जीव अनुक्रम से सुग्रीव हुआ है। (श्लोक ३८-५१)

'श्रीकान्त का जीव भव-भ्रमण कर मृणालकन्द नगर में शम्भुराज की रानी हेमवती के गर्भ से वज्रकण्ठ नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। वसुदत्त भी भव-भ्रमण करता हुआ शम्भुराज के पुरोहित विजय की पत्नी रत्नचूड़ा के गर्भ से श्रीभूति नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। गुणवती भव-भ्रमण कर भवभूति की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुई। उसका नाम रखा गया वेगवती। क्रमश: बड़ी होने पर उसने यौवन प्राप्त किया। एक दिन प्रतिमाधारी मुनि को वन्दना करने जाते हुए लोगों को देखकर वह हँसते हुए बोली, 'मैंने इन्हें कुछ समय पहले स्त्री-सम्भोग करते हुए देखा है। अभी उस स्त्री को इन्होंने कहीं छुपा रखा है। अत: तुम लोग इन्हें क्यों वन्दना कर रहे हो?' वेगवती के कथन से लोगों का मनभाव बदल गया। उन्हें कलङ्की कहकर लोग उन पर उपसर्ग करने लगे।

तब मुनि ने यह अभिग्रह लिया जब तक उनका कलङ्क दूर नहीं होगा वे कायोत्सर्ग में रहेंगे। मुनि पर लगाए गए मिथ्या दोषारोपण से शासन देव कुपित हो उठे। उन्होंने वेगवती के मुँह में रोग उत्पन्न कर दिया। उसके पिता ने जब उसका कुकृत्य सुना तो उसे तिरस्कृत कर दिया। पिता के रोष और रोग के भय से वेगवती मुनि के निकट गई और समस्त लोगों के सम्मुख उच्च स्वर से बोली, 'हे प्रभु, आप सर्वथा निर्दोष हैं। मैंने आप पर मिथ्या दोषारोपण किया था। अतः हे क्षमा-निधि, आप मेरा अपराध क्षमा करें।' उसकी यह बात सुनकर लोग पुनः मुनि को वन्दन करने लगे। वेगवती भी उसी समय से श्रद्धालु श्राविका बन गई। उसका रूप देखकर शम्भु राजा ने उससे विवाह करना चाहा। श्रीभूति बोला, 'मैं मिथ्या दृष्टि को अपनी कन्या नहीं दूँगा।' यह सुनकर शम्भु राजा ने श्रीभूति को मार डाला और बलपूर्वक वेगवती से सम्भोग किया। उसी समय वेगवती ने उसे शाप दिया कि जन्मान्तर में मैं तेरी मृत्यु का कारण बनूँगी। (श्लोक ५२-६४)

'शम्भु राजा ने वेगवती का परित्याग कर दिया। तब उसने हरिकान्ता नामक साध्वी के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। मृत्यु के पश्चात् वह ब्रह्म देवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ से च्युत होकर जनक राजा की कन्या जानकी बनी। पूर्व जन्म में उसने सुदर्शन मुनि पर झूठा कलङ्क लगाया था इसीलिए इस जन्म में लोगों ने उस पर मिथ्या कलङ्क लगाया। (श्लोक ६५-६७)

'शम्भु राजा का जीव भव-भ्रमण करता हुआ कुशध्वज नामक ब्राह्मण की पत्नी सावित्री के गर्भ से प्रभास नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। कुछ दिनों पश्चात् उसने विजयसेन मुनि से दीक्षा ग्रहण की। दुर्द्धर तप कर वह अनेक प्रकार के परिषहों को सहन करने लगा। प्रभास मुनि ने एक बार विद्याधर राजा कनकप्रभ को इन्द्र जैसी समृद्धि के साथ सम्मेत शिखर की यात्रा करते हुए देखा। मुनि ने उसी समय निदान कर लिया कि मैं अपनी तपस्या के फलस्वरूप पर जन्म में विद्याधर-सा समृद्धि सम्पन्न बनूँ। मृत्यु के पश्चात् वे तृतीय देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होने पर वे ही हे विभीषण, तुम्हारे अग्रज रावण बने। कनकप्रभ की सम्पत्ति देखकर जो निदान किया था उसी के फलस्वरूप वे समस्त

खेचरों के अधिपति बने ।' (श्लोक ६८-७२)

'धनदत्त और वसुदत्त के मित्र याज्ञवल्क्य ब्राह्मण का जीव भव-भ्रमण कर तुम विभीषण हुए। शम्भु को मारने के पश्चात् श्रीभूति का जीव स्वर्ग जाता है। वहाँ से च्यूत होकर सुप्रतिष्ठपुर में पुनर्वसु नामक विद्याधर बनता है। एक बार कामातुर होकर उसने पुण्डरीक विजय से त्रिभुवनानन्द नामक चक्रवर्ती की कन्या अनङ्गसुन्दरी का हरण कर लिया। चक्रवर्ती ने विद्याधरों को उसके पीछे भेजा। युद्ध में पुनर्वसु विवृत हो उठा और अनङ्गसुन्दरी उसके विमान से एक लतागृह में जा पड़ी। पुनर्वसु ने उसे पाने का निदान कर दीक्षा ग्रहण कर ली। वहाँ से मृत्यु प्राप्त कर वह देवलोक में जाता है। वहाँ से च्युत होने पर उसका जीव लक्ष्मण रूप में उत्पन्न हुआ।' (श्लोक ७३-७७)

'अनङ्गसुन्दरी वन में रहकर उग्र तपस्या करती है। अन्तत: अनशन ले लेती है। अनशन काल में एक अजगर उसे निगल जाता है। समाधि मरण प्राप्त कर वह देवलोक में देवी बनती है। वहाँ से च्यव कर वही विशल्या नामक लक्ष्मण की पत्नी बनती है।' (श्लोक ७८-७९)

'गुणधर नामक गुणवती का भाई भव-भ्रमण कर कुण्डल-मण्डित नामक राजपुत्र बनता है। उस जन्म में वह चिरकाल तक श्रावक-धर्म पालन कर मृत्यु के पश्चात् सीता का सहोदर भाई भामण्डल बनता है।' (श्लोक ८०-८१)

'काकन्दी नामक नगरी में वामदेव ब्राह्मण की पत्नी श्यामला के वसुनन्द और सुनन्द नामक दो पुत्र हुए। एक दिन वे दोनों अपने घर में बैठे हुए थे। उसी समय एक मास का उपवास किए एक मुनि वहाँ आए। उन्होंने भक्तिभाव से उन्हें आहार दिया। इस दान के प्रभाव से मृत्यु के पश्चात् वे उत्तर कुरु में युगलिक रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होकर काकन्दी नगरी में वे वामदेव राजा की रानी सुदर्शना के गर्भ से प्रियङ्कर व शुभङ्कर नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। दीर्घकाल तक वहाँ राज्य करने के पश्चात् उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और मृत्यु के पश्चात् ग्रैवेयक देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यव कर वे लवण और अंकुश बने हैं। इनकी पूर्वजन्म की माँ सुदर्शना दीर्घकाल तक भव-भ्रमण कर सिद्धार्थ

बना है। जिसने इन्हें शिक्षा-दान दिया है।' (श्लोक ८२-८७)

इस प्रकार जयभूषण मुनि से पूर्वजन्म की कथा सुनकर अनेक के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। राम के सेनापति कृतान्त ने तत्काल दीक्षा ग्रहण कर ली। राम-लक्ष्मण जय मुनि को वन्दना कर सीता के पास गए। सीता को देखकर राम चिन्तित होकर सोचने लगे, शिरीष कुसुम-सी कोमल सीता शीत और ग्रीष्म का दुःख कैसे सहन करेगी? यह कोमलाङ्गी समस्त भारों से अधिक और हृदय से अधिक दुर्वह, संयम भार को किस प्रकार सहन करेगी? फिर सोचने लगे जिसके सतीत्व को रावण भी भङ्ग नहीं कर सका वह सती संयम में भी अपनी प्रतिष्ठा का निर्वाह अवश्य करेगी। तदुपरान्त राम ने सीता को वन्दना की, शुद्ध हृदयी लक्ष्मण एवं अन्यान्य राजाओं ने भी उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् राम स्व-परिजनों सहित अयोध्या लौट गए। (श्लोक ८८-९४)

सीता और कृतान्तवदन ने उग्र तपस्या करना प्रारम्भ किया। कृतान्तवदन तपस्या करते हुए मृत्यु प्राप्त कर ब्रह्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए। सीता ने साठ वर्ष तक विभिन्न प्रकार की तपस्याएँ कर तैंतीस दिन और रात्रि अनशन में रहकर मृत्यु प्राप्त की। मृत्यु के पश्चात् अच्युतेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुई। उनका आयुष्य बाईस सागरोपम का था। (श्लोक ९४-९६)

वैताढ्य पर्वत पर कांचनपुर नामक एक नगर है। वहाँ विद्याधर राजा कनकरथ राज्य करते थे। उनके मन्दाकिनी और चन्द्रमुखी नामक दो कन्याएँ थीं। उन्होंने उनके स्वयंवर का आयोजन किया उसमें पुत्रों सहित राम-लक्ष्मणादि बड़े-बड़े राजाओं को आमन्त्रित किया। सभी स्वयंवर-मण्डप में एकत्र हुए। मन्दाकिनी ने अनङ्ग लवण को और चन्द्रमुखी ने मदनांकुश को स्वेच्छा से वरण किया। यह देखकर लक्ष्मण के २५० पुत्र क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए तत्पर हो गए। यह सुनकर लवणांकुश बोले, 'उनके साथ युद्ध कौन करेगा? हम नहीं करेंगे। कारण वे हमारे भाई हैं इसलिए अवध्य हैं। जिस प्रकार राम-लक्ष्मण में छोटे-बड़े का कोई पार्थक्य नहीं है, उसी प्रकार हम लोगों में भी पार्थक्य रहना उचित नहीं है। गुप्तचरों ने लक्ष्मण के पुत्रों से जाकर यह बात कही। लक्ष्मण के पुत्रों ने यह सुनकर अकृत्य विचार के लिए

स्वयं की निन्दा की और वैराग्य प्राप्त कर माता-पिता की आज्ञा लेकर महाबल मुनि से दीक्षित हो गए। अनङ्गलवण और मदनांकुश दोनों कन्याओं से विवाह कर बलभद्र और वासुदेव के साथ अयोध्या लौट आए। (श्लोक ९७-१०५)

एक दिन राजा भामण्डल अपनी नगरी के राज-प्रासाद की छत पर बैठे थे। बैठे-बैठे उन शुद्ध बुद्धि वाले के मन में यह विचार आया वैताढ्य की उभय श्रेणियों पर मेरा अधिकार है। अस्खलित गति से क्रीड़ा करता हुआ मैं सर्वत्र विहार कर सांसारिक सुख भोग करता हूं। अब दीक्षा ग्रहण कर पूर्ण वांछित बनूं। ऐसा विचार करते समय आकाश से उनके मस्तक पर बिजली गिरी। फलतः वे उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गए और देवकुरु में जाकर युगलिक रूप में उत्पन्न हुए। (श्लोक १०६-१०८)

एक बार हनुमान शाश्वत चैत्यों की वन्दना करने मेरु पर्वत पर गए। वहां उन्होंने सूर्य को अस्त होते देखा। यह देखकर वे सोचने लगे, अहो इस संसार में उदय और अस्त सभी का होता है। सूर्य का दृष्टान्त इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस नाशवान जगत् को धिक्कार है। ऐसा सोचते हुए हनुमान स्व नगर को लौट गए। वहां जाकर उन्होंने स्व-पुत्र को राज्य देकर धर्मरत्न आचार्य से दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके साथ अन्य साढ़े सात सौ राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की। उनकी पत्नियों ने भी लक्ष्मीवती आर्या से दीक्षा ले ली। अन्ततः हनुमान मुनि ने ध्यान रूपी अग्नि में समस्त कर्मों को दग्ध कर शैलेशी अवस्था में मोक्षगमन किया।

(श्लोक १०९-११३)

हनुमान की दीक्षा लेने की बात राम ने सुनी। वे सोचने लगे—भोग सुखों का त्याग कर हनुमान ने कष्टदायक दीक्षा किस प्रकार ग्रहण कर ली? सौधर्मेन्द्र राम के इन विचारों को अवधि ज्ञान से जानकर स्व-सभा में बोले, 'ओह! कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। राम-से चरम शरीरी मनुष्य भी इस समय धर्म पर अविश्वास कर रहे हैं; किन्तु इसका कारण है राम और लक्ष्मण का प्रगाढ़ प्रेम। राम के हृदय में लक्ष्मण के प्रति जो स्नेह है वह उनमें वैराग्य वृत्ति को उत्पन्न नहीं होने देता।

(श्लोक ११४-११७)

इन्द्र की बात सुनकर सुधर्मा देवसभा में दो देव कौतुकवश राम-लक्ष्मण के प्रेम की परीक्षा लेने अयोध्या गए। वे लक्ष्मण के प्रासाद में गए। वहाँ उन्होंने लक्ष्मण को माया द्वारा समस्त अन्त:पुर की स्त्रियों को क्रन्दन करते हुए दिखाया—वे विलाप कर रही थीं 'हे पद्म, हे पद्मलोचन, कुटुम्ब के लिए सूर्यरूपी हे बलभद्र, जगत् के लिए भयङ्कर तुम्हारी अकाल मृत्यु कैसे हो गई?' उनके केश अस्त-व्यस्त हो गए थे। वे छाती पीट-पीट कर रो रही थीं। उनकी यह अवस्था देखकर लक्ष्मण अत्यन्त दु:खित हो गए। वे बोले, 'हाय, मेरे जीवन के जीवन राम की मृत्यु हो गई? क्या यम ने छलना द्वारा उनका जीवन हरण किया है?' ऐसा कहते-कहते लक्ष्मण के प्राण निकल गए। कर्म का विपाक सचमुच ही अनुलङ्घनीय है। उनकी देह स्वर्ण स्तम्भ के सहारे सिंहासन पर अवस्थित थी, मुख खुली अवस्था में। लक्ष्मण का शरीर निष्क्रिय स्थिर एवं लेपमय मूर्ति-सा लगने लगा। इस प्रकार सहज रूप से लक्ष्मण की मृत्यु होते देखकर दोनों देव दु:खी हो गए। वे पश्चात्ताप करते हुए परस्पर कहने लगे, 'हमने यह क्या कर डाला? अरे विश्व निर्भर इस पुरुष प्रवर को हमने इस प्रकार मार डाला।' इस भाँति आत्मनिन्दा करते हुए वे दोनों देवलोक लौट गए।' (श्लोक ११८-१२६)

लक्ष्मण की मृत्यु से अन्त:पुर में हाहाकार मच गया। स्त्रियाँ केश बिखेर कर हृदय भेदी आर्त स्वर में क्रन्दन करने लगीं। उनका रोना सुनकर राम वहाँ दौड़कर गए और बोले, 'अमङ्गल को ज्ञात किए बिना ही तुम लोगों ने यह कैसा रोना मचा दिया? मैं जीवित हूं, भाई लक्ष्मण जीवित है फिर यह रोना-धोना कैसा? हो सकता है लक्ष्मण किसी रोग से पीड़ित हो गया हो—मैं वैद्य को बुलाकर अभी उसकी चिकित्सा करवाता हूं।' (श्लोक १२७-१२९)

तदुपरान्त राम ने अनेक वैद्य और ज्योतिषियों को बुलवाया। यन्त्र-मन्त्रों का प्रयोग करवाया; किन्तु लक्ष्मण पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर राम मूर्च्छित हो गए। कुछ देर पश्चात् उनकी चेतना लौटी। वे उच्च स्वर में विलाप करने लगे। उनका विलाप सुनकर विभीषण, सुग्रीव व शत्रुघ्न आदि भी 'हाय! हम मारे गए। हमारा सर्वनाश हो गया'

इत्यादि कहते हुए उच्च स्वर में रोने लगे। कौशल्यादि माताएँ और पुत्रवधुएँ भी करुण स्वर में क्रन्दन करने लगीं और बार-बार मूर्च्छित होने लगीं। नगर की सभी दुकानों पर प्रत्येक घर, प्रत्येक पथ पर समस्त रसहर्ता अद्वैत शोक का साम्राज्य व्याप्त हो गया।
(श्लोक १३०-१३४)

उसी समय लवण और अंकुश राम के निकट आए और उन्हें नमस्कार कर बोले, 'हम अपने इन लघु पिता की मृत्यु से संसार से अति भयभीत हो गए हैं। मृत्यु सभी को अकस्मात् आकर ही उठा लेती है, अतः हम लोगों को पहले से ही परलोक के लिए तैयारी कर लेनी चाहिए। अतः हे पिताजी, आप हम लोगों को दीक्षा ग्रहण का आदेश दीजिए। लघुपिता बिना हमारा घर पर रहना सर्वथा अनुचित है।' तदुपरान्त राम को प्रणाम कर लवण और अंकुश ने अमृत घोष मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली और तपस्या कर मोक्ष गए। (श्लोक १३५-१३८)

भाई की मृत्यु और पुत्रों के वियोग में राम बार-बार मूर्च्छित होने लगे और मोह से शोकाकुल होकर कहने लगे—'हे भाई, अभी तक मैंने तुम्हारा कभी अपमान नहीं किया है। फिर तुम क्यों मौन हो गए? हे भाई, तुम्हारे मौनावलम्बी होने के कारण मेरे पुत्र भी मेरा परित्याग कर चले। छिद्र पाकर मनुष्य देह में हजारों भूत प्रवेश कर जाते हैं।' (श्लोक १३९-१४१)

इस प्रकार उन्मादी की तरह उन्हें बोलते देखकर विभीषणादि एकत्र होकर उनके निकट गए और गद्गद् कण्ठ से कहने लगे—'आप जिस प्रकार वीरों में वीर हैं उसी प्रकार धीरों में धीर हैं, अतः लज्जाजनक अधैर्य का त्याग कीजिए। अब तो लोक प्रसिद्ध और समयोचित लक्ष्मण का ऊर्ध्वदैहिक कृत्य अङ्ग-सस्कार करिए।' (श्लोक १४२-१४४)

उनकी ऐसी बात सुनकर क्रोध से राम के ओष्ठ स्फुरित होने लगे। वे बोले—'हे दुर्जनो! मेरा भाई लक्ष्मण अभी जीवित है। तब तुम लोग ऐसा क्यों कह रहे हो? कुटुम्ब सहित तुम लोगों का ही अग्निदाहपूर्वक मृत कर्म करना उचित है। मेरा भाई तो दीर्घजीवी है। हे भाई, हे लक्ष्मण, हे वत्स! अब तो तुम शीघ्र बोलो। तुम्हारे नहीं बोलने से दुर्जन लोग ऐसी बातें कर रहे हैं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

बहुत क्षण बीत गए, अब मुझे क्यों दुःखी कर रहे हो ? हे भाई ! इन दुर्जनों के सम्मुख कोप करना उचित नहीं है ।' (श्लोक १४५-१४८)

ऐसा कहकर राम लक्ष्मण को कन्धे पर उठाकर अन्यत्र चले गए। कभी स्नानागार में जाकर लक्ष्मण को स्नान कराते, कभी उनकी देह पर चन्दन का लेप करते, कभी दिव्य आहार लाकर उनके सम्मुख रखते, कभी उन्हें गोद में सुलाकर उनका मस्तक चूमते, कभी उन्हें शैय्या पर सुलाकर वस्त्र द्वारा आच्छादित कर देते। कभी उन्हें पुचकारते, कभी स्वयं ही उसका प्रत्युत्तर देते। कभी स्वयं ही संवाहक की भांति उनकी देह पर तेल-मर्दन करते। इस प्रकार स्नेह में उन्मत्त होकर वे सब काम भूल गए। ऐसी उन्मत्तता की स्थिति ज्ञात कर, इन्द्रजीत और सुन्द राक्षस के पुत्र और अन्यान्य खेचर राम को मारने की इच्छा से उनके निकट पहुंचे। कपटी शिकारी, सिंह जब गुफा में सोया हुआ रहता है तो उसे घेर लेते हैं उसी प्रकार अयोध्या में जब उन्मत्त राम वास कर रहे थे तब उन लोगों ने आकर अयोध्या को वृहद सेना द्वारा घेर लिया। यह देखकर राम ने लक्ष्मण को गोद में लेकर वज्रावर्त धनुष की टङ्कार दी जो कि संवर्त प्रलय की सूचना दे रही थी।

(श्लोक १४८-१५६)

उसी समय महेन्द्र देवलोक के देव जटायु का आसन कम्पित हुआ। वह देवों सहित अयोध्या आया। उसे देखकर इन्द्रजीत के पुत्रादि देव अभी भी राम के पक्ष में हैं, समझकर भाग गए। तत्पश्चात् वे यही सोचकर उदास हो गए कि देव आज भी राम का पक्ष ले रहे हैं। राक्षसों की हत्या करने वाला विभीषण अभी भी राम के साथ है। भय व लज्जा से उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे गृह-त्याग कर अतिवेग मुनि से दीक्षित हो गए।

(श्लोक १५७-१६०)

जटायु देव राम के पास आए और उन्हें बोध देने के लिए एक शुष्क वृक्ष को बार-बार सींचने लगे। पत्थर पर खाद देकर उस पर कमल बोने लगे। मिट्टी में असमय बीज बिखेरने लगे। घानी में बालू डाल कर उससे तेल निकालने का प्रयास करने लगे। इस प्रकार राम के सामने वे सभी असाध्य कर्मों को साध्य करने का प्रयास करने लगे। (श्लोक १६१-१६३)

यह देखकर राम बोले, 'अरे ओ मूर्ख ! शुष्क वृक्ष को क्यों सींच रहा है ? इसमें फल लगना तो दूर एक अंकुर भी नहीं निकलेगा। तू क्यों पाषाण में कमल लगा रहा है ? यह तो निर्जल मरुभूमि में खाद देकर बीज-वपन करने जैसा है। आज तक क्या कभी किसी ने बालू से तेल निकाला है ? उपाय का सही तरीका नहीं जानने के कारण तुम्हारा समस्त प्रयास वृथा हो रहा है।'

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(श्लोक १६४-१६६)

राम की बात सुनकर जटायु देव हँसकर बोले, 'हे भद्र ! यदि आप इतना समझते हैं तब अज्ञानता के चिह्न रूप इस शव को कन्धे पर लिए क्यों घूम रहे हैं ?' (श्लोक १६७)

देव की बात सुनकर लक्ष्मण की देह को आलिङ्गन में लेकर राम बोले, 'अरे ओ, ऐसी अमङ्गलकारी बात क्यों बोल रहा है ? दूर हो जा मेरी आँखों के सामने से।' (श्लोक १६८)

जटायु को राम ने जो कुछ कहा वह कृतान्तवदन सारथी ने जो कि देवलोक में देव हुआ था, अवधिज्ञान से ज्ञात किया। वह भी राम को बोध देने के लिए राम के पास आया और एक पुरुष का रूप धारण कर एक स्त्री की मृत देह को कन्धे पर डालकर राम के पास गया। उसे देखकर राम बोले, 'लगता है तुम पागल हो गए हो ? तभी तो स्त्री की मृत देह को कंधे पर लिए घूम रहे हो।'

(श्लोक १६९-१७०)

तब देव ने कहा, 'तुम ऐसा अमङ्गलकारी वचन क्यों बोल रहे हो ? यह मेरी प्रिय पत्नी है। फिर एक बात और है, तुम स्वयं क्यों इस मृतदेह को लिए घूम रहे हो ? हे बुद्धिमान् ! यदि तुम मेरी पत्नी को मृत समझ रहे हो तो अपने कंधे पर लादे हुए शव को मृत क्यों नहीं समझते ?' इसी भाँति और भी बातें उसने राम से कहीं। इससे राम प्रबुद्ध हो गए। तब वे समझ पाए कि लक्ष्मण सचमुच ही मर गया है, वह जीवित नहीं है। राम को वास्तविकता का ज्ञान हो गया है, यह देखकर जटायु और कृतान्त-वदन देव राम को अपना परिचय देकर स्वस्थान चले गए।

(श्लोक १७१-१७४)

तदुपरान्त राम ने अनुज का मृत-कर्म सम्पन्न किया और दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने शत्रुघ्न को राज्य ग्रहण

करने का आदेश दिया; किन्तु शत्रुघ्न ने राज्य और संसार से विरक्त होकर राम के साथ ही दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की। तब राम लवण के पुत्र अनङ्गदेव को राज्य देकर चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष की साधना के लिए तत्पर हुए। श्रावक अर्हद्दास ने मुनि सुव्रत स्वामी की अविच्छिन्न परम्परा में आगत मुनि सुव्रत ऋषि का नाम बताया। राम उनके पास गए। वहाँ जाकर उन्होंने शत्रुघ्न, विभीषण, विराध आदि अनेक राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। राम ने संसार का परित्याग किया उस समय अन्यान्य सोलह हजार राजाओं ने भी उन्हीं के साथ दीक्षा ग्रहण की। इसी प्रकार तेंतीस हजार स्त्रियों ने भी दीक्षा ग्रहण की। वे श्रीमती साध्वी के संघ में रहने लगीं। (श्लोक १७५-१८२)

गुरु चरणों में रहकर उन्होंने पूर्णाङ्ग श्रुति का अध्ययन कर नाना प्रकार के अभिग्रहों सहित साठ वर्ष तक तपस्या की। तदुपरान्त गुरु आज्ञा से वे अकेले ही विहार करने लगे और निर्भय होकर गिरि-कन्दराओं में रहने लगे। जिस रात्रि वे ध्यानस्थ होकर बैठे थे उन्हें अवधि ज्ञान उत्पन्न हुआ। अवधि ज्ञान के कारण वे चौदह राजलोक को हस्तामलकवत् देखने लगे। अवधिज्ञान से वे यह भी जान गए कि उनके अनुज लक्ष्मण की दो देवों ने कपट द्वारा हत्या की थी और लक्ष्मण अभी नरक में पड़े हुए हैं।

(श्लोक १८२-१८५)

तब राम सोचने लगे—पूर्वभव में मैं धनदत्त नामक वणिक था। लक्ष्मण उस भव में भी वसुदत्त नामक मेरा भाई था। वसुदत्त ने उस जन्म में बिना कोई सुकृत्य किए मृत्यु प्राप्त की। इसीलिए कई जन्म तक वह संसार भ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् इस जन्म में वह मेरा भाई हुआ। यहाँ भी उसने १०० वर्ष कुमारावस्था में, ३०० वर्ष माण्डलिक रूप में, ४० वर्ष दिग्विजय में, ११५६० वर्ष राज्य शासन करते हुए व्यतीत किए। उसकी १२००० वर्षों की आयु किसी भी प्रकार का सत्कार्य किए बिना ही व्यतीत हुई। इसलिए अन्त में उसे नरक जाना पड़ा। कपटी देवों का इसमें कोई दोष नहीं है। कारण प्राणी मात्र को कर्म विपाक को इसी प्रकार भोगना पड़ता है। (श्लोक १८६-१९१)

ऐसा विचार कर राम कर्म उच्छेद के लिए विशेष रूप से

प्रयत्नशील हो गए। वे विशेष रूप से ममताहीन होकर तप-समाधि में लीन रहने लगे। (श्लोक १९२)

एक बार मुनि राम षष्ठ उपवास के बाद पारणे के लिए युगमात्र दृष्टि रखते हुए (अर्थात् हस्तमात्र भूमिका अवलोकन करते हुए) संदन स्थल नामक नगर में गए। चन्द्र-से नयनों को आनन्द देने वाले राम को जमीन पर पैदल चलते हुए देखकर नगरवासी अत्यन्त आनन्द के साथ उनके सम्मुख गए। नगर की स्त्रियां राम को भिक्षा देने के लिए विभिन्न प्रकार के आहार से पूर्ण पात्र लेकर घर के दरवाजों पर खड़ी हो गईं। उस समय नगरवासी मारे हर्ष के इतना कोलाहल कर रहे थे कि उस कोलाहल में हाथी आलान स्तम्भों को उखाड़ कर भागने लगे। अश्व भड़क कर उत्कर्ण हुए। बन्धन तोड़ने का प्रयत्न करने लगे। (श्लोक १९३-१९६)

राम उजित आहार (जो सबके खाने के पश्चात् बच जाता है) लेना चाह रहे थे। अतः नगरवासी जो आहार उन्हें देना चाह रहे थे उसे लिए बिना ही वे राजप्रासाद में प्रविष्ट हो गए। वहां प्रतिनन्दी नामक राजा ने उन्हें उजित आहार दिया। राम ने भी उस आहार को विधिवत् ग्रहण किया। देवों ने वसुधारा आदि पांच दिव्य प्रकट किए। तदुपरान्त राम जिस वन से आए थे उसी वन को लौट गए। (श्लोक १९७-१९९)

मेरे जाने से लोकालय में क्षोभ उत्पन्न होता है, लोग एकत्र होते हैं अतः इसी वन में यदि भिक्षा के समय आहार पानी प्राप्त होगा तो पारना करूंगा नहीं तो अनाहारी रहूंगा। ऐसा अभिग्रह लेकर परम समाधि में लीन होकर राम प्रतिमा—चित्र की भांति स्थिर हो गए। (श्लोक २००-२०२)

संयोगवश विपरीत शिक्षा प्राप्त गति सम्पन्न अश्व राजा प्रतिनन्दी को उसी वन में ले गया जिस वन में राम प्रतिभा धारण कर खड़े थे। वहां जाकर वह अश्व नन्दनपुण्य नामक सरोवर के कीचड़ में फँसकर स्थिर हो गया। उनका सैन्यदल भी उन्हें खोजता हुआ वहां आ पहुंचा। कीचड़ से अश्व को निकालकर राजा ने वहीं छावनी डाल दी। तदुपरान्त स्नानादि से निवृत्त होकर परिवार सहित छावनी में ही भोजन किया। उसी समय ध्यान से निवृत्त होकर राम पारणा करने की इच्छा से छावनी में गए। राजा

प्रतिनन्दी उन्हें देखते ही उठकर खड़े हो गए। उन्होंने अवशेष अन्न राम को दिया। मुनि राम ने पारणा किया। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। (श्लोक २०३-२०७)

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तदुपरान्त राम ने देशना दी। उस देशना को सुनकर प्रतिनन्दी आदि राजाओं ने सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिए। वनवासी देवों द्वारा पूजित होते हुए राम दीर्घकाल तक वहीं अवस्थित रहे। भवसागर को पार करने के लिए वे एक मास, दो मास, तीन मास व चार मास के पश्चात् पारणा करने लगे। कभी पर्यङ्कासन में, कभी खड़े होकर हाथ प्रलम्बित कर नासाग्र दृष्टि किए, कभी अंगुष्ठ पर तो कभी घुटनों पर भार डालकर खड़े होकर नाना प्रकार के आसनों द्वारा राम ध्यान करने लगे। इसी भाँति वे कठोर तप करते रहे। (श्लोक २०८-२१२)

एक बार मुनि राम विहार करते हुए कोटिशिला पर जा पहुंचे। यह वही शिला थी जिसे लक्ष्मण ने विद्याधरों के सम्मुख उठाई थी। राम उसी शिला पर प्रतिमा धारण कर क्षपक श्रेणी का आश्रय लिए शुक्ल ध्यानान्तर को प्राप्त हुए। राम की उस स्थिति को सीतेन्द्र नामक इन्द्र बने हुए सीता के जीव ने अवधिज्ञान से देखकर सोचा—राम यदि पुनर्भवी हो तो मैं उनके साथ जाकर रहूं अतः मैं उन्हें अनुकूल उपसर्ग द्वारा क्षपक श्रेणी से च्युत कर दूं। क्षपक श्रेणी से च्युत होने पर राम मृत्यु के पश्चात् मेरे मित्र बन जाएँगे। यह सोचकर सीतेन्द्र राम के पास गए। वहाँ जाकर वसन्त विभूषित एक वृहद् उद्यान का निर्माण किया। वहाँ कोयल कुहू-कुहू करने लगी। फूलों की सुगन्ध से मुग्ध बने भ्रमर गुंजन करने लगे और आम चम्पक कंकिल गुलाब और बोरसली के वृक्षों ने कामदेव के नवीन अस्त्र पुष्पावलियाँ को धारण किया।

(श्लोक २१३-२१९)

तत्पश्चात् सीतेन्द्र सीता का रूप धारण कर सखियों के साथ राम के निकट पहुंची और उनसे बोली, 'हे प्रिये, मैं आपकी प्रिय सीता आपके पास आई हूं। हे नाथ, उस समय मैंने स्वयं को दुःखी समझकर दीक्षा ग्रहण कर ली थी और आप जैसे प्रेमिक का परित्याग कर दिया था; किन्तु बाद में मुझे बहुत परिताप हुआ। आज इन विद्याधर कुमारियों ने आकर मुझसे कहा तुम दीक्षा त्याग

कर पुनः पटरानी बनो। आपके आदेश से हम भी राम की रानियाँ बनेंगी। अतः हे राम, इन सब विद्याधर कुमारियों के साथ विवाह करो। मैं भी आपके साथ पूर्व की भाँति विहार करूँगी। मैंने आपका जो अपमान किया था उसके लिए मुझे भी क्षमा कर दीजिए।'
(श्लोक २२०-२२४)

तत्पश्चात् सीता की माया द्वारा निर्मित वे विद्याधर कुमारियाँ कामदेव को जीवन्त कर देने वाली औषधि-सा गीत गाने लगीं। मायावी सीता के वचनों से विद्याधरियों के संगीत से और वसन्त ऋतु से भी राम जरा भी विचलित नहीं हुए। अतः माघ शुक्ला द्वादशी के दिन रात्रि के शेष भाग के समय मुनि राम को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। सीतेन्द्र और अन्यान्य देवों ने भक्तिपूर्वक राम का केवलज्ञान महोत्सव मनाया। तदुपरान्त दिव्य स्वर्ण कमल पर बैठकर दिव्य छत्र से सुशोभित राम ने देशना दी।
(श्लोक २२५-२२९)

देशना शेष होने पर सीतेन्द्र ने अपने अपराधों की क्षमा याचना कर लक्ष्मण और रावण की क्या गति हुई है पूछा। राम बोले, 'इस समय शम्बूक सहित रावण और लक्ष्मण चतुर्थ नरक में हैं। कारण प्राणी की गति कर्माधीन है। नरकायु पूर्ण कर लक्ष्मण और रावण पूर्व विदेह की अलङ्कार स्वरूपा विजयवती नामक नगरी में सुनन्द के घर रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न होंगे। उनके नाम जिनदास और सुदर्शन होंगे। वहाँ निरन्तर जिनधर्म का पालन कर वे दोनों मृत्यु के पश्चात् सौधर्म देवलोक में देव बनेंगे। वहाँ से च्युत होकर पुनः वे विजयवती नगरी में ही श्रावक बनेंगे। वहाँ से मृत्यु के पश्चात् हरिवर्ष क्षेत्र में दोनों ही पुरुष देह धारण करेंगे। वहाँ से च्युत होकर पुनः विजयवती में ही कुमारगति राजा और रानी लक्ष्मी के गर्भ से जन्म लेकर जयकान्त और जयप्रभ नामक उनके पुत्र होंगे। वहाँ जिन धर्मानुसार संयम का पालन कर लान्तक नामक छठे देवलोक में देव बनेंगे। तुम अच्युत देवलोक से च्युत होकर इसी भरत क्षेत्र में सर्वरत्न मति नामक चक्रवर्ती होंगे। वे दोनों लान्तक देवलोक से च्युत होकर इन्द्रायुध और मेघरथ नामक तुम्हारे पुत्र होंगे। वहाँ दीक्षा लेकर तुम मृत्यु के पश्चात् वैजयन्त नामक द्वितीय अनुत्तर विमान में उत्पन्न होंगे।

रावण का जीव इन्द्रायुध तीन शुभजन्मों के पश्चात् तीर्थंकर गोत्र कर्म का बन्धन कर तीर्थंकर होगा। तुम उस समय वैजयन्त विमान से च्युत होकर उसके गणधर बनोगे। अन्ततः तुम दोनों मोक्ष जाओगे। लक्ष्मण का जीव जो कि मेघरथ नामक तुम्हारा पुत्र होगा, शुभगति प्राप्त कर पुष्करवर द्वीप के पूर्व विदेह की अलङ्कार स्वरूप रत्नचित्रा नगरी में चक्रवर्ती बनेगा। चक्रवर्ती का वैभव भोग करने के पश्चात् दीक्षा लेकर अनुक्रम से तीर्थंकर होकर मोक्ष जाएगा।'
(श्लोक २३०-२४४)

यह वृत्तान्त सुनकर सीतेन्द्र पूर्व स्नेह के कारण उस नरक में गए जहाँ लक्ष्मण दुःख भोग रहे थे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि शम्बूक और रावण सिंहादि का रूप धारण कर कुपित बने लक्ष्मण के साथ युद्ध कर रहे थे। तदुपरान्त परमाधार्मिक देव यह कहते हुए कि 'इस प्रकार क्रोधपूर्वक युद्ध करने वाले तुम लोगों को कोई दुःख नहीं होगा।' —उन्हें उठाकर अग्नि-कुण्ड में डाल दिया। वहाँ उन तीनों की देह जलने लगी। उनका समस्त शरीर जल गया। वे उच्च स्वर में पुकारने लगे तो उन परमाधार्मिक देवों ने उन्हें बलपूर्वक आकर्षण कर उत्तप्त तेलकुम्भी में डाल दिया। वहाँ उनका शरीर तैलाक्त होने पर उनको उठाकर ज्वलन्त चूल्हों पर चढ़े तवे पर डाल दिया। वहाँ उनका शरीर तड़-तड़ कर विदीर्ण होने लगा। उससे उन्हें भयानक यातना होने लगी।
(श्लोक २४५-२४९)

उन्हें इस प्रकार दुःख पाते देखकर सीतेन्द्र परमाधार्मिक देवों से बोले, 'ओ दुष्टो, क्या तुम नहीं जानते ये तीनों उत्तम पुरुष हैं। हे असुरो, तुम लोग दूर हो जाओ, इन महात्माओं को छोड़ दो।' परमाधार्मिकों के दूर चले जाने पर सीतेन्द्र शम्बूक और रावण से बोले तुम लोगों ने पूर्व जन्म में भयानक दुष्कृत्य किए थे। उसी के फलस्वरूप इस नरक में आना पड़ा। अपने दुष्कृत्य के परिणामों को देखकर भी तुम लोग अब भी अपने पूर्व वैर का परित्याग नहीं कर रहे हो?' इस प्रकार उन्हें समझाकर पूर्व वैर-जन्य युद्ध से निवृत्त कर सीतेन्द्र ने लक्ष्मण और रावण को बोध देने के लिए उनका आगामी भव केवली भगवान ने जैसा बताया था सुनाया। (श्लोक २५०-२५३)

तब वे बोले, 'हे कृपानिधि, आपने हम लोगों को उपदेश देकर बहुत अच्छा कार्य किया है। आपके शुभ उपदेश से हम लोग अपना आज तक का दुःख भूल गए हैं; किन्तु पूर्व उपार्जित क्रूर कर्मों ने हमें सुदीर्घ काल तक के लिए नरकवास दिया है। इनके विषय दुःख को अब कौन दूर करेगा ?' (श्लोक २५४-२५५)

उनकी यह बात सुनकर सीतेन्द्र करुणा परवश होकर बोले, 'कहो तो मैं तुम तीनों को नरक से निकालकर देवलोक में ले जाऊँ।' (श्लोक २५६)

ऐसा कहकर उन्होंने तीनों को उठाया; किन्तु उनकी देह पारे की भाँति कण-कण होकर उनके हाथों में से गिर गई और पुनः मिल गई। सीतेन्द्र ने उन्हें पुनः उठाया, किन्तु उनका शरीर पुनः पूर्व की भांति बिखर कर मिल गया। तब वे सीतेन्द्र को बोले, 'हे भद्रिक, आप जब हमको यहाँ से उठाते हैं तो और अधिक कष्ट होता है। अतः हमें यहीं रहने दें और आप देवलोक लौट जाएँ।' (श्लोक २५७-२५९)

तब सीतेन्द्र उन्हें छोड़कर राम के निकट गए। राम को नमस्कार कर वे फिर शाश्वत अर्हतों के तीर्थयात्रा करने के लिए नन्दीश्वर द्वीप गए। वहाँ से लौटते समय देवकुरु क्षेत्र में भामण्डल राजा के जीव को युगल रूप में देखा। पूर्व स्नेह के कारण सीतेन्द्र उन्हें भी सदुपदेश देकर स्वकल्प में लौट गए। (श्लोक २६०-२६१)

भगवान राम ने केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् २५ वर्षों तक पृथ्वी पर विचरण कर जीवों को बोध देते हुए अपना १५००० वर्षों का आयुष्य पूर्ण कर शैलेशीकरण द्वारा शाश्वत सुख और आनन्दमय स्थान मोक्ष प्राप्त किया। (श्लोक २६१-२६२)

दशम सर्ग समाप्त

जैन रामायण समाप्त

एकादश सर्ग

जिनके चरण कमल इन्द्रादि द्वारा पूजित होते हैं, कर्म रूप वृक्षों के लिए जो गजेन्द्र तुल्य हैं और जो धरती के लिए कल्प वृक्ष रूप हैं ऐसे भगवान जिनेन्द्र नमि को नमस्कार। इस लोक और

परलोक के सभी जीवों के कल्याण के लिए उनका पवित्र जीवन विवृत करता हूं। (श्लोक १-२)

इस जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में भरत नामक विजय में ऐश्वर्य की निधान रूप कौशाम्बी नामक एक नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम था सिद्धार्थ जिनकी आज्ञा आखण्डल (इन्द्र) के आदेश की तरह अखण्ड रूप से पाली जाती थी। उन्होंने प्रार्थियों की समस्त वासनाओं को पूर्ण कर दिया था। उनके गरिमा, दृढ़ता, औदार्य, शौर्य, बुद्धि और अन्य गुणादि इतने विशिष्ट थे कि लगता, उनमें प्रतिस्पर्द्धा चल रही है। उनका वैभव और अपरिमित सम्पदा उसी भाँति सबके कल्याण के लिए थी जिस प्रकार पथ के दोनों ओर लगे वृक्षों की छाया सबके लिए होती है। राजहंस जिस प्रकार कमल में ही निवास करता है उसी प्रकार उनका मन रूपी हंस पवित्र कमल रूप धर्म में ही निवास करता था। तदुपरांत एक दिन उन्होंने संसार से वितृष्ण होकर अपनी समस्त सम्पदा तृण की भाँति परित्याग कर मुनि सुदर्शन से दीक्षित हो गए। तदुपरान्त उत्तम रूप से व्रत पालन कर बीस स्थानक की आराधना द्वारा तीर्थंकर गोत्र कर्म उपार्जन किया और मृत्यु के पश्चात् अपराजित विमान में उत्पन्न हुए। (श्लोक ३-९)

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मिथिला नामक एक नगरी थी जहाँ के अधिवासी धर्मदृढ़ थे। स्वर्ण और रत्न जड़ित प्राकार, प्रासाद श्रेणियाँ एवं विपणियों को देखकर लगता वह धरती की रत्नमंजूषा है। रत्नजड़ित इसके उद्यान बापी चारों ओर स्थित वृक्ष से झरते हुए पराग से कर्दमाक्त रहते थे। शत्रुओं पर सदैव विजय प्राप्त करने वाले वहाँ के राजा का नाम था विजय जो कि इन्द्र की भाँति अखण्ड प्रताप से वहाँ शासन कर रहे थे। सामान्य सी भृकुटि चढ़ाए बिना, सैन्यवाहिनी को अस्त्र से सज्जित किए बिना, प्रेम जिस प्रकार तरुण हृदय को वशीभूत कर लेता है उसी प्रकार उन्होंने शत्रुओं के हृदय को वशीभूत कर लिया था। वे समुद्र-से गहन, चन्द्र से प्रियदर्शन, वायु की तरह शक्तिशाली और सूर्य-से प्रतापी थे। उनकी अन्तःपुर के अलङ्कार-सी रानी थी वप्रा। शील ही उनका अलङ्कार था। उन्हें देखकर लगता मानो पृथ्वी ने ही रूप धारण कर लिया है। गङ्गा-सी निर्मल और

गहन चन्द्रिका की भाँति दृष्टि को आनन्दितकारी वे अपनी उपस्थिति से ही पृथ्वी को पवित्र कर रही थीं। सत्य, शील आदि समस्त गुण उनमें इतने परिपूर्ण रूप में थे कि वे रमणियों में दृष्टांत स्वरूप थीं। (श्लोक १०-१८)

अपराजित विमान में ३३ सागरोपम की आयु व्यतीत कर सिद्धार्थ का जीव वहाँ से च्युत होकर अश्विनी नक्षत्र का योग आने पर आश्विन पूर्णिमा के दिन रानी वप्रा के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। त्रिलोक में एक दिव्य आलोक व्याप्त हो गया। तदुपरान्त रात्रि के शेष याम में उन्होंने तीर्थंकर जन्मसूचक चौदह महास्वप्न देखे। पिता की इच्छा की भांति वर्द्धमान वह भ्रूण माँ की कोमलता को ज्ञात कर उन्हें बिना कोई कष्ट दिए क्रमशः वर्द्धित होने लगा। समय पूर्ण होने पर अश्विनी नक्षत्र के योग से श्रावण शुक्ला कृष्णा अष्टमी को नीलकमल लांछनयुक्त एक स्वर्ण-वर्ण पुत्र को रानी वप्रा ने जन्म दिया। सिंहासन कम्पित होने के कारण दिक्‌कुमारियों ने आकर माता और पुत्र का जन्म कृत्य सम्पन्न किया। शक्र नवजातक को मेरुपर्वत पर ले गए। वहां अच्युतादि देवेन्द्रों ने तीर्थजल से उनका अभिषेक किया। स्नानशेष होने पर शक्र ने त्रिलोकपति की पुष्पादि से पूजा की, दीप प्रज्वलित किया और इस भांति स्तुति करने लगे— (श्लोक १९-२६)

'हे मोक्षमार्ग के प्रवर्तक ! सर्वकर्मविनाशक और राग-द्वेष को जीतने वाले हे भगवन् ! आपकी जय हो। मिथ्या मतनाशक, सत्यपथ-प्रदर्शक, जगत् के शिक्षक हे त्रिलोकपति, मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपके कारण ही जगत् को नेतृत्व प्राप्त हुआ है। आप ही समस्त क्षेत्रों के निरीक्षक हैं, दुष्टों के दमनकारी और जगत् के शुभङ्कर हैं। धर्म बीज का संग्रह करने वाले, अप्राकृत गुणों के धारक, आगम ज्ञान के प्रवक्ता हे भगवन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूं। अब से मोक्ष-मार्ग को प्रदर्शित करने वाले, धर्म और अभयदान करने वाले, हे त्रिलोकशरण्य ! मैंने आपकी शरण ग्रहण की है। हे त्रिलोकपति, इस जीवन में आप जिस प्रकार मेरे प्रभु बने हैं उसी भांति जन्म-जन्म में आप मेरे प्रभु बनें। इसके अतिरिक्त मेरी कोई कामना नहीं है।' (श्लोक २७-३४)

इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र ने नियमानुसार प्रभु को वप्रादेवी

के पास ले आकर सुला दिया। सुबह राजा ने कारावास से बन्दियों को मुक्त कर महान् आनन्द के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। जब प्रभु गर्भ में थे तब शत्रुओं ने नगरी को घेर लिया था और देवी वप्रा प्रासाद-शिखर पर चढ़ी थी। भ्रूण के प्रभाव से उन्हें देखने मात्र से ही शत्रुओं ने वश्यता स्वीकार कर ली थी इस कारण नवजातक का नाम रखा—नमि। शक्र द्वारा नियुक्त धात्रियों द्वारा पालित होकर नमि द्वितीय चन्द्र की भाँति बर्द्धित होने लगे।

(श्लोक ३५-३९)

बाल्यकाल व्यतीत होने पर १५ धनुष दीर्घ प्रभु ने पिता के आदेश से विवाह किया। पच्चीस वर्ष के होने पर प्रभु ने अपने भोगावली कर्मों को ज्ञात कर पिता की आज्ञा से राज्य भार ग्रहण किया। राज्य ग्रहण के पचास हजार वर्ष पश्चात् लोकान्तिक देवों ने आकर उनसे निवेदन किया—'देव, तीर्थ स्थापित करें।' स्वपुत्र सुप्रभ को सिंहासन पर बैठाकर भगवान् नमि ने जृम्भक देवों द्वारा आनीत धन को एक वर्ष तक दान किया। (श्लोक ४०-४३)

सुप्रभ और अन्यान्य राजाओं द्वारा एवं शक्र और देवों द्वारा परिवृत होकर प्रभु देवकुरु नामक पालकी में बैठकर सहस्राम्रवन उद्यान में गए। वे उस निकुञ्ज में पधारे जहाँ अजस्र भ्रमरगण कदम्ब पुष्प को चूम रहे थे। माली मल्लिका फूल आहरण कर रहा था। धरती झरे हुए रक्तवर्ण किंशुक से आच्छादित हो गई थी। शिरीष पुष्पों ने प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए वेदि का निर्माण कर रखा था। फुहारों से उत्क्षिप्त जलकण ग्रीष्मकाल में भी वर्षाऋतु के आविर्भाव की सूचना दे रहे थे। आषाढ़ कृष्णा नवमी अश्विनी नक्षत्र के योग में दो दिन के उपवास किए हुए प्रभु ने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही प्रभु को मनपर्यव ज्ञान की प्राप्ति हो गई। द्वितीय दिन वीरपुर के राजा दत्त के घर क्षीरान्न ग्रहण कर उन्होंने पारणा किया। देवों ने रत्न-वर्षादि पञ्च दिव्य प्रकट किए। राजा दत्त ने वहाँ रत्नवेदी का निर्माण करवाया। प्रभु वहाँ से विहार कर नौ मास तक प्रव्रजन करते रहे। (श्लोक ४४-५०)

नौ मास के पश्चात् जहाँ उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी उसी सहस्राम्रवन उद्यान में गए और षष्ठ तप के पश्चात् बकुल वृक्ष के

नीचे प्रतिमा धारण कर स्थित हो गए। घाती कर्मों के क्षय हो जाने से अगहन शुक्ला इग्यारस को अश्विनी नक्षत्र का योग आने पर प्रभु को उत्कृष्ट केवलज्ञान प्राप्त हुआ। साथ-साथ देवों ने ८० धनुष विराट् अशोक वृक्ष समन्वित समवसरण का निर्माण किया। भगवान् उस अशोक वृक्ष को परिक्रमा देकर तीर्थ को नमस्कार कर पूर्वाभिमुखी होकर पूर्व दिशा में रखे सिंहासन पर बैठ गए। व्यन्तर देवों ने तुरन्त प्रभु के तीन प्रतिरूप बनाकर अन्य तीनों दिशाओं में रखे सिंहासन पर स्थापित किए। चतुर्विध संघ भी यथास्थान अवस्थित हो गया। सौधर्मेन्द्र ने तब भगवान् को प्रणाम कर यह स्तुति की— (श्लोक ५१-५६)

'आपके पास केवलज्ञान रूपी तीसरा नेत्र है इसलिए हे त्रिनेत्र ! मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपके ३४ अतिशय हैं और आपकी वाणी में ३५ प्रकार की अलौकिक शक्ति है। हम आपकी वाणी की उपासना करते है। कारण यह समस्त भाषानुसारिणी और ग्राम रागमालव, कौशिकी आदि से सुमधुर है। गरुड़ को देखने मात्र से जिस प्रकार नागपाश शिथिल हो जाता है उसी भांति आपको देखने मात्र से दृढ़बन्ध कर्म भी शिथिल हो जाते हैं। आपको देखकर मनुष्य मोक्षमाग की सीढ़ी रूप गुणस्थान के एक-एक पगलिए पर चढ़ता जाता है। आपको स्मरण कर, आपकी वाणी मनन कर, आपका गुणगान कर, आपका ध्यान कर, आपको देख कर, आपको स्पर्श कर, आपकी उपासना कर मनुष्य आनन्द प्राप्त करता है। इसलिए आप आनन्द के कन्द हैं। पूर्वजन्म में मैंने बहुत सुकृत किए थे। इसलिए भगवन्, आप मुझे अभूतपूर्व आनन्द देकर मेरी दृष्टि के विषयीभूत बने हैं। मेरा स्वर्ग राज्य आदि वैभव चाहे चला जाए; किन्तु आपकी वाणी मेरे हृदय से कभी नहीं जाए।'

(श्लोक ५७-६४)

इस प्रकार प्रभु की स्तुति कर शक्र जब चुप हो गए तब त्रिलोकीनाथ ने यह देशना दी—

'यह संसार असार है। ऐश्वर्य और वैभव जल-तरङ्ग की भांति अस्थिर और चंचल है। यहां तक कि यह शरीर भी विद्युत झलक की भांति क्षण स्थायी है। इसलिए चतुर व्यक्ति का कर्तव्य है संसार, ऐश्वर्य और देह से अनासक्त होकर मोक्ष मार्ग के सर्वाराधना रूप यति धर्म को अङ्गीकार करे। यदि वह यति धर्म

अङ्गीकार करने में समर्थ नहीं हो तो यति धर्म स्वीकार करने की इच्छा रख कर सम्यक्त्व सहित बारह प्रकार का श्रावक-धर्म पालन करने के लिए तत्पर हो जाए। प्रमाद-परित्याग कर वह दिन-रात मन-वचन-काया से धर्म का पालन करे। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर पंच परमेष्ठि मन्त्र का जप करे और सोचे मेरा धर्म क्या है? मेरा कुल कैसा है? मेरा व्रत क्या है? तदुपरान्त प्रातः कृत्य शेष कर गृहस्थित जिन-बिम्ब की पुष्प-नैवेद्यादि से पूजा और स्तवन पाठ करे और यथाशक्ति प्रत्याख्यान कर मन्दिर जाए। मन्दिर में प्रवेश कर जिन-बिम्ब को नियमानुसार तीन प्रदक्षिणा दे और फिर पुष्पादि द्वारा पूजा कर उनकी स्तुति का पाठ करे। तत्पश्चात्
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
गुरु के सन्मुख दोष परिहार और सेवा का सङ्कल्प ले। गुरु को देखने मात्र से उठकर खड़ा हो जाए, उनकी ओर बढ़े फिर हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन्हें बैठने के लिए आसन दे। उनके बैठ जाने पर उनकी पर्युपासना करे। उनके जाने की इच्छा प्रकट करने पर उन्हें कुछ दूर तक आदरपूर्वक उनके पीछे-पीछे चलकर पहुंचाने जाए। इसी प्रकार गुरु महाराज की भक्ति की जाती है।
(श्लोक ६५-७५)

'फिर घर लौटकर विवेकपूर्वक अर्थचिन्तन इस प्रकार करे जिससे धर्म का विरोध न हो। तदुपरान्त मध्याह्न में फिर पूजा करे और पूजा के पश्चात् शास्त्रवेत्ताओं के सम्मुख बैठकर शास्त्रों के अन्तर्निहित गूढ़ अर्थ समझने का प्रयास करे। सन्ध्या समय जिन-बिम्बों की पूजा और प्रतिक्रमण कर स्वाध्याय करे। फिर यथा समय देव गुरु और धर्म को स्मरण कर स्वल्प निद्रा ग्रहण कर ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे। यदि नींद टूट जाए तो नारी देह का स्वरूप और महर्षियों द्वारा उनका परित्याग कर दिया गया था—उन कथाओं का चिन्तन करे। नारी देह बाहर से देखने में सुन्दर होने पर भी मल-मूत्र, विष्ठा, श्लेष्मा, मज्जा, अस्थि आदि अपवित्र वस्तुओं से पूर्ण है। अनेक स्नायुओं से सिलाई किए हुए चमड़े की थैली जैसा है। यदि नारी-शरीर का बहिर्भाग भीतर और अन्तर्भाग बाहर आए तब कामी पुरुष के उस शरीर को गिद्ध, शृगाल और कुत्तों के हाथ से बचाना कठिन हो जाता है। यदि कामदेव नारी को शस्त्र रूप में व्यवहार कर इस जगत को जीतना चाहे तब वे मूढ़ बालक की तरह हलके शस्त्र का व्यवहार क्यों

करते हैं ? जबकि सङ्कल्प से ही कामदेव उत्पन्न होते हैं और विश्व को विमोहित करते हैं तो उस सङ्कल्प को ही हृदय से उखाड़ डालो। जिसमें सब दोष वर्तमान हैं उनके प्रतिकार का चिन्तन करें। ऐसा करने पर दोष-मुक्त मुनि देवों की तरह आनन्द प्राप्त करने में समर्थ होंगे। (श्लोक ७६-८५)

'समस्त जीवों के लिए महादुःखदायी इस भव-स्थिति का चिन्तन कर जो स्वभाव से ही सुखदायक है ऐसे मोक्षमार्ग का अवलम्बन लें। जो मार्ग जिनेश्वर देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दया धर्म का है ऐसे श्रावक धर्म की प्रशंसा विवेकी मात्र करते हैं। अतः जिनधर्म की प्राप्ति स्वरूप श्रावक धर्म की अनुमोदना कर यह चिन्तन करें—मुझे ऐसा चक्रवर्ती पद नहीं चाहिए जिसके कारण जिन-धर्म की छाया से भी वंचित होना पड़े। इससे तो सम्यकत्व युक्त दारिद्रय यहाँ तक कि क्रीतदासत्व भी अच्छा है। वह शुभ मुहूर्त कब आएगा जबकि संसार के समस्त सम्बन्धों को छिन्न कर जीर्ण वस्त्र पहन कर देह को संस्कारित न कर एवं मधुकरी वृत्ति ग्रहण कर मैं मुनिधर्म ग्रहण करूँगा ? दुराचारियों का सङ्ग त्याग कर गुरुदेवों की चरण-रज मस्तक पर धारण कर कब मैं ध्यानाविष्ट होकर भव-बन्धन नष्ट करने की शक्ति अर्जित करूँगा ? कब आधी रात को नगर के बाहर कायोत्सर्गस्थित मेरी देह ऐसी निःस्पंद हो जाएगी कि काष्ठ का भ्रम कर वृषभ अपना शरीर खुजलाने के लिए घर्षण करेंगे ? कब मैं अरण्य में पद्मासन में स्थित होकर ध्यान में इतना निमग्न हो जाऊँगा कि वन के मृग-शावक मेरी गोद में खेलेंगे और यूथपति मृग मेरे मुख को आघ्राण करेंगे (सूघेंगे) ? कब मैं शत्रु और मित्र, तृण और नारी, स्वर्ण और पाषाण, मणि और मिट्टी, संसार और मुक्ति में समबुद्धि रखूँगा ? इस प्रकार मुक्ति रूप प्रासाद पर चढ़ने को सीढ़ी रूप गुण श्रेणियों के आरोहण के लिए परमानन्द के कन्द रूप मनोरथ सर्वदा करते रहें। प्रमादरहित होकर इस भाँति दिन-रात चारित्र का पालन कर और उपर्युक्त व्रतों में सुदृढ़ होकर सामान्य गृहस्थ भी शुद्ध हो सकते हैं।' (श्लोक ८६-९५)

भगवान की ऐसी देशना सुनकर अनेकों ने श्रमण-धर्म ग्रहण किया जिनमें कुम्भादि सतरह गणधर भी थे। भगवान की देशना समाप्त होने पर कुम्भ गणधर ने देशना दी। कुम्भ गणधर की

देशना समाप्त होने पर शक्र और अन्यान्य उन्हें वन्दना कर स्व-स्व स्थान को चले गए। (श्लोक ९६-९७)

प्रभु के तीर्थ में त्रिनेत्र चतुर्मुख स्वर्ण वर्ण वृषभ-वाहन भृकुटि नामक यक्ष उत्पन्न हुए। उनके दाहिनी ओर के चार हाथों के तीन हाथों में नींबू, बिजोरा, बरछी और हथोड़ी थी और एक हाथ अभय मुद्रा में था। बायीं ओर के चार हाथों में नकुल, कुठार, बज्र और अक्षमाला थी। इसी प्रकार शुभ्र वर्ण हंसवाहिनी गान्धारी यक्षिणी उत्पन्न हुई। उनके दाहिनी ओर के एक हाथ में तलवार और दूसरा हाथ वरद मुद्रा में था। और बायीं ओर के दोनों हाथों में नींबू, बिजोरा था। वे दोनों भगवान नमि के शासन देव-देवी हुए। नौ महीने कम अढ़ाई हजार वर्ष तक भगवान नमि शासन देव-देवी सहित पृथ्वी पर विचरण करते रहे।

(श्लोक ९८-१०२)

उनके संघ में २०००० साधु, ४१००० साध्वियां, ४५० चौदह पूर्वधारी, १६०० अवधिज्ञानी, १२६० मन:पर्यवज्ञानी, १००० वादी, १७०००० श्रावक और ३४८००० श्राविकाएँ थीं।

(श्लोक १०३-१०७)

अपना मोक्षकाल निकट जानकर प्रभु १००० मुनियों सहित सम्मेद शिखर पर गए और अनशन ग्रहण किया। एक मास अनशन के पश्चात् वैशाख शुक्ला दसमी को अश्विनी नक्षत्र का योग आने पर प्रभु और मुनिगण कर्म क्षय कर शाश्वत अक्षय पद मोक्ष प्राप्त किया। भगवान नमि की पूर्ण आयु दस हजार वर्ष की थी। वे २५०० वर्ष युवराज रूप में, ५००० वर्ष राजा रूप में, २५६० वर्ष व्रती रूप में रहे। भगवान मुनि सुव्रत के समय से भगवान नमि के निर्वाण के मध्य छह सौ हजार वर्ष व्यतीत हुए। इन्द्र और देवगण वहाँ आए और नमिनाथ स्वामी एवं मुनियों का अन्तिम संस्कार सम्पन्न कर निर्वाण महोत्सव मनाया।

(श्लोक १०८-११२)

एकादश सर्ग समाप्त

द्वादश सर्ग

जिस समय जिनेश्वर नमि छद्मस्थ अवस्था में विचरण कर रहे थे, उस समय चक्रवर्ती हरिषेण राज्य कर रहे थे। उनके जीवन का वर्णन कर रहे हैं। (श्लोक १)

इसी भरत क्षेत्र में भगवान अनन्तनाथ के तीर्थ में नरपुर नामक नगर में मनुष्यों में अभिराम नराभिराम नामक राजा राज्य करते थे। कालान्तर में उन्होंने विरक्त होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और मृत्यु के पश्चात् सनत्कुमार देवलोक में महर्द्धिक देवरूप में उत्पन्न हुए। पांचाल देश की अलङ्कार रूप काम्पिल्य नामक एक नगरी थी। जिसकी समृद्धि स्वर्ग-सी थी और जो शत्रुओं द्वारा अपराजेय थी। यहाँ के राजा का नाम था महाहरि। इक्ष्वाकु वंश के अलङ्कार रूप महाहरि हरि की भाँति शक्तिशाली और पृथ्वी में प्रसिद्ध थे। उनकी रानी का नाम था मेरा। वह कमल-वदनी चारित्र रूपी भूषण से विभूषित और स्व सौन्दर्य से पृथ्वी को गौरवान्वित कर रही थी। (श्लोक २-६)

नराभिराम का जीव स्वर्ग से च्युत होकर उनके गर्भ में अवतरित हुआ। चौदह स्वप्नों ने चक्रवर्ती का जन्म सूचित किया। यथा समय उन्होंने एक स्वर्ण वर्ण युक्त पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया हरिषेण। वह पन्द्रह धनुष दीर्घ था। उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया गया। (श्लोक ७-८)

जब वे महापराक्रम के साथ अपने पिता के राज्य का संचालन कर रहे थे उनकी आयुधशाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। क्रमशः पुरोहित, वर्द्धकी, सेनापति आदि ३ रत्न उत्पन्न हुए। चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए वे पूर्व में मगध तीर्थ में जाकर उपस्थित हुए। दिग्विजय के प्रारम्भ में ही उन्होंने मगध तीर्थ को जय कर लिया। उसके बाद वे दीर्घबाहु दक्षिण गए और दक्षिण समुद्र स्थित वरदाम पति को जीत लिया। तदुपरान्त पृथ्वी पर इन्द्र के समान अटूट शक्ति सम्पन्न वे पश्चिम में गए और प्रभासपति पर जय प्राप्त कर लिया। श्लोक ९-१३)

दिग्गज-से महाशक्ति सम्पन्न दसवें चक्रवर्ती तब सिन्धुनद के निकट गए और क्रमशः उसे भी जीत लिया। इसी प्रकार दिग्विजय कुशल वे वैताढ्य पर्वत के निकट गए और यथा नियम वैताढ्य पति को भी जीत लिया। तदुपरान्त उन्होंने कृतमाल देव को जीतकर सिन्धु के पश्चिम में अवस्थित प्रदेश सेनापति द्वारा जय कर लिया। (श्लोक १४-१६)

सेनापति द्वारा तमिस्रा गुहा का द्वार उन्मुक्त कर देने पर वे हस्ती पृष्ठ पर आरोहण कर उसमें प्रविष्ट हुए। हस्ती के

दक्षिण कुम्भ पर रखे हुए मणिरत्न के आलोक में वे सेतु द्वारा उन्मग्ना और निमग्ना नदी को पार कर तमिस्रा गुहा के आभ्यन्तर भाग को कांकिनी रत्न कृत मण्डल से आलोकित किया। (१७-१८)

उत्तर दिशा का द्वार तो उनके आते ही अपने आप खुल गया। उन्होंने उसी द्वार से निकलकर आपात नामक म्लेच्छों को जीत लिया। सिन्धु नदी के पश्चिम दिशा का भूभाग उनके सेनापति ने जीत लिया और हिमवंत के अधिपति को उन्होंने स्वयं जीत लिया। कांकिणी रत्न की सहायता से ऋषभकूट पर अपना नाम खोदकर और गङ्गा को पीछे रखकर गङ्गा की पूर्व दिशा में स्थित प्रदेश को सेनापति द्वारा जीत लिया। वैताढ्य पर्वत की उभय श्रेणियों के विद्याधरों से उपहार प्राप्त कर उन्होंने नाट्यमाल देव पर विजय प्राप्त कर ली। खण्डप्रपाता गुफा के द्वार को सेनापति द्वारा उन्मुक्त कर दिए जाने पर उन्होंने उस गुफा में प्रवेश किया और पहले की तरह ही चक्र का अनुसरण करते हुए उससे बाहर निकले। गङ्गा के पूर्व भाग को सेनापति द्वारा जीत कर गङ्गा के किनारे उन्होंने छावनी डाल दी। (श्लोक १९-२४)

गङ्गा के मुहाने पर स्थित मगध तीर्थ में निवास करने वाली नवनिधि ने उनके पुण्य प्रभाव से उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस भाँति छह खण्ड भरत को जीतकर इन्द्रतुल्य चक्रवर्ती की गरिमा और यश प्राप्त कर वे काम्पिल्य नगर को लौट आए। देव और राजाओं ने उन्हें चक्री रूप में अभिषिक्त किया। नगर में बारह वर्ष तक उत्सव होता रहा। दीर्घबाहु उनका आदेश भरत क्षेत्र के राजाओं द्वारा माना जाने लगा। उन्होंने धर्मानुकूल दीर्घकाल तक सांसारिक सुखों का भोग किया। (श्लोक २५-२८)

एक दिन संसार से विरक्त होकर उन्होंने सहज भाव से राज्य परित्याग कर मोक्षगमन के लिए उत्सुक बने हुए मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। हरिषेण चक्रवर्ती ने ३२५ वर्ष युवराज रूप में, ३२५ वर्ष राजा रूप में, १५० वर्ष दिग्विजयी रूप में, ८८५० चक्री रूप में, ३५० वर्ष व्रती रूप में व्यतीत किए। दृढ़तापूर्वक व्रतों का पालन कर जब उनकी दस हजार वर्ष की आयु बीत गई तब घाती कर्मों के क्षय हो जाने से केवलज्ञान प्राप्त कर अक्षय आनन्द रूप मोक्ष में चले गए। (श्लोक २९-३२)

द्वादस सर्ग समाप्त

त्रयोदश सर्ग

अब सर्वविजयी जय चक्रवर्ती का जीवनवृत्त वर्णन कर रहे हैं जो कि भगवान् नमि के तीर्थ में हुए थे। (श्लोक १)

जम्बूद्वीप के ऐरावत वर्ष में श्रीपुर नामक नगर में वसुन्धर नामक एक राजा राज्य कर रहे थे। उनकी रानी का नाम था पद्मावती। रानी पद्मावती की मृत्यु से दु:खी होकर राजा ने अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाया और मनोहर उद्यान में जाकर वरधर्म मुनि से धर्म श्रवण कर दीक्षा ग्रहण कर ली और दीर्घ दिनों तक सुचारु रूप से मुनिधर्म का पालन कर मृत्यु के पश्चात् सप्तम देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए। (श्लोक २-५)

मगध देश का अलङ्कार रूप और श्री के निवास स्थल-सा अमरावती तुल्य राजगृह नामक एक नगर था। वहाँ सर्वदा विजयीविजय नामक इक्ष्वाकुवंशीय सच्चरित्र एक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम था वप्रा। वे जैसी चारित्रसम्पन्ना थीं वैसी ही रूप-लावण्यसम्पन्न भी थीं। उन्हें देखकर लगता मानो कोई देवी ही स्वर्ग से मृत्युलोक में उतर आई है। (श्लोक ६-८)

कालक्रम से शुक्र नामक देवलोक से वसुन्धर के जीव ने च्युत होकर उनकी कुक्षि में प्रवेश किया। तब उन्होंने चक्रवर्ती के जन्म-सूचक चौदह महास्वप्न देखे। यथासमय उन्होंने बारह धनुष दीर्घ स्वर्णवर्णीय एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम जय रखा गया। (श्लोक ९-१०)

वय:प्राप्त होने पर उनके पिता ने उन्हें सिंहासन पर बैठाया। कालक्रम से उनकी आयुधशाला में चक्रवर्तीत्व सूचक चक्ररत्न उत्पन्न हुआ और क्रमश: छह—छत्र, मणि, दण्ड, खड्ग, चर्म और कांकिनी पूरे सात एकेन्द्रिय रत्न उत्पन्न हुए। तदुपरान्त पुरोहित, गृहपति, अश्व, गज, सेनापति, वर्द्धकी और स्त्री—ये सात पंचेन्द्रिय रत्न उत्पन्न हुए। (श्लोक ११-१३)

दिग्विजय के लिए चक्र का अनुसरण करते हुए वे पूर्वी समुद्र तक गए और मगध तीर्थाधिपति को उनकी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य किया। वहाँ से वे दक्षिण समुद्र की ओर गए और वरदाम पति को जीत लिया। कारण पृथ्वी पर देव भी चक्रवर्ती तुल्य नहीं होते। फिर वे पश्चिम समुद्र की ओर गए और तीर निक्षेप कर सहज ही प्रभासपति को जीत लिया।

तदुपरान्त द्वितीय समुद्र सी विस्तृत सिन्धु नदी को जीतकर इन्द्र की तरह वैताढ्य पर्वत के अधिष्ठायक देवों को पराजित कर दिया। उन्होंने स्वय कृतमाल देव को जीत लिया और सिन्धु के पश्चिमी भूभाग को उनके सेनापति ने जय कर लिया। वे दीर्घबाहु तमिस्रा गुहा में प्रविष्ट हुए और उससे निकल कर आपात नामक किरात देव को पराजित कर दिया। उनके सेनापति ने सिन्धु नदी के पश्चिम स्थित भूभाग को जीत लिया और हिमवंत पर्वत के अधिपति को उन्होंने स्वयं जीत लिया और ऋषभकूट पर कांकिनी रत्न से स्वनाम को उत्कीर्ण किया। गङ्गा पूर्व के भूभाग को उनके सेनापति ने जय कर लिया। उन्होंने स्वयं विद्याधरपति और खण्डप्रपाता गुहा के द्वार पर रहने वाले नाट्यमाल देव को जीत लिया। तदुपरान्त वैताढ्य पर्वत का परित्याग कर खण्डप्रपाता गुहा से निकल कर सेनापति द्वारा गङ्गा के पूर्व भाग को जय करवाया। जब वे गङ्गा के मुहाने पर स्थित थे तभी नैसर्प आदि गङ्गा के मुहाने पर रहने वाली नवनिधि उनके पास आई और उनकी वश्यता स्वीकार कर ली। इस प्रकार चक्रवर्ती का समस्त वैभव प्राप्त कर वे स्व-नगर को लौट आए। वहाँ देव और राजाओं ने उन्हें चक्री पद पर अभिषिक्त किया। दीर्घकाल तक भरत के छह खण्डों पर आधिपत्य कर उन्होंने चक्रवर्ती का वैभव भोगा और तदुपरान्त संसार से विरक्त होकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

(श्लोक १४-२६)

उन्होंने ३०० वर्ष युवराज रूप में, ३०० वर्ष राजा रूप में और ४०० वर्ष व्रती रूप में व्यतीत किए। (श्लोक २७)

व्रत पालन और ३००० वर्षों की परमायु पूर्ण कर घाती कर्मों के क्षय हो जाने से केवलज्ञान प्राप्त कर अक्षय आनन्द रूप मुक्ति पद को प्राप्त हुए। (श्लोक २८)

राम-लक्ष्मण दशानन तीर्थङ्कर नमि और चक्रवर्ती हरिषेण एवं जय इन छओं का जो चरित्र वर्णित हुआ है वह आप सबों के कर्ण को आनन्द प्रदान करें। (श्लोक २९)

त्रयोदश सर्ग समाप्त

सप्तम पर्व समाप्त

□